युगप्रधान

दादा जिनदत्तसूरि अष्टम शताब्दी समारोह की पुण्यस्मृति में

प्रकाशित

खरतरगच्छ का इतिहास

प्रथम खण्ड

(युगप्रधानाचार्य गुर्वावली एवं क्षमाकल्याण जी की पट्टावली के आवश्यक अंशों का अनुवाद)

भूमिका लेखक :—

अगरचन्द नाहटा

सम्पादक :—

महोपाध्याय विनयसागर

काव्यतीर्थ, काव्यभूषण, जैन दर्शनशास्त्री, साहित्यरत्न

साहित्याचार्य, शास्त्रविशारद

समर्पण
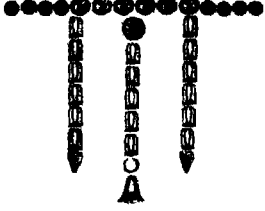
नानाशास्त्रविचक्षणो विधिपथप्रोद्धारको देशिकः,
गच्छस्वच्छविशालसत्खरतरप्रद्योतको नैष्ठिकः ।
भव्याम्भोजविबोधनैकतरणिः दादाभिधः सूरिराट्,
योगीन्द्रो जिनदत्तसूरिरभवद्धारित्र्यचूडामणिः ॥

चैत्यावासि-गजेन्द्र-दर्प-दलने शार्दूलविक्रीडितं,
यस्तेने जिनशासनोदितिकृते यत्नं च भागीरथम् ।
यो वा श्रीजिनवल्लभस्य सुगुरोः पट्टाभिषिक्तो मुनिः,
लोकानुग्रहतत्परो विजयतेऽसौ लोकवन्द्यो गुरुः ॥

शताब्दीसम्महे चास्मिन्नष्टमे श्रीगुरोरिदम् ।
भक्त्या समर्पितं श्यामासूनुना विनयेन तु ॥

भूमिका

संवत् २०११ में युगप्रधान आचार्य प्रवर श्री जिन दत्तसूरि जी के स्वर्गवास हुए ८०० वर्ष पूरे हो रहे थे, इस उपलक्ष में उनका अष्टम शताब्दी महोत्सव मनाये जाने का विचार कई भक्तजनों का हुआ पर कई असुविधाओं के कारण यह महत्वपूर्ण कार्य उस समय सम्पन्न नहीं हो सका। तब उसे २०१२ के आषाढ़ शुक्ला ११ को मनाना तय किया गया और इस प्रसंग पर श्री जिन दत्तसूरि जी का एक स्मारक ग्रन्थ भी प्रकाशित करने का सोचा गया। पर इतने कम समय में उस विशाल ग्रन्थ की सामग्री जुटाकर प्रकाशित करना सम्भव न हो सका। इधर हमारी इच्छा थी कि अष्टम शताब्दी महोत्सव केवल धूमधाम के रूप में ही मनाया न जाकर उसमें कुछ स्थायी महत्व का ठोस काम भी हो जिससे शताब्दियों तक उसकी यादगार बनी रहे, एक अभाव की पूर्ति हो और जनता को ज्ञानवर्द्धक व लाभप्रद उपयोगी एवं महत्वपूर्ण अध्ययन सामग्री मिले। इसलिए मैंने यह सुझाव रखा कि इस प्रसंग पर श्री जिन दत्तसूरि जी के सम्बन्ध में एक अध्ययन पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो और साथ ही खरतरगच्छ का इतिहास भी प्रकाशित किया जाय। खरतरगच्छ इतिहास की सामग्री गत २५ वर्षों से हम संग्रह कर ही रहे थे। उसका पूर्ण उपयोग तो इतने समय में किया जाना सम्भव नहीं था पर सिलसिलेवार कुछ इतिहास प्रकाशित हो जाय तो भी एक स्थायी काम होगा। इस काम के सम्पादन व प्रकाशन के लिए महोपाध्याय विनयसागर जी से मैंने अनुरोध किया और अपने संग्रह की आवश्यक सामग्री उन्हें तुरन्त भेज दी। उन्होंने भी बड़ी तत्परता से काम आरम्भ किया पर बीच में अस्वस्थ हो जाने से स्वयं अपेक्षित समय एवं श्रम नहीं दे सके। इधर महोत्सव अत्यन्त सन्निकट था। इसलिए उन्होंने जिन दत्तसूरि संबंधी अध्ययन पूर्ण ग्रन्थ जो प्रो० स्वामी सुरजनदास जी से लिखवाया और खरतरगच्छ के इतिहास का काम भी अपनी देख रेख में अन्य सहायक जुटाकर जैसे तैसे पूरा कर दिया। महोत्सव के समय वे सुरजनदास जी के लिखित ग्रन्थ की समग्र प्रतियां और खरतर इतिहास की भी २०० प्रतियाँ लेकर अजमेर पधारे पर कुछ विशेष कारणों से खरतर गच्छ का इतिहास अब तक प्रकाशित न हो सका था। विचार-विमर्षान्तर पूज्य बुद्धि मुनिजी को अवलोकन व संशोधनार्थ इसकी मुद्रित प्रति भेजी गई व उन्होंने अनवरत श्रम कर संशोधन कर दिया, इस कृपा के लिये हम पूज्य बुद्धि मुनि जी के बहुत आभारी हैं; आवश्यक संशोधन सहित इसका प्रथम भाग प्रकाशित करते हुये हमें अत्यन्त हर्ष होता है। ❀

प्रस्तुत ग्रन्थ में खरतरगच्छ की एक महत्वपूर्ण 'युग प्रधानाचार्य गुर्वावली' एवं श्री क्षमाकल्याण जी कृत पट्टावली का अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। उनमें से प्रथम खरतरगच्छालंकार युगप्रधानाचार्य गुर्वावली भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों में अपने ढंग का अद्वितीय एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें वर्द्धमान सूरि से लेकर जिनेश्वर सूरि द्वितीय (संवत् १३०५ तक) का वृतांत वादीभ-पंचानन जिनपति सूरिजी के शिष्य जिनपालोपाध्याय ने दिल्ली निवासी साधु साहुलि के पुत्र साह हेमा की अभ्यर्थना से लिखा है। इस भाग में जिन दत्तसूरि जी तक का वृतांत तो गणधर सार्द्ध शतक बृहद् वृत्ति पर आधारित लगता है जो वृतांत जिन पतिसूरि जी के ही दूसरे विद्वान् शिष्य सुमति गणि ने संवत् १२९५ में पूर्णदेव गणि कथित वृद्ध सम्प्रदायानुसार लिखा था। सुमति गणि के लिखे हुए वृतांत को बहुत ही सीधी सादी और सरल भाषा में जिनपालोपाध्याय ने इस गुर्वावलि में निबद्ध किया है और जिन दत्तसूरि जी के बाद का पट्टधर मणिधारी जिनचंद्रसूरि जी से लेकर संवत् १३०५ तक का वृतांत तो जिनपालोपाध्याय ने संवतानुक्रम से दिया है। इसके बाद इस गुर्वावली की पूर्ति अन्य विद्वानों द्वारा होती रही है। इसकी उपलब्ध (एक मात्र) प्रति में जिन कुशलसूरि जी के पट्टधर श्री जिन पद्मसूरि जी का वृतांत संवत् १३९३ तक का संवतानुसार से लिखा हुआ प्राप्त हुआ है। उसके बाद भी इसी ढंग से आगे का वृत्तांत भी अवश्य ही लिखा गया होगा पर उसकी कोई प्रति प्राप्त नहीं हुई।

❀ श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ की भी उक्त महोत्सव प्रसंग पर ही स्थापना की गई।

युग प्रधानाचार्य गुर्वावली की एक मात्र प्रति बीकानेर के उपाध्याय क्षमाकल्याण जी के ज्ञान भंडार में है जो कि संवत् १४७३ के आसपास की लिखी हुई है। लेखन जैसा चाहिए, शुद्ध नहीं है। इस महत्वपूर्ण प्रति की ओर सर्व प्रथम मेरा ध्यान २०–२२ वर्ष पहले गया, जबकि क्षमाकल्याण जी के ज्ञान भंडार की सूची में गुर्वावली पत्र ८६ का उल्लेख देखने में आया। खरतरगच्छ की कोई इतनी बड़ी गुर्वावली अन्यत्र कहीं भी प्राप्त न होने से मुझे उसे देखने की बहुत उत्सुकता हुई और तुरन्त प्रति निकलवाकर देखी तो आनन्द का पारावार न रहा। लाखों करोड़ों की सम्पत्ति एकाएक मिल जाने पर किसी धनेच्छु व्यक्ति के तथा वर्षों की प्रतीक्षा के बाद पुत्रेच्छा वाले व्यक्ति के यहां पुत्र जन्म होने से जितना आनन्द होता है उससे भी अधिक आनंद इस अनुपम ग्रन्थ की उपलब्धि से मुझे हुआ। मैंने पूज्य हरिसागर सूरि जी को इसकी सूचना दी तो वे भी बहुत प्रसन्न हुए और पूर्व देश के लम्बे विहार में होते हुए भी इस प्रति को मंगवाकर उन्होंने स्वयं अपने हाथ से इसकी प्रतिलिपि की। कलकत्ते के चतुर्मास में उन्होंने इसका हिन्दी अनुवाद भी करवाया। उसका हमने उस समय मूल से मिलान भी किया था पर वह अब तक प्रकाशित नहीं हो हो सका था, उसका उपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ में संशोधित रूप में किया गया है। गुर्वावलि को मूल रूप में प्रकाशित करने के लिए मैंने पुरातत्वाचार्य मुनि जिन विजय जी से बातचीत की तो उन्होंने बहुत श्रम पूर्वक सम्पादन करके सिंघी जैन ग्रन्थमाला से मुद्रित करवादी। पर वह भी कई वर्षों तक ऐसे ही पड़ी रही, गत वर्ष ही प्रकाशित हो सकी है। इसके ऐतिहासिक महत्व के सम्बन्ध में मुनिजी सम्पादित 'भारतीय विद्या' में मैंने एक लेख प्रकाशित करवाया था और मेरे विद्वान् मित्र डा० दशरथजी शर्मा ने भी इसके ऐतिहासिक महत्व के संबंध में कई लेख प्रकाशित किये थे। ऐसे विशिष्ट और महत्वपूर्ण ग्रन्थ रत्न का हिन्दी अनुवाद पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हुए मुझे बहुत ही प्रसन्नता का अनुभव होना स्वाभाविक है।

वैसे तो उपाध्याय जयसोम, महोपाध्याय समयसुन्दर आदि अनेक विद्वानों के रचित खरतरगच्छ की पट्टावलियाँ प्राप्त हैं पर उनमें क्षमाकल्याण जी रचित पट्टावली विशेष प्रसिद्ध है। उपाध्याय क्षमाकल्याण जी खरतरगच्छ के उल्लेखनीय विद्वान् हैं। संवेगी, परमगीतार्थ और अनेकों ग्रन्थों के रचयिता के रूप में वे बहुत प्रसिद्ध हैं। संवत् १८३० के फाल्गुन शुक्ला ६ को जीर्णगढ़ में उन्होंने यह 'खरतरगच्छ पट्टावली' रची थी। पर अपने विद्यमान आचार्य जिन चन्द्रसूरि जी का वृतांत भी पीछे से उन्होंने इसमें सम्मिलित कर दिया। इसलिए संवत् १८५६ तक का वृतांत उनके रचित पट्टावली में मिलता है। जिन पद्मसूरि जी का जो वृतांत युग प्रधानाचार्य गुर्वावली में अधूरा रह गया था वहां से लेकर संवत् १८७६ तक की पट्ट परम्परा का वृतांत क्षमा कल्याण जी की पट्टावली के अनुवाद के रूप में इस ग्रन्थ में दिया गया है। इसके बाद की अब तक की परम्परा तथा खरतरगच्छ की शाखाओं और साधु परम्परा का वृतांत इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में यथा समय प्रकाशित करने का विचार है। खरतरगच्छ के शिलालेखों तथा साहित्य की सूची और दीक्षा नन्दी की प्राप्त सूची भी हमने तैयार कर रखी है तथा और भी बहुत से ऐतिहासिक साधन-प्रशस्तियां आदि हमारे संग्रह में हैं। समाज का सहयोग मिला तो भविष्य में उन्हें प्रकाशित करने की भावना है।

पुरातत्वाचार्य मुनि जिन विजयजी ने २७ वर्ष पूर्व "खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह" नामक ग्रन्थ सम्पादित किया था, जिसमें सूरि परम्परा प्रशस्ति, तीन पट्टावलियां और परिशिष्ट में आचार्य शाखा की पट्ट परम्परा प्रकाशित की थी। इस उपयोगी ग्रन्थ का प्रकाशन कलकत्ता के स्व० पूर्णचन्द्र जी नाहर ने अपनी धर्मपत्नी इन्द्रकुमारी के ज्ञानपंचमी तप के उद्यापनार्थ संवत् १९८८ में किया था। उसी में क्षमाकल्याण जी की पट्टावली भी प्रकाशित हुई थी। इस ग्रन्थ के 'किंचित् वक्तव्य' में मुनि श्री जिन विजयजी ने खरतरगच्छ

के महत्व के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था :—

"श्वेताम्बर जैन संघ जिस स्वरूप में आज विद्यमान है, उस स्वरूप के निर्माण में खरतरगच्छ के आचार्य, यति, और श्रावक समूह का बहुत बड़ा हिस्सा है। एक तपागच्छ को छोड़कर दूसरा और कोई गच्छ इसके गौरव की बराबरी नहीं कर सकता। कई बातों में तो तपागच्छ से भी इस गच्छ का प्रभाव विशेष गौरवान्वित है। भारत के प्राचीन गौरव को अक्षुण्ण रखने वाली राजपूताने की वीर भूमि का पिछले एक हजार वर्ष का इतिहास, ओसवाल जाति के शौर्य, औदार्य, बुद्धि-चातुर्य और वाणिज्य व्यवसाय-कौशल आदि महद् गुणों से प्रदीप्त है और उन गुणों का जो विकास इस जाति में इस प्रकार हुआ है वह मुख्यतया खरतरगच्छ के प्रभावान्वित मूल पुरुषों के सदुपदेश तथा शुभाशीर्वाद का फल है। इसलिए खरतरगच्छ का उज्ज्वल इतिहास यह केवल जैन संघ के इतिहास का ही एक महत्व पूर्ण प्रकरण नहीं है, बल्कि समग्र राजपूताने के इतिहास का एक विशिष्ट प्रकरण है। इस इतिहास के संकलन में सहायभूत होने वाली विपुल साधन–सामग्री इधर उधर नष्ट हो रही है। जिस तरह की पट्टावलियां इस संग्रह में संग्रहीत हुई हैं वैसी कई पट्टावलियां और प्रशस्तियाँ संग्रहीत की जा सकती हैं और उनसे विस्तृत और शृंखला बद्ध इतिहास तैयार किया जा सकता है। यदि समय अनुकूल रहा तो सिंघी जैन ग्रन्थमाला में एक आध ऐसा बड़ा संग्रह जिज्ञासुओं को भविष्य में देखने को मिलेगा।"

मुनिजी की वह आशा वास्तव में सफल हुई और सिंघी जैन ग्रन्थमाला से ही "खरतर गच्छ बृहद् गुर्वावली" नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। जिसमें पूर्वोक्त युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के साथ प्राकृत भाषा की 'वृद्धाचार्य प्रबन्धावलि' भी प्रकाशित हुई है। गुर्वावली के संबंध में मेरे उपरोक्त लेख की सम्पादकीय टिप्पणी में मुनि जी ने लिखा था कि 'इस ग्रन्थ में विक्रम की ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में होने वाले आचार्य वर्द्धमान-सूरि से लेकर १४वीं शताब्दी के अंत में होने वाले जिन पद्मसूरि तक के खरतरगच्छ के मुख्य आचार्यों का विस्तृत चरित वर्णन है। गुर्वावली अर्थात् गुरु परम्परा का इतना विस्तृत और विश्वस्त चरित वर्णन करने वाला ऐसा कोई और ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। प्राय: ४ हजार श्लोक परिमाण: यह ग्रन्थ है और इसमें प्रत्येक आचार्य का जीवन चरित्र इतने विस्तार के साथ किया है कि जैसा अन्यत्र किसी ग्रन्थ में किसी आचार्य का नहीं मिलता। पिछले कई आचार्यों का चरित तो प्राय: वर्षवार के क्रम से दिया गया है और उनके विहार क्रम का तथा वर्षा निवास का क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। किस आचार्य ने कब दीक्षा ली, कब आचार्य पदवी मिली, किस किस प्रदेश में विहार किया, कहां कहां चतुर्मास किये, किस जगह कैसा धर्म प्रचार किया, कितने शिष्य शिष्यायें आदि दीक्षित किये, कहां पर किस विद्वान के साथ शास्त्रार्थ या वादविवाद किया, किस राजा की सभा में कैसा सम्मान आदि प्राप्त किया। (कहां कहां मन्दिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठा की) आदि बहुत ही ज्ञातव्य और तथ्यपूर्ण बातों का इस ग्रन्थ में बड़ी विशद रीति से वर्णन किया गया है। गुजरात, मेवाड़, मारवाड़, सिंध, बागड़, पंजाब और विहार आदि अनेक देशों के, अनेक गांवों में रहने वाले सैंकड़ों ही धर्मिष्ठ और धनिक श्रावक-श्राविकाओं के कुटुम्बों का और व्यक्तियों का नामोल्लेख इसमें मिलता है और उन्होंने कहां पर कैसे पूजा-प्रतिष्ठा व संघोत्सव आदि धर्म कार्य किये इसका निश्चित विधान मिलता है। "ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने ढंग की एक अनोखी कृति जैसा है।" मुनि जी ने उस समय इस गुर्वावली को हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करने का (मेरे सुझावानुसार) विचार प्रकट किया था और मैंने स्व० हरिसागर सूरिजी वाला हिन्दी अनुवाद उन्हें भेज भी दिया था पर वह मुनि जी को बहुत संशोधन योग्य प्रतीत हुआ। उसके कुछ पृष्ठों का उन्होंने संशोधन किया भी, पर वह कार्य अधिक श्रम साध्य देखकर तथा अन्य कार्यों में लग जाने से पूरा नहीं हो सका, अत: मूल ग्रन्थ ही उन्होंने प्रकाशित किया है। गुर्वावली का ऐतिहासिक सार 'मणिधारी श्री जिनचंद्र सूरि जी' और जिनपति

सूरि जी के चरित्र का, मेरे सुझावानुसार डा० दशरथ शर्मा ने भी लिखा था पर वे भी उसे पूर्ण नहीं कर पाये।

अपनी साहित्य साधना के प्रारम्भ में ही हमने यह निश्चय किया था कि खरतर गच्छ के ऐतिहासिक साधनों का अधिकाधिक संग्रह किया जाय और सुप्रसिद्ध ४ दादागुरुओं का ऐतिहासिक जीवन चरित्र प्रकाशित करें। तदनुसार संवत् १९९२-९४ में ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह और युग प्रधान श्री जिन चंद्र सूरि नामक दो बड़े ग्रन्थ हमने अपनी अभय जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित किये। पर जिन कुशल सूरि जी और मणिधारी श्री जिन चंद्र सूरि जी का ऐतिहासिक जीवन चरित्र लिखने का कोई साधन उस समय उपलब्ध न था। जिन कुशल सूरि जी का अप्रकाशित 'पट्टाभिषेक रास' हमने अपने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित किया था पर उसमें केवल एक प्रसंग विशेष का ही विवरण था। जब उपरोक्त युग प्रधानाचार्य गुर्वावली की उपलब्धि हुई और उसका हिन्दी अनुवाद पूज्य हरि सागर सूरि जी ने करवा दिया। तो हमने मणिधारी श्री जिन चंद्र सूरि और दादा जिन कुशल सूरि का चरित्र, गुर्वावली के मुख्य आधार से शीघ्र ही तैयार कर प्रकाशित किया। यदि यह महत्वपूर्ण गुर्वावली उपलब्ध न होती तो वह हमारा मनोरथ सफल नहीं हो पाता। उन्हीं दिनों हमने एक विस्तृत निबंध 'जिनपति सूरि का सम्राट पृथ्वीराज चौहान की सभा में शास्त्रार्थ' नामक हिन्दुस्तानी पत्रिका में प्रकाशित किया था। वह भी इसी गुर्वावली पर आधारित था। केवल खरतरगच्छ के इतिहास के लिए ही नहीं, मध्यकालीन भारतीय विशेषतः राजस्थान, गुजरात के इतिहास की बहुत सी अज्ञात और महत्वपूर्ण बातें इसी गुर्वावली में सुरक्षित रह सकीं है इसलिये इसका बड़ा भारी महत्व है। मुसलमानी साम्राज्यकाल में जो महान् विप्लव और प्राचीन मंदिर व मूर्तियों का ध्वंस एवं प्राचीन ग्राम नगर आदि की उथल पुथल हुई, उन सब बातों की विश्वस्त सामग्री इस ग्रन्थ रत्न में ही सुरक्षित रह सकीं हैं। बहुत से स्थानों के नाम बदल चुके, तीर्थ लुप्त हो गये, मंदिर व मूर्तियें नष्ट भ्रष्ट हो गईं, उसकी जानकारी के साथ साथ अनेक विद्वान्, साधु साध्वियों की दीक्षा एवं पद प्राप्ति के संवत् आदि जानने का एक मात्र साधन यह गुर्वावली ही है। अतः ऐसे अद्वितीय ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होना एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करेगा। व इससे अनेकों नये ज्ञातव्य प्रकाश में आयेगें।

मुनि जिन विजय जी ने खरतर विरुद प्राप्त करने वाले एवं इस गच्छ के आदि पुरुष जिनेश्वरसूरि रचित कथा कोष प्रकरण को सिंघी जैन ग्रन्थमाला से १० वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था। उसमें भी इस गुर्वावली का काफी अच्छा उपयोग किया गया है। जिनेश्वर सूरि जी का चरित्र, उनके ग्रन्थों का विशेष परिचय और कथा कोष प्रकरण के संबंध में १२४ पृष्ठों में मुनि जी ने बहुत ही विस्तार से प्रकाश डाला है। पाठकों को उसे अवश्य देख जाने का अनुरोध करता हूँ। खरतरगच्छ के संबंध में उक्त ग्रन्थ में मुनि जी ने जो भावोद्गार प्रगट किये हैं उनका आवश्यक अंश नीचे दिया जा रहा है:—

'खरतरगच्छ में अनेक बड़े बड़े प्रभावशाली आचार्य, बड़े बड़े विद्यानिधि उपाध्याय, बड़े बड़े प्रतिभाशाली पंडित मुनि और बड़े बड़े मांत्रिक, तांत्रिक, ज्योतिर्विद, वैद्यक विशारद आदि कर्मठ यति जन हुए जिन्होंने अपने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा के बढ़ाने में बड़ा योग दिया है। सामाजिक और साम्प्रदायिक उत्कर्ष के सिवा खरतरगच्छ अनुयायियों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं देश्य भाषा के साहित्य को भी समृद्ध करने में असाधारण उद्यम किया और इसके फलस्वरूप आज हमें भाषा साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विषयों का निरुपण करने वाली छोटी बड़ी सैकड़ों हजारों ग्रन्थ कृतियाँ जैन भंडारों में उपलब्ध हो रही हैं। खरतरगच्छीय विद्वानों की की हुई यह उपासना न केवल जैन धर्म की दृष्टि से ही महत्व वाली है, अपितु सम्मुच्चय भारतीय संस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतनी ही महत्ता रखती है।

साहित्योपासना की दृष्टि से खरतर गच्छ के विद्वान् यति मुनि बड़े उदार चेता मालूम देते हैं इस विषय में उनकी उपासना का क्षेत्र, केवल अपने धर्म या सम्प्रदाय की बाड़ से बद्ध नहीं हैं। वे जैन और जैनेतर वाङ्मय का समान भाव से अध्ययन-अध्यापन करते रहे हैं। व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, अलंकार, नाटक, ज्योतिष, वैद्यक और दर्शन शास्त्र तक के अगणित अजैन ग्रन्थों पर उन्होंने अपनी पांडित्य पूर्ण टीकाएं आदि रचकर तत्तद् ग्रन्थों और विषयों के अध्ययन कार्य में बड़ा उपयुक्त साहित्य तैयार किया है। खरतरगच्छ के गौरव को प्रदर्शित करने वाली ये सब बातें हम यहां पर बहुत ही संक्षेप रुप में, केवल सूत्र रुप से ही उल्लिखित कर रहे हैं।"

खरतरगच्छ को प्राथमिक और सबसे बड़ी सेवा, चैत्यवास का उन्मूलन और सुविहित मार्ग का प्रचार है। जिनेश्वर सूरि जी से जिनपति सूरि जी तक के आचार्यों ने चैत्यवास का प्रबल विरोध और जोरों से खंडन किया। उन्हीं के महान प्रयास का यह सुफल है कि सुविहित विधिमार्ग को पुनः प्रतिष्ठा मिल सकी। और उसकी परम्परा आज तक कायम रह सकी। इन आचार्यों का प्रभाव चैत्य वासियों पर भी इतना अधिक पड़ा कि कई चैत्यवासी भी उनके शिष्य हो गये। मुनि जिन विजय जी ने जिनेश्वर सूरि जी के प्रभाव के संबंध में लिखा है कि "जिनेश्वर सूरि के प्रबल पांडित्य और प्रकृष्ट चरित्र का प्रभाव न केवल उनके शिष्य समूह में ही प्रचारित हुआ अपितु तत्कालीन अन्यान्यगच्छ एवं यति समुदाय के भी व्यक्तियों ने इनके अनुकरण में क्रियोद्धार और ज्ञानोपासना आदि की विशिष्ट प्रवृत्ति का बड़े उत्साह के साथ उत्तम अनुसरण किया। जिनेश्वर सूरि के जीवन कार्य ने इस युग परिवर्तन को सुनिश्चित स्वरुप दिया। तब से लेकर पिछले ९०० वर्षों में, इस पश्चिम भारत में, जैन धर्म का जो साम्प्रदायिक और सामाजिक स्वरूप का प्रवाह प्रचलित रहा, उसके मूल में जिनेश्वर सूरि का जीवन सबसे अधिक विशिष्ट प्रभाव रखता है। और इस दृष्टि से जिनेश्वर सूरि को जो उनके पिछले शिष्य प्रशिष्यों ने युगप्रधानपद से संबोधित और स्तुति गोचर किया है, वह सर्वथा ही सत्य वस्तु स्थिति का निर्देशक है।"

जिनेश्वर सूरिजी और अभयदेव सूरिजी के प्रारम्भिक जीवन चरित्र पर प्रभावक चरित्र महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। इसी तरह ग्रन्थ प्रशस्तियां, शिलालेख से भी कुछ नये तथ्य प्राप्त होते हैं। ऐतिहासिक रास, गीत आदि सामग्री भी इसमें सहायक हैं। संवत् १४३० के महा विज्ञप्ति लेख से भी जिनोदय सूरि के समय की बहुत सी बातें जो पट्टावली में उल्लिखित नहीं हैं, प्राप्त होती हैं। कई ऐतिहासिक रास जो जैसलमेर भंडार की संग्रह पुस्तिका और जिनभद्र सूरि स्वाध्याय पुस्तिका में थे, अभी प्राप्त न होने के कारण जिनलब्धि सूरिजी आदि का वृतांत बहुत ही कम ज्ञात है। अतः इन रासों की खोज की जाना आवश्यक है और समस्त उपलब्ध साधनों का उपयोग किया जाकर खरतरगच्छ का एक बृहद् इतिहास लिखा जाना अपेक्षित है। प्रस्तुत ग्रन्थ तो उसकी एक भूमिका मात्र है। सामग्री काफी अच्छे रूप में प्राप्त है। आवश्यक है उसके संग्रह और उसके आधार से व्यवस्थित इतिहास तैयार करने की। खरतरगच्छ का गौरव और महत्व, तभी ठीक से प्रकाश में आ सकेगा। इस गच्छ के समस्त अनुयायियों का मैं इस परमावश्यक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए भूमिका समाप्त करता हूँ।

अगरचन्द नाहटा

खरतरगच्छ का श्रमण-समुदाय

(ले० अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर)

खरतरगच्छ यह नामकरण, इस गच्छ का परम्परा के अनुसार, संवत् १०७० के लगभग पाटण के महाराजा दुर्लभराज की राजसभा में चैत्यवासियों के साथ आचार्य वर्धमान सूरि और जिनेश्वर सूरि के साथ होने वाले शास्त्रार्थ से सम्बन्धित है। चैत्यवासी इस शास्त्रार्थ में पराजित हुए और जिनेश्वर सूरिजी आदि सुविहित मुनियों के कठोर आचारपालन का सूचक 'खरतर' संबोधन नृपति दुर्लभराज द्वारा किया गया। वर्तमान श्वेताम्बर गच्छों में यह सबसे प्राचीन भी है। अञ्चलगच्छ और तपागच्छ इसके बाद ही हुए। आचार्य जिनेश्वर सूरि और उनके गुरुभ्राता बुद्धिसागर सूरि बड़े विद्वान भी थे। उनके बनाये हुए कई ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें से 'प्रमालक्ष्य' नामक जैन न्याय ग्रन्थ और पंचग्रन्थी नामक व्याकरण ग्रन्थ अपने विषय और ढंग के पहले ग्रन्थ हैं। वैसे जिनेश्वर सूरिजी रचित 'अष्टक टीका' आदि भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। जिनेश्वर सूरि जी के शिष्य जिनचन्द्र सूरि और अभयदेव सूरि हुए। इनमें से जिनचन्द्र सूरि रचित 'सम्वेगरंगशाला' ग्रन्थ महत्वपूर्ण है और अभयदेव सूरि जी तो नवांगवृत्तिकार के रूप में प्रसिद्ध एवं सर्व-मान्य हैं और अभयदेव सूरि जी के पट्टधर जिनवल्लभ सूरि जी अपने समय के विशिष्ट विद्वानों में से हैं और अभयदेव सूरिजी के शिष्य वर्धमान सूरि के भी मनोरमा, आदिनाथ चरित्र ग्रन्थादि उल्लेखनीय हैं। जिनवल्लभ सूरिजी के शिष्य जिनशेखर सूरि से रुद्रपल्लीय शाखा और वर्धमान सूरिजी से मधुकरी शाखा प्रसिद्ध हुई।

जिनवल्लभ सूरिजी के पट्टधर जिनदत्त सूरिजी बड़े ही प्रभावशाली आचार्य हुए। जिन्होंने करीब सवा लाख जैन बनाये और बड़े दादाजी के नाम से आज भी पूजे व माने जाते हैं। सैंकड़ों स्थानों में उनके गुरु-मन्दिर और चरण-पादुकाएँ स्थापित हैं। सैकड़ों स्तोत्र, स्तवन इनके सम्बन्ध में भक्तजनों ने बनाये हैं। इनका जन्म संवत ११३२, दीक्षा ११४१, आचार्य पदोत्सव ११६९ और स्वर्गवास संवत १२११ में में अजमेर में हुआ। आषाढ़ शुक्ला ११ को इनकी जयन्ती अनेक स्थानों पर मनाई जाती है।

जिनदत्त सूरिजी के शिष्य और पट्टधर जिनचन्द्र सूरिजी 'मणिधारी दादाजी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इनके मस्तिष्क में मणि थी। इनका स्वर्गवास छोटी उम्र में ही दिल्ली में हो गया। और महरोली में आज भी आपका स्मारक विद्यमान है। इनके पट्टधर जिनपति सूरि बहुत बड़े विद्वान और दिग्गजवादी थे। अनेक शास्त्रार्थ इन्होंने राजसभाओं आदि में करके विजय प्राप्त की थी। पांच सौ-सात सौ वर्षों से जो चैत्यवास ने श्वेताम्बर सम्प्रदाय में अपना प्रभाव विस्तार किया था, वह जिनेश्वर सूरि से लेकर जिनपति सूरिजी तक के आचार्यों के जबरदस्त प्रभाव से क्षीण प्रायः हो गया। अतः सुविहित मार्ग की परम्परा को पुनः प्रतिष्ठित और चालू रखने में खरतरगच्छ की, श्वेताम्बर जैन संघ को महान देन है।

जिनपति सूरिजी और उनके पट्टधर जिनेश्वर सूरिजी का शिष्य समुदाय विद्वता में भी अग्रणी था। उनके रचित ग्रन्थों की संख्या और विशिष्टता उल्लेखनीय है। कुछ अन्य पट्टधरों के बाद १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिनकुशल सूरिजी भी बड़े प्रभावशाली हुए जो छोटे दादाजी के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हैं व भक्तजनों की मनोकामना पूर्ण करने में कल्पतरु सदृश्य हैं। इनके भी मंदिर चरण पादुकाएँ और स्तुति-स्तोत्र प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं। चैत्य वन्दन कुलकवृत्ति इनकी महत्वपूर्ण रचना है।

इन्हीं के समय में जिनप्रभ सूरि नाम के एक और आचार्य बहुत बड़े विद्वान और प्रभावक हुए

जिन्होंने सम्वत् १३८५ में मुहम्मद तुगलक को जैन धर्म का सन्देश दिया। उनकी सभा में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कन्नाणा की महावीर मूर्ति को इन्होंने मुहम्मद तुगलक से पुनः प्राप्त किया और सम्राट उन्हें बहुत ही आदर देता था। जैन विद्वानों में सबसे अधिक स्तोत्रों के रचयिता आप ही थे। कहा जाता है कि आपने ७०० स्तोत्र बनाये। जिनमें अब तो करीब १०० ही मिलते हैं। विविध तीर्थकल्प, विधिप्रपा, श्रेणिकचरित्र द्वयाश्रय काव्य आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। पद्मावती देवी आपके प्रत्यक्ष थीं। इनकी परम्परा १७-१८ वीं शताब्दी से लुप्त प्रायः हो गई। इनके गुरु जिनसिंह सूरि से 'लघु खरतर' शाखा प्रसिद्ध हुई। इनकी जीवनी के सम्बन्ध में पं० लालचन्द गाँधी और हमारे लिखित जीवन-चरित्र देखने चाहिये।

जिनकुशल सूरिजी के करीब सौ वर्ष बाद जिनभद्र सूरिजी हुए जिनके स्थापित ज्ञान भंडार, जैसलमेर आदि में मिलते हैं। प्राचीन ग्रन्थों की सुरक्षा और उनकी नई प्रतिलिपियाँ करवाकर कई स्थानों में ज्ञान-भन्डार स्थापित करने का आपने उल्लेखनीय कार्य किया है।

इनके १ सौ वर्ष बाद यु० जिनचन्द्रसूरिजी बड़े प्रभावशाली आचार्य हुए जिन्होंने सम्राट अकबर को जैन धर्म का प्रतिबोध कराया और शाही फरमान प्राप्त किये। सम्राट जहाँगीर ने जैन साधुओं के निष्कासन का जो आदेश जारी कर दिया था उसे भी आपने ही रद्द करवाया। आपके स्वयं के ६५ शिष्य थे। उस समय के खरतरगच्छ के साधु-साध्वियों की संख्या सहस्राधिक होगी। जिनमें से बहुत से उच्च कोटि के विद्वान भी हुए। अष्टलक्षी जैसे अपूर्व ग्रन्थ के प्रणेता महोपाध्याय समयसुन्दर * आपके ही प्रशिष्य थे। विशेष जानने के लिये हमारा युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि देखना चाहिये। ये चौथे दादा साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से हमने चारों दादा साहब के चरित्र प्रकाशित कर दिये हैं। इनमें जिनचन्द्र सूरिजी को सम्राट अकबर ने युगप्रधान पद दिया था। सं. १६१३ में बीकानेर में इन्होंने क्रिया उद्धार किया था। यु. प्र जिनचन्द्र सूरिजी के सौ वर्ष बाद जिनभक्त सूरिजी हुए उनके शिष्य प्रीतिसागर के शिष्य अमृतधर्म के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याणजी हुए। जिन्होंने साध्वाचार के नियम ग्रहण कर शिथिलाचार को हटाने में एक नई क्रान्ति की। खरतरगच्छ में आज सबसे अधिक साधु-साध्वी का समुदाय इन्हीं की परम्परा का है। यह अपने समय के बहुत बड़े विद्वान थे। बीकानेर में सम्वत् १८७४ में इनका स्वर्गवास हुआ। आपके शिष्य धर्मानन्दजी के शिष्य राजसागरजी से सम्वत् १९०९ में सुखसागरजी ने दीक्षा ग्रहण की, इन्हीं के नाम से सुखसागरजी का संघाड़ा प्रसिद्ध है जिसमें आचार्य हरिसागर सूरिजी का स्वर्गवास थोड़े वर्षों पहले हुआ है और अभी आनन्दसागर सूरिजी विद्यमान हैं। उनके आज्ञानुवर्ती उपाध्याय कवीन्द्रसागरजी और प्रसिद्ध वक्ता मुनि कान्तिसागरजी आदि १०-१२ साधु और लगभग २०० साध्वियां विद्यमान हैं। इसी परम्परा में महोपाध्याय-सुमतिसागरजी के शिष्य आचार्य श्री जिनमणिसागर सूरिजी बड़े विद्वान लेखक व चरित्र पात्र हुए हैं जिनके शिष्य महोपाध्याय विनयसागरजी हैं।

अभी खरतरगच्छ में तीन साधु समुदाय हैं। जिनमें से सुखसागरजी के समुदाय का ऊपर उल्लेख किया गया है। दूसरा समुदाय मोहनलालजी महाराज का है जिनका नाम गुजरात में बहुत ही प्रसिद्ध है। आप पहले यति थे पर क्रिया उद्धार करके साधु बने और तपागच्छ और खरतरगच्छ-दोनों गच्छों में समान रूप से मान्य हुए। आपकी ही अद्भुत विशेषता थी कि आपके शिष्यों में दोनों गच्छ के साधु हैं और उनमें से कई साधु बहुत ही क्रियापात्र सरल प्रकृति के और विद्वान हैं। खरतरगच्छ में इनके पट्टधर जिनयश-सूरिजी हुए। फिर जिनऋद्धि सूरिजी और जिनरत्न सूरिजी हुए। इनमें जिनऋद्धि सूरिजो गुजरात आदि में बहुत प्रसिद्ध हैं। अभी आपके समुदाय में उपाध्याय लब्धिमुनिजी, बुद्धि मुनिजी, गुलाब मुनिजी

---

* देखें समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि

आदि १०-१२ बड़े क्रियापात्र साधु हैं। कुछ साध्वियाँ भी हैं। उ. लब्धिमुनिजी ने करीब ३०-३५ हजार श्लोक परिमित पद्यबद्ध संस्कृत ग्रन्थ बनाये हैं और बुद्धिमुनिजी ने भी अनेक ग्रन्थों का विद्वतापूर्ण सम्पादन किया है। जिनरत्नसूरिजी के शिष्यों में भद्रमुनिजी ने आध्यात्मिक साधना में महत्वपूर्ण प्रगति की। आज वे सहजानंदजी के नाम से एक आत्मानुभवी और आध्याध्मिक-योगी, संत के रूप में प्रसिद्ध हैं। अपने ढंग के सारे जैन श्रमण समुदाय में ये एक ही आत्मानुभवी योगी हैं।

खरतरगच्छ में योग-अध्यात्म की परम्परा भी उल्लेखनीय रही है। योगिराज आनन्दघनजी मूलत: खरतरगच्छ के ही थे। उसके बाद श्रीमद् देवचन्दजी बड़े उच्चकोटि के आध्यात्म-तत्ववेत्ता हो गये हैं। जिन्होंने भक्ति अध्यात्म का अपूर्व मेल बैठाया है। तदन्तर चिदानन्दजी (कपूरचन्दजी) भी खरतरगच्छ के ही योगियों में उल्लेखनीय थे तथा इनसे कुछ पूर्ववर्ती मस्त योगी ज्ञानसारजी बीकानेर के श्मशानों के पास वर्षों तक साधना करते रहे हैं। बीकानेर, जयपुर, किशनगढ़ और उदयपुर के महाराजा आपके बड़े भक्त थे। ६८ वर्ष की दीर्घायु में बीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ। आनन्दघनजी की चौबीसी और कुछ पदों का का मर्म-स्पर्शी विवेचन आपने किया है। विशेष जानने के लिए हमारा 'ज्ञानसार ग्रन्थावली' नामक ग्रन्थ देखना चाहिये। द्वितीय चिदानन्दजी जो उपरोक्त सुखसागरजी के शिष्य थे, वे भी उल्लेखनीय जैन योगी थे। इनके रचित अध्यात्मानुभव योगप्रकाश, स्यादावाद् अनुभव रत्नाकर, शुद्ध देव अनुभव विचार, दिव्यानुभव-रत्नाकर, आत्मभ्रमोच्छेदनभानु आदि कई विशिष्ट ग्रन्थ हैं। आपका स्वर्गवास सं० १९५६ में जावरे में हुआ। अध्यात्मानुभव योगप्रकाश ग्रन्थ से आपकी योग सम्बन्धी जानकारी और अनुभव का विशद परिचय मिलता है।

खरतरगच्छ का तीसरा साधु समुदाय, जिनकृपाचन्द्र सूरिजी का है। कृपाचन्द्र सूरिजी भी पहले बीकानेर के खरतरगच्छ के यति थे। सम्वत् १९४३ में आपने क्रिया-उद्धार किया। संवत् १९७२ में आपको बम्बई में आचार्य पद मिला। संवत् १९९५ में सिद्धक्षेत्र पालीताणा में आपका स्वर्गवास हुआ। आप बहुत बड़े विद्वान्, क्रियापात्र तथा प्रभावशाली गीतार्थ आचार्य थे। आपके शिष्यों में जयसागर सूरिजी भी अच्छे विद्वान् और त्यागी साधु थे। जिनका स्वर्गवास बीकानेर में हुआ। विद्यमान साधुओं में उपाध्याय सुखसागरजी उल्लेखनीय हैं। इनके शिष्य कान्तिसागरजी भी अच्छे विद्वान और वक्ता हैं। जिन्होंने 'खंडहरों के वैभव' आदि ग्रन्थ और कई विद्वतापूर्ण लेख लिखे हैं। कृपाचन्द्र सूरि के शिष्य समुदाय में अभी करीब १० साधु और १०-१५ साध्वियाँ विद्यमान हैं।

खरतरगच्छ में भी तपागच्छ की तरह १०-१२ शाखायें हुईं। जिनमें से अभी चार शाखाओं के श्रीपूज्य और यति विद्यमान हैं। श्रीपूज्य परम्परा में बीकानेर की भट्टारक शाखा के जिन विजयेन्द्र सूरिजी बड़े प्रभावशाली हैं। इसी तरह लखनऊ की जिनरंग सूरि शाखा के जिन विजयसेन सूरि और जयपुर की मंडोवरा शाखा के जिन धरणेन्द्र सूरिजी भी अच्छे विचारशील हैं। बीकानेर आचार्य शाखा के श्रीपूज्य सोमप्रभ सूरि हैं। बालोतरे की भावहर्षीय शाखा और पाली की आद्यपक्षीयशाखा के अब श्रीपूज्य नहीं हैं, केवल यति ही हैं। काशी के हीराचंद सूरि भी उल्लेखनीय हैं।

खरतरगच्छ का प्रभाव क्षेत्र भी बहुत विस्तृत रहा है। राजस्थान तो मुख्य केन्द्र है ही, मध्यप्रान्त और बंगाल तथा दक्षिण भारत, आसाम, गुजरात आदि में भी खरतरगच्छ के अनुयायी निवास करते हैं। राजस्थान में स्थानकवासी और तेरापन्थी सम्प्रदाय के प्रचार व प्रभाव के कारण इस गच्छ के बहुत से अनुयायी स्थानक वासी व तेरापन्थी हो गये, तथा गुजरात में तपागच्छ के प्रभाव के कारण खरतरगच्छ के होते हुए भी बहुत से लोग तपागच्छ की क्रिया करने लगे हैं। इस तरह विगत कुछ वर्षों में अनुयायियों

की काफी कमी आ गई है। फिर भी तपागच्छ के बाद इसी का स्थान आता है। जगह २ पर सैंकड़ों ज्ञान-भंडार, मंदिर, तीर्थ दादावाडियाँ इस गच्छ के प्रभाव की यशपताका फहरा रही हैं।

खरतरगच्छ के श्रमण समुदाय में साध्वियों का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साधुओं की संख्या जब ३० के करीब हैं तो साध्वियाँ करीब २२५ हैं और उनमें कई तो बहुत ही विदुषी, सुललित व्याख्यानदाता और प्रभावशाली हैं। सुखसागरजी के समुदाय में ही सबसे अधिक साध्वियाँ हैं। करीब ५० वर्ष पूर्व प्रवर्तिनी पुण्यश्री जी नामक एक साध्वी हुई उनके और उनकी गुरुबहिन का ही यह सारा साध्वी परम्परा का विस्तार है। सोहन श्रीजी आदि बड़ी उच्च कोटि की साधिका इनमें हुई और वर्तमान में भी प्रवर्तिनी वल्लभ श्रीजी, प्रमोद श्रीजी, विदुषी रत्न विचक्षण श्रीजी आदि व उनकी शिष्याएँ जैन शासन की शोभा बढ़ा रही हैं! लघुवय की अनेक-साध्वियां अभी विद्याध्ययन कर रही हैं अतः खरतरगच्छ का भविष्य भी उज्ज्वल प्रतीत होता है। वास्तव में साध्वी समुदाय अबतक बड़ी उपेक्षित रही, अन्यथा इसके द्वारा बहुत बड़ा कार्य हो सकता था क्योंकि धार्मिक कार्यों में सबसे अधिक भाग स्त्री समाज लेता है और उनका नेतृत्व ये साध्वियाँ ही सबसे अधिक कर सकती हैं। वे चाहें तो स्त्री समाज में शिक्षा प्रसार और धार्मिक अभिवृद्धि बहुत सरलता से ही कर सकती हैं। भावी समाज के आशाकेन्द्र बालक-बालिकाओं को उनकी माताएँ ही योग्य और संस्कारशील बना सकती हैं। और उन माताओं की प्रेरक तथा निर्माता यह साध्वी मंडल ही है।

वर्तमान जैनतीर्थों के निर्माण, संरक्षण, जीर्णोद्धार और स्थापना में भी खरतरगच्छीय साधु व श्रीपूज्य यति सम्प्रदाय का बड़ा योग रहा है। पूर्व देश के लुप्त प्राय:, अनेक तीर्थों का प्रगटीकरण खरतरगच्छ के साधु और यति समुदाय के द्वारा ही हुआ है और अन्य स्थानों के भी तीर्थों में उनके उपदेश से बनवाये हुए मन्दिर, मूर्तियां आदि प्रचुर परिमाणों में प्राप्त हैं। जैसलमेर के सभी कलामय मन्दिर खरतरगच्छ के श्रावकों के बनाये हुए हैं। और उनके आचार्यों के प्रतिष्ठित हैं। इसी तरह बीकानेर आदि में भी जहाँ २ खरतरगच्छ का अधिक प्रभाव रहा है, अनेक जिनालय साधु, यति व श्रीपूज्यों के उपदेश से बनाये गये। कापरडाजी आदि कई तीर्थ इन्हीं के द्वारा प्रसिद्ध हुए। शत्रुंजय, गिरनार, राणकपुर, सिरोही आदि अनेक स्थानों में खरतरवसही के नाम से मंदिर हैं। भारतवर्ष के प्राय: सभी प्रान्तों में खरतरगच्छ के श्रावक निवास करते थे और बहुत से प्रान्तों में तो आज भी करते हैं। अत: उन सब स्थानों में मन्दिर, उपाश्रय, दादाबाड़ियों व ज्ञान-भंडार हैं। सिन्ध प्रान्त में भी खरतरगच्छ का बड़ा प्रभाव रहा है पाकिस्तान हो जाने से सिन्ध के अनेक श्रावक राजस्थान आदि में बस गये हैं। बंगाल, आसाम और मध्यप्रदेश में भी खरतर-गच्छ का बड़ा प्रभाव रहा है और अब भी है। इस गच्छ के आचार्यों मुनियों और यतियों का रचित साहित्य भी विशाल है। जिसका पूरा विवरण खरतर साहित्य सूची में दिया गया है।

खरतरगच्छ के श्रावक श्राविकाओं ने अनेक धर्मकार्य किये, मंदिर मूर्तियाँ बनाई तीर्थों का जीर्णोद्धार करवाये, हजारों हस्तलिखित प्रतियाँ लिखवाई, विविध धर्मप्रभावना के कार्य किये उनका भी अपना महत्व है।

खरतरगच्छ का इतिहास

नमो युगप्रधानमुनीन्द्रेभ्यः ।

खरतरगच्छालङ्कार

युगप्रधानाचार्य गुर्वावलि

❀ मङ्गलाचरणम् ❀

वर्धमानं जिनं नत्वा, वर्धमानजिनेश्वराः । मुनीन्द्रजिनचन्द्राख्याऽभयदेवमुनीश्वराः ॥१॥
श्रीजिनवल्लभसूरिः, श्रीजिनदत्तसूरयः । यतीन्द्रजिनचन्द्राख्यः, श्रीजिनपतिसूरयः ॥२॥
एतेषां चरितं किञ्चित्, मन्दमत्या यदुच्यते । वृद्धेभ्यः श्रुतवेत्तृभ्यस्तन्मे कथयतः शृणु ॥३॥

अन्तिम तीर्थंकर 'वर्धमान' श्री महावीर स्वामी को नमस्कार करके वर्धमानसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि और जिनपतिसूरि इन आचार्यों का यत्किञ्चित् जीवन चरित्र मैं अपनी मन्द बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, जो मैंने परम्परा के जानने वाले वृद्धों से ज्ञात किया है। मेरे कथन को आप सुनिये—

आचार्य वर्धमानसूरि

१. अ भो ह र देश में चौरासी देवघरों के मालिक चैत्यवासी जि न चं द्र नाम के एक आचार्य थे। उनका वर्धमान नामक शिष्य था। उस शिष्य को शास्त्र पढ़ाते समय जिनमन्दिर विषयक चौरासी आशातनाओं का वर्णन पढ़ने में आया। उनका विचार करते हुवे वर्धमान के मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि—'यदि इन चौरासी आशातनाओं का रक्षण किया जाय तो कल्याणप्रद होगा'। उसने अपना यह विचार गुरु को निवेदन किया। गुरुजी ने मन में सोचा कि—'इसका मन ठीक नहीं है'। इसलिये उसे आचार्य पद पर स्थापित कर दिया। आचार्य पद मिलने पर भी उनका मन चैत्यगृह में वास करके रहने में स्थिर नहीं हुवा। इसलिये अपने गुरु की सम्मति से वह कुछ मुनियों को साथ लेकर दिल्ली*-वा द ली (?) आदि देशों की तरफ निकल आया। उस समय वहां पर

* भारतवर्ष की राजधानी, जिसे ढिल्ली, योगिनीपुर भी कहते थे।

श्री उद्योतनाचार्य नाम के सूरि विराज रहे थे। उनके पास वर्धमान ने आगम शास्त्र के तत्त्वों का ठीक ज्ञान प्राप्त किया और उन्हीं के समीप उपसंपदा अर्थात् पुनर्दीक्षा ग्रहण की। क्रमशः वे वर्धमान-सूरि बन गये। इसके बाद उन वर्धमानसूरि को इस बात की चिन्ता हुई कि—'सूरिमंत्र का अधिष्ठाता देव कौन है?' इसके जानने के लिये उन्होंने तीन उपवास किये। तीसरा उपवास समाप्त होते ही धरणेन्द्र नामक देव प्रगट हुवा। धरणेन्द्र ने कहा कि—'सूरिमंत्र का अधिष्ठाता मैं हूँ' और फिर उसने सूरिमंत्र के पदों का अलग अलग फल बताया। इससे आचार्य-मंत्र स्फुरायमान हो गया। फिर वे वर्धमानसूरि सारे मुनि-परिवार सहित स्फुरायमान हो गये।

आचार्य जिनेश्वरसूरि

२. इसी अवसर में पण्डित जिनेश्वरगणि[†] ने—जो वर्धमानसूरि के शिष्य थे—निवेदन किया कि भगवन्! 'यदि कहीं देश-विदेश में जाकर प्रचार न किया जाय तो जिनमत के ज्ञान का फल क्या है? सुना है कि गुर्जर देश बहुत बड़ा है और वहाँ चैत्यवासी आचार्य अधिक संख्या में रहते हैं। अतः वहाँ चलना चाहिये।' यह सुनकर श्रीवर्धमानाचार्य ने कहा—'ठीक, किन्तु शकुन-निमित्तादिक देखना परमावश्यक है, इससे सब कार्य शुभ होते हैं।' फिर वे—वर्धमानसूरि—सत्तरह शिष्यों को साथ लेकर भामह नामक बड़े व्यापारी के संघ के साथ चले। क्रम से प्रयाण करते हुये पाली[¶] पहुंचे। एक समय जब श्री वर्धमानसूरि पण्डित जिनेश्वरगणि के साथ बहिर्भूमिका (शौचार्थ) जा रहे थे, उन्हें सोमध्वज नामक जटाधर मिला और उसके साथ मनोहर वार्तालाप हुआ। वार्तालाप के प्रसंग में सोमध्वज ने गुण देखकर आचार्य वर्धमान से प्रश्न किया—

का दौर्गत्यविनाशिनी हरिविरिंच्युग्रप्रवाची च को,
वर्णः को व्यपनीयते च पथिकैरत्यादरेण श्रमः।
चन्द्रः पृच्छति मन्दिरेषु मरुतां शोभाविधायी च को,
दाक्षिण्येन नयेन विश्वविदितः को भूरिविभ्राजते ॥१॥

दुर्गति का नाश करने वाली वस्तु क्या है? विष्णु-ब्रह्मा-शिव का वाचक वर्ण क्या है? पथिक लोग अपने श्रम को सुखपूर्वक कहाँ दूर करते हैं? चन्द्र पूछता है कि मन्दिरों की शोभा बढ़ाने वाली वस्तु क्या है? और जगत् में चतुरता तथा न्याय आदि गुणों से विश्वविख्यात होकर कौन प्रकाशमान है? इन प्रश्नों का 'सोमध्वज' इस प्रकार एक ही पद में सूरिजी ने उत्तर दिया। इसमें से सन्धि विश्लेष-सा, ओम्, अध्वजः, ऐसा किया जाता है। अर्थात् दुर्गति—दारिद्र्य का नाश करने

† जिनेश्वरसूरि का पूर्ववृत्त देखने के लिये देखें, प्रभावकचरितान्तर्गत अभयदेवसूरि चरित पद्य ३१ से ६०।
¶ पाली (जोधपुर स्टेट)।

वाली सा-लक्ष्मी है। ओम् यह शब्द ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीनों का वाचक है अर्थात् इस पद से तीनों ही ग्रहण किये जाते हैं। पथिक लोग अध्वज यानी मार्गजनित श्रम को बड़े चाव से दूर करना चाहते हैं। देवताओं के मन्दिरों में शोभा बढ़ाने वाली वस्तु ध्वज अर्थात् ध्वजा है। मन्दिरों की शोभा ध्वजा से बढ़ती है। चतुराई और नीति में विश्वविख्यात यदि कोई है तो वह सोमध्वज है।

यह उत्तर सुनकर वह तपस्वी बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सूरि जी की बहुत भक्ति की। फिर उसी भामह सेठ के संघ के साथ चलते हुए गुजरात की प्रसिद्ध नगरी अनहिलपुर पाटण में पहुँचे। वहाँ नगर के बाहिर मण्डपिका अर्थात् सरकारी चुङ्गी घर में ठहरे। उस समय वहाँ उसके आस-पास कोट नहीं था, जिससे सुरक्षा हो और शहर में सुसाधुओं का कोई भक्त श्रावक भी नहीं था, जिसके पास जाकर स्थान आदि की याचना की जा सके। वहाँ विराजमान मुनिवृन्द सह आचार्य को ग्रीष्म से आक्रान्त देखकर पण्डित जिनेश्वर ने कहा—'पूज्यपाद ! बैठे रहने से कोई कार्य नहीं होना।' आचार्य ने कहा—'हे सच्छिष्य, क्या करना चाहिये।' तब पण्डित जिनेश्वर ने प्रार्थना की—'यदि आज्ञा हैं तो सामने जो बड़ा घर दिखाई दे रहा है, वहाँ जाऊँ।' आचार्य ने उत्तर दिया—'जाओ'। गुरु को वन्दन कर वे वहाँ से चले। वह घर श्रीदुर्लभराज के पुरोहित का था। उस समय वह पुरोहित अपने शरीर में अभ्यंग-मर्दन करा रहा था। उसके सामने जाकर आशीर्वाद दिया—

> श्रिये कृतनतानंदा, विशेषवृषसंगताः।
> भवन्तु तव विप्रेन्द्र !, ब्रह्म-श्रीधर-शंकराः॥

[हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! भक्तों को आनन्द देने वाले, क्रम से हंस, शेषनाग और वृषभ (बैल) पर चढ़ने वाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव आपकी लक्ष्मी की वृद्धि करें।]

इसको सुनकर पुरोहित बहुत प्रसन्न हुआ और हृदय में विचार किया कि यह साधु कोई बड़ा विचक्षण-बुद्धिमान् ज्ञात होता है। उसी पुरोहित के घर में कई छात्र वेदपाठ कर रहे थे, उसे सुनकर पं० जिनेश्वरगणि ने उनसे कहा—'इस तरह पाठ मत करो, किन्तु इस प्रकार करो'। यह सुनकर पुरोहित ने कहा—'शूद्रों का वेद पठन-पाठन का अधिकार नहीं है'। पण्डित जिनेश्वर ने कहा—'सूत्र तथा अर्थ को जानने वाले हम चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं'। तब पुरोहित ने प्रसन्न होकर पूछा—'आप कहाँ से पधारे हैं और यहाँ कहाँ विराज रहे हैं ?' गणिजी ने उत्तर दिया—'हम दिल्ली प्रान्त से आये हैं और इस देश में हमारे विरोधी मनुष्य होने के कारण हमें कोई ठीक स्थान नहीं मिला है। अभी शहर के बाहर चुङ्गी घर में ठहरे हुये हैं। अठारह यति हैं, सब मेरे पूज्य हैं।' यह सुनकर पुरोहित ने कहा—'यह चतुःशाल वाला मेरा मकान है। इसमें एक तरफ

पर्दा बाँध कर एक मार्ग-द्वार से प्रवेश करके आप सब सुखपूर्वक विराजें। भिक्षा के समय मेरा सेवक आपके साथ रहने से ब्राह्मणों के घरों से आपको सुखपूर्वक भिक्षा प्राप्त हो जावेगी।' इस प्रकार पुरोहित के आग्रह से ये लोग उसके चतुःशाल के एक भाग में आकर ठहर गये। तब यह बात सारे शहर में फैल गई कि 'वसति-निवासी कोई नवीन यति लोग आये हैं।' स्थानीय देवगृह-निवासी यतियों ने भी यह बात सुनी। उन्हें इनका आगमन अच्छा मालूम नहीं हुआ और उन्होंने सोचा कि यदि रोग को उठते ही नाश कर दिया जाय तो अच्छा है। तब उन्होंने अधिकारियों के बालकों को—जो उनके पास पढ़ते थे—बतासे आदि मिठाई देकर प्रसन्न किया और उनके द्वारा नगर में यह बात फैलाई—'ये परदेश से मुनिरूप में कोई गुप्तचर आये हैं, जो दुर्लभराज के राज्य के रहस्य को जानना चाहते हैं।' यह बात सारी जनता में फैल गई और क्रमशः राजसभा तक जा पहुँची। तब राजा ने कहा—'यदि यह ठीक है और ऐसे क्षुद्र पुरुष आये हैं तो इनको किसने आश्रय दिया है?' तब किसी ने कहा—'राजन्! आपके गुरु ने ही अपने घर पर ठहराया है।' उसी समय राजा की आज्ञा से पुरोहित वहाँ बुलाया गया। राजा ने पुरोहित से पूछा— 'यदि ये धूर्त पुरुष हैं तो इनको तुमने अपने यहाँ क्यों स्थान दिया।' पुरोहित ने कहा—यह बुराई किसने फैलाई है? मैं लाख रुपयों की बाजी मारने के लिये ये कौड़ियां फैंकता हूँ, इनमें दूषण सिद्ध करने वाला इन कौड़ियों का स्पर्श करे। परन्तु कोई भी ऐसा न कर सका। तब पुरोहित ने राजा से कहा— 'देव! मेरे घर में ठहरे हुये यतिजन साक्षात् मूर्तिमान् धर्मपुञ्ज से दिखाई देते हैं, उनमें कोई प्रकार का दूषण नहीं हैं।' यह सुनकर सूराचार्य आदि स्थानीय चैत्यवासी यतियों ने विचार किया-'इन विदेशी मुनियों को शास्त्रार्थ में जीतकर निकाल देना होगा।' उन्होंने पुरोहित से कहा कि हम तुम्हारे घर में ठहरे हुए मुनियों के साथ शास्त्र-विचार करना चाहते हैं।' पुरोहित ने कहा—'उनसे पूछ कर जैसा होगा वैसा मैं उत्तर दूंगा।' फिर उसने अपने घर जाकर उन मुनियों से कहा—'महाराज! विपक्षी लोग आप पूज्यों के साथ शास्त्र-विचार करना चाहते हैं।' उन्होंने कहा— 'ठीक ही है, तुम डरो मत और उनसे यह कहना—अगर आप लोग उनके साथ वाद-विवाद करना चाहते हैं तो वे श्रीदुर्लभराजा के सामने जहाँ तुम शास्त्रार्थ के लिये कहोगे, वहाँ करने को तैयार हैं।' इसको सुनकर उन्होंने सोचा कि यहाँ के सब अधिकारी हमारे वशीभूत हैं, इनसे कोई भय नहीं है। अतः राजा के समक्ष राजसभा में ही शास्त्र-विचार किया जाय। तब पञ्चाशरीय पार्श्वनाथ भगवान् के के बड़े मन्दिर में अमुक दिन शास्त्र चर्चा होगी, ऐसा निवेदन पुरोहित की ओर से सर्व साधारण को कर दिया गया। अवसर पाकर पुरोहित ने एकान्त में राजा से कहा—देव! आगन्तुक मुनि-जनों के साथ स्थानीय यति शास्त्र-विचार करना चाहते हैं और विचार न्यायवादी राजा की अध्यक्षता में किया गया शोभा देता है। अतः आप कृपा करके उस अवसर पर सभा-भवन में अवश्य विराजें। इस पर राजा ने कहा—'ठीक है, यह तो हमारा कर्त्तव्य ही है।'

तदनन्तर नियत दिन उसी बड़े मन्दिर में श्री सूराचार्य आदि स्थानीय चौरासी आचार्य अपने अपने मान मरतबे के साथ आकर बैठ गये। फिर प्रधान पुरुषों ने राजा को आमंत्रित किया। वह भी आकर अपने स्थान पर बैठ गया। तब राजा ने पुरोहित से कहा—जाओ, तुम अपने मान्य मुनियों को बुला लाओ। तब पुरोहित ने वहां जाकर श्री वर्धमानसूरिजी से प्रार्थना की—स्थानीय आचार्य परिवार सहित वहां आगये हैं और श्री दुर्लभराज नरेश पञ्चाशरीय मन्दिर में आपके पधारने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजा ने उन स्थानीय आचार्यों को ताम्बूल देकर सम्मानित किया है। पुरोहित के मुख से यह बात सुनकर श्रीवर्धमानसूरिजी ने श्रीसुधर्मस्वामी, श्रीजम्बूस्वामी आदि चौदह पूर्वधर युगप्रधान सूरियों का हृदय में ध्यान किया और पण्डित जिनेश्वर आदि कई एक गीतार्थविचक्षण साधुओं को साथ लेकर शुभ शकुन से सभा-भवन को चले। वहां पहुँचने पर राजा से निवेदित स्थान पर पण्डित जिनेश्वर द्वारा बिछाये हुए आसन पर आचार्यश्री बैठ गये। पंडित जिनेश्वर भी गुरु की आज्ञा से उनके चरणों के पास बैठ गये। राजा इन्हें भी ताम्बूल भेंट करने लगा। तब सब उपस्थित जनता के समक्ष गुरुवर बोले—राजन्! साधु पुरुषों को पान खाना उचित नहीं है, क्यों कि शास्त्रों में कहा है कि —

ब्रह्मचारियतीनां च, विधवानां च योषिताम्।
ताम्बूलभक्षणं विप्रा!, गोमांसान्न विशिष्यते॥

["ब्रह्मचारी, यति और विधवा स्त्रियों को ताम्बूल भक्षण करना गोमांस के समान है।"] यह सुनकर वहां उपस्थित विवेकवान् जनसंघ की आचार्य के प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। शास्त्रार्थ विचार के विषय में गुरुजी बोले—'हमारी तरफ से पण्डित जिनेश्वर उत्तर प्रत्युत्तर करेंगे और ये जो कहेंगे, वह हमें मान्य होगा'। इसे सुनकर सभी ने कहा कि ऐसा ही हो। इसके बाद पूर्व पक्ष ग्रहण करते हुए, सर्वप्रधान सूराचार्य ने कहा—'जो मुनि वसति में निवास करते हैं, वे प्रायः षड्दर्शन से बाह्य हैं। इन षड्-दर्शनों में क्षपणक, जटी आदि का समावेश है, इनमें से यह कोई भी नहीं है। ऐसा अर्थ निर्णय करने के लिये नूतनवादस्थल नामक पुस्तक पढ़ने के लिये उन्होंने अपने हाथ में ली। उस अवसर पर 'भावी में भूत की तरह उपचार होता है' इस न्याय का अवलम्बन करके श्रीजिनेश्वरसूरि ने कहा—'श्रीदुर्लभराज! आपके राज्य में क्या पूर्व-पुरुषों से निर्धारित नीति चलती है या आधुनिक पुरुषों की निर्माण की हुई नवीन नीति?'। तब राजा ने कहा—'पूर्व पुरुषों की बनाई हुई नीति ही हमारे देश में प्रचलित है, नवीन राजनीति नहीं।' तदनन्तर जिनेश्वरसूरि ने कहा—'महाराज! हमारे जैनमत में भी ऐसे ही पूर्व पुरुष जो गणधर और चतुर्दश पूर्वधर हो गये हैं, उन्हीं का बताया हुआ मार्ग प्रमाणस्वरूप माना जाता है, दूसरा नहीं।' तब राजा ने कहा—बहुत ठीक है। तदनन्तर जिने-

श्वरसूरि ने कहा—राजन् ! हम लोग बहुत दूर देश से आये हैं, अतः हमारे पूर्वाचार्यों के बनाये हुये सिद्धान्त-ग्रन्थ हम अपने साथ नहीं लाये हैं। इसलिये, महाराज ! इन चैत्यवासी आचार्यों के मठों से पूर्वाचार्यों के विरचित सिद्धान्त ग्रन्थों की गठरी मँगवा दीजिये, जिनके आधार पर मार्ग अमार्ग का निर्णय किया जा सके।' तब राजा ने उन चैत्यवासी यतियों को सम्बोधित करके कहा—ये बसतिवासी मुनि ठीक कहते हैं। पुस्तकें लाने के लिये मैं अपने सरकारी पुरुषों को भेजता हूँ। आप अपने यहाँ सन्देशा भेज दें जिससे इनको वे पुस्तकें सौंप दी जायँ। वे चैत्यवासी यति जान गये थे कि इनका पक्ष ही प्रबल रहेगा, अतः चुप्पी साधकर बैठे रहे। तब राजा ने ही राजकीय पुरुषों को सिद्धान्त-ग्रन्थों की गठरी लाने के लिये शीघ्र भेजा। वे गये और शीघ्र ही पुस्तकों के गट्ठड़ ले आये। उसे लाते ही उसी समय वह खोला गया। देवगुरु की कृपा से उसमें सबसे पहिले चतुर्दश पूर्वधर प्रणीत 'दशवैकालिकसूत्र' हाथ में आया। उसमें भी सबसे पूर्व यह गाथा निकली—

अन्नट्ठं पगडं लेणं, भइज्ज सयणासणं।
उच्चारभूमिसंपन्नं, इत्थीपसुविवज्जियं ॥

[साधु को ऐसे स्थान में रहना चाहिये जो स्थान साधु के निमित्त नहीं, किन्तु अन्य किसी के लिये बनाया गया हो, जिसमें खान-पान और सोने की सुविधा हो, जिसमें मलमूत्र त्याग के लिये उपयुक्त स्थान निश्चित हो और जो स्त्री, पशु, पण्डग आदि से वर्जित हो।]

इस प्रकार की बसति में साधुओं को रहना चाहिये, न कि देव मन्दिरों में। यह सुनकर राजा ने कहा—यह तो ठीक ही कहा है। और जो सब अधिकारी लोग थे, उन्होंने जान लिया कि हमारे गुरु निरुत्तर हो गये हैं। तब वहां पर सब अधिकारी लोग पटवे से लेकर श्रीकरण मंत्री पर्यन्त राजा से प्रार्थना करने लगे—'ये चैत्यवासी साधु तो हमारे गुरु हैं। इन लोगों ने समझा था कि—राजा हमें बहुत मानता है। इसलिये हमारे लिहाज से हमारे साधुओं के प्रति भी पक्षपात करेगा ही।' पर राजा पक्षपाती नहीं था, वह तो न्यायप्रिय था। इस अवसर को देखकर जिनेश्वरसूरि ने कहा—महाराज! यहां कोई श्रीकरण अधिकारी का गुरु है, तो कोई मंत्री का, तो कोई पटवों का गुरु है। अधिक क्या कहें, इनमें सभी का परस्पर गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बना हुआ है। और भी हम आपसे पूछते हैं कि 'इस लाठी का सम्बन्ध किसके साथ है?' राजा ने कहा इसका सम्बन्ध मेरे साथ है। तब जिनेश्वरसूरि ने कहा—'महाराज! इस तरह सब कोई किसी न किसी का सम्बन्धी बना ही हुआ है। पर हमारा कोई सम्बन्धी नहीं है। यह सुनकर राजा बोला—आप मेरे आत्म-सम्बन्धी गुरु हैं। इसके बाद राजा ने अपने अधिकारियों से कहा—अरे, अन्य सभी आचार्यों के लिये रत्नपट्ट से निर्मित सात-सात गादियां बैठने के लिये हैं और हमारे गुरु नीचे आसन पर बैठे हैं,

क्या हमारे यहाँ गादियाँ नहीं ? इनके लिये भी गादियाँ लाओ। यह सुनकर आचार्य जिनेश्वर ने कहा—'राजन ! साधुओं को गादी पर बैठना उचित नहीं है।' शास्त्रों में कहा है—

भवति नियतमेवासंयमः स्याद्विभूषा, नृपतिककुद! एतल्लोकहासश्च भिक्षोः।
स्फुटतर इह संगः सातशीलत्वमुच्चैरिति न खलु मुमुक्षोः संगतं गद्दिकादि ॥

[मुमुक्षु को गादी आदि का उपयोग करना योग्य नहीं है। यह तो शृङ्गार की एक चीज है, जिससे अवश्य ही असंयम—मन का चांचल्य होता है। इससे लोक में साधु की हँसी होती है। यह आसक्ति—कारक है और इससे सुखशीलता बढ़ती है। इसलिये 'हे राजन् ! इसकी हमें आवश्यकता नहीं है।]

इस प्रकार इस पद्य का अर्थ राजा को सुनाया। राजा ने पूछा—'आप कहां निवास करते हैं ?' सूरिजी ने कहा—महाराज ! जिस नगर में अनेक विपक्षी हों, वहाँ स्थान की प्राप्ति कैसी ? उनका यह उत्तर सुनकर राजा ने कहा—नगर के 'कर डि ह ट्टी' नामक मोहल्ले में एक वंशहीन पुरुष का बहुत बड़ा घर खाली पड़ा है, उसमें आप निवास करें। राजा की आज्ञा से उसी क्षण वह स्थान प्राप्त हो गया। राजा ने पूछा—आपके भोजन की क्या व्यवस्था है ? सूरिजी ने उत्तर दिया—महाराज ! भोजन की भी वैसी ही कठिनता है। राजा ने पूछा—आप कितने साधु हैं ? सूरिजी ने कहा—अठारह साधु हैं। राजा ने पुनः कहा—एक हाथी की खुराक से आप सब तृप्त हो सकेंगे ? तब सूरिजी ने कहा—महाराज ! साधुओं को राजपिण्ड कल्पित नहीं है। राजपिण्ड का शास्त्र में निषेध है। राजा बोला—अस्तु, ऐसा न सही। भिक्षा के समय राजकर्मचारी के साथ रहने से आप लोगों को भिक्षा सुलभ हो जायगी। फिर वाद-विवाद में विपक्षियों को परास्त करके राजा और राजकीय अधिकारी पुरुषों के साथ उन्होंने वसति में प्रवेश किया। प्रथम ही प्रथम गुजरात में वसतिमार्ग* की स्थापना हुई†।

३. दूसरे दिन विपक्षियों ने सोचा कि हमारे दोनों उपाय व्यर्थ हो गये। अब इन को यहां से निकालने का और कोई उपाय सोचना चाहिये। उन्होंने सोचा—राजा पटरानी के वश में है। वह जो कहती है, वही करता है। इस लिये किसी प्रकार रानी को प्रसन्न करके उसके द्वारा इन्हें

---

* तुलना कीजिये—

ततः प्रभृति सञ्जज्ञे, वसतीनां परम्परा। महद्भिः स्थापितं वृद्धिमश्नुते नात्र संशयः ॥८९॥
(प्रभावक चरित)

† इसी विजय के उपलक्ष में आचार्य जिनेश्वर की पूर्ण एवं कठोर साधुता के कारण इनकी परम्परा यहीं से सुविहित-विधि—खरतर पक्ष के नाम से प्रसिद्ध हुई। देखें—इसी का द्वितीय खण्ड और विनयसागर लिखित 'वल्लभ भारती' की प्रस्तावना।

निकलवाना चाहिये। वे सब अधिकारीगण अपने अपने गुरु के कथन से आम, केले, दाख आदि फलों से भरी हुई डालियां तथा कई आभूषण सहित सुन्दर सुन्दर वस्त्रों की भेंट लेकर रानी के पास गये। जिस तरह भक्त लोग भगवान् के सामने बलि-भेंट-पूजा रखते हैं, उसी तरह उन्होंने रानी के आगे यह भेंट धरी। इससे रानी राजी हुई और उनका वाञ्छित कार्य करने के लिये उद्यत हुई। उसी समय राजा को रानी से कोई बात पुछवाने की आवश्यकता आपड़ी। राजा ने एक नौकर को-जो दिल्ली प्रांत का रहने वाला था-रानी के पास भेजा और कहा कि यह बात रानी से कह आओ। महाराज, कह आता हूँ। ऐसा कहकर वह तुरन्त रानी के समीप गया और राजा का प्रयोजन उससे निवेदन किया। उसने उस समय वहां अनेक उक्त प्रकार की भेंट लेकर बैठे हुए बड़े बड़े अधिकारियों को बैठा देखकर सोचा कि यह तो हमारे देश से आये हुये आचार्यों को निकालने का उपाय सोचा जाना प्रतीत होता है। अतः मुझे भी उनका कुछ पक्षपोषण करने के लिये राजा से कहना चाहिये। ऐसा विचार करता हुआ वह राजा के पास पहुँचा और बोला—महाराज! आपका सन्देश रानी को निवेदन कर दिया है; किन्तु महाराज! मैंने वहां पर एक बड़ा कौतुक देखा। राजा ने पूछा—भद्र! सो कैसा? सेवक ने कहा--रानी अर्हद्रूप सी हो रही है। जैसे अर्हद् भगवान् की प्रतिमा के आगे बलि-पूजा-रचना की जाती है, उसी प्रकार महारानी के आगे भी अधिकारियों ने पूजा-सामग्री का ढेर लगा रक्खा है। तरह-तरह के भूषण-वसन भेंट चढ़ाये जा रहे हैं। यह सुनकर राजा समझ गया कि-'जिन न्यायवादी मुनियों को मैंने गुरु-रूप में स्वीकार किया है, उनका दुष्ट लोग अब भी पीछा नहीं छोड़ रहे हैं।' राजा ने उसी संवाददाता पुरुष को शीघ्र रानी के पास भेजकर कहलवाया-'तुम्हारे सामने इन लोगों ने जो भेंट धरी है, उसमें से यदि तुमने एक सुपारी भी ले ली है तो तुम मेरी नहीं और मैं तुम्हारा नहीं अर्थात् तुम्हारा हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा। तुम तुम्हारे और हम हमारे।' राजा का यह आदेश सुनकर रानी भयभीत हुई और बोली--'जो पुरुष जो वस्तु लाया है, उसे अपने घर ले जाय। मुझे इन वस्तुओं से कोई प्रयोजन नहीं है।' इस प्रकार उन विपक्षियों का यह प्रयत्न भी निष्फल हुआ।

४. फिर उन्होंने चौथा उपाय सोचा कि-'यदि राजा विदेशी मुनियों को बहुत अधिक मानेगा तो हम सब देवस्थानों को शून्य छोड़कर विदेशों में चले जायेंगे।' यह समाचार किसी ने राजा के पास पहुँचा दिया। राजा ने स्पष्ट कहा कि 'यदि उन्हें यहाँ रहना पसन्द नहीं है तो वे खुशी से जा सकते हैं।' वे लोग झुंझला कर वहां से निकल गये। उनके जाने बाद देवमन्दिरों में पूजा के लिए ब्राह्मणों को पुजारी बनाकर रख लिया गया। वे चैत्यवासी यति-जन घटनाचक्र के वश हो देवमंदिरों को छोड़कर चले तो गये, किन्तु मन्दिरों से बाहिर रहने में उन्हें बड़ी कठिनता प्रतीत होने लगी। खान, पान, स्थान, यान, आसन, आभूषण आदि वैभव-सुख-उपभोग के वे इतने परवश (दास) हो

चुके थे कि मन्दिरों के बिना उनके सारे आनन्द में इतनी महती बाधा उपस्थित हो गई, जिसको वे किसी प्रकार भी नहीं सह सके और मानापमान का त्याग करके वे लोग भिन्न-भिन्न बहानों से एक एक करके सब ही वापिस मन्दिरों में आकर रहने लग गये।

५. श्रीवर्धमानसूरि भी राज-सम्मानित होकर अपने शिष्य-परिवार सहित उस देश में सर्वत्र विचरण करने लगे। अब कोई भी किसी भी प्रकार से इनके सामने बोलने की क्षमता नहीं रखता था। इसके बाद श्रीजिनेश्वरसूरि की योग्यता और विद्वत्ता देखकर शुभ लग्न में उन्हें अपने पाट पर स्थापित किया और उनके भाई बुद्धिसागर को आचार्य पद दिया एवं उनकी बहिन कल्याणमति को श्रेष्ठ प्रवर्तिनी पद दिया गया। फिर इस तरह ग्राम-ग्रामान्तरों में विचरण करते हुये आचार्य जिनेश्वरसूरि ने जिनचंद्र, अभयदेव, धनेश्वर, हरिभद्र, प्रसन्नचंद्र, धर्मदेव, सहदेव, सुमति आदि अनेकों को दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया। इन दिनों श्रीवर्धमानसूरिजी का शरीर वृद्धावस्था के कारण शिथिल हो गया था। अतः आबू तीर्थ में सिद्धान्त-विधि से अनशन लेकर देवगति को प्राप्त हुए।

६. तत्पश्चात् जिनेश्वरसूरि ने जिनचंद्र और अभयदेव को गुणपात्र जानकर सूरि पद से विभूषित किया और वे साधना करते-करते क्रम से युगप्रधान पद पर आसीन हो गये। धनेश्वर—जिनको जिनभद्र भी नाम था—को तथा हरिभद्र को सूरि पद और धर्मदेव, सुमति, विमल इन तीनों को उपाध्याय पद से अलंकृत किया। धर्मदेवोपाध्याय और सहदेवगणि ये दोनों भाई थे। धर्मदेव उपाध्याय ने दोनों भाई हरिसिंह और सर्वदेवगणि को एवं पण्डित सोमचंद्र को अपना शिष्य बनाया। सहदेवगणि ने अशोकचंद्र को अपना शिष्य बनाया, जो गुरुजी का अत्यन्त प्रिय था। उसको जिनचंद्रसूरि ने अच्छी तरह शिक्षित करके आचार्य पद पर आरूढ़ किया। इन्होंने अपने स्थान पर हरिसिंहाचार्य को स्थापित किया। प्रसन्नचंद्र और देवभद्र नामक दो सूरि और थे। इनमें देवभद्रसूरि सुमति उपाध्याय के शिष्य थे। प्रसन्नचंद्र आदि चार शिष्यों को अभयदेवसूरिजी ने न्याय आदि शास्त्र पढ़ाये थे। इसीलिए जिनवल्लभगणि ने चित्रकूटीय प्रशस्ति में लिखा है—

सत्तर्कन्यायचर्चार्चितचतुरगिरः श्रीप्रसन्नेन्दुसूरिः,
सूरिः श्रीवर्धमानो यतिपतिहरिभद्रो मुनीड्देवभद्रः।
इत्याद्याः सर्वविद्यार्णवसकलभुवः सञ्चरिष्णूरुकीर्तिः,
स्तम्भायन्तेऽधुनापि श्रुतचरणरमाराजिनो यस्य शिष्याः॥

[तर्क न्याय चर्चा से भूषित चतुरवाणी वाले प्रसन्नचन्द्रसूरि, वर्धमानसूरि, हरिभद्रसूरि, देवभद्रसूरि आदि के विद्यागुरु अभयदेवाचार्य थे। ये समस्त—विद्यारूपी समुद्र के पान करने में अगस्त्य

ऋषि के समान थे। ऊपर फैलने वाली कीर्ति के आधार स्तम्भ थे और ज्ञान-चारित्र्य की लक्ष्मी से सुशोभित थे।]

७. श्रीजिनेश्वरसूरि वहाँ से विहार करके आशापल्ली नामक नगरी में गये। वहाँ आपके कई दिन व्याख्यान हुए। व्याख्यान में बड़े २ विचक्षण पुरुष उपस्थित हुआ करते थे। वहाँ पर महाराज ने अनेक अर्थों एवं वर्णन से संयुक्त वैदग्ध्यपूर्ण लीलावती कथा नामक ग्रन्थ की रचना की। वहाँ से डिंडियाणा† ग्राम में गये। आपके पास अधिक पुस्तकें नहीं थीं। इसलिए गाँव के निवासी चैत्यवासी आचार्यों से व्याख्यानार्थ पुस्तकें माँगी। उन चैत्यवासियों का अन्तःकरण ईर्ष्या-द्वेष से मलिन था, अतः उनने पुस्तकें नहीं दीं। जिनेश्वरसूरि दिन के उत्तरार्ध में रचना करते और प्रातःकाल व्याख्यान करते। चतुर्मास में कथावाचकों के हितार्थ 'कथानककोश' की रचना की*। उन दिनों उसी ग्राम में कुछ साध्वियों के साथ मरुदेवी नामवाली प्रवर्तिनी आई हुई थीं। उनने वहाँ चालीस दिन का संथारा लिया था। श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने समाधिकाल में संलेखना पाठ सुनाया और कहा था—'आर्ये! इस शरीर को त्याग कर दूसरे भव में आप जहाँ उत्पन्न हों, वह स्थान हमें बतला दीजियेगा।' उसने भी कहा—'अवश्य निवेदन करूँगी।' पञ्च-परमेष्ठी का ध्यान करती हुई वह स्वर्ग को सिधार गई। वहाँ से परमर्द्धिक देवलोक में उत्पन्न हुई। उन्हीं दिनों एक श्रावक युगप्रधान आचार्य का निश्चय करने के लिए उज्जयन्त पर्वत के शिखर पर जाकर उपवास करने लगा। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक कोई भी देवता मुझे युगप्रधान नहीं बतला देगा, तब तक मैं निराहार रहूँगा। सौभाग्य से उन्हीं दिनों ब्रह्मशान्ति नामक यक्ष—जो भगवान् का परिचारक था—तीर्थंकर वन्दना के लिये महाविदेह क्षेत्र में गया था। वहाँ पर देव-रूप धारिणी मरुदेवी ने उसके द्वारा जिनेश्वरसूरिजी के पास यह सन्देश भेजा—

मरुदेवि नाम अज्जा गणिणी जा आसि तुम्ह गच्छमि।
सग्गंमि गया पढमे, देवो जाओ महिड्ढीओ॥
टक्कलयंमि विमाणे दुसागराओ सुरो समुप्पन्नो।
समणेस सिरिजिणेसरसूरिस्स इमं कहिज्जासु॥
टक्कउरे जिणवंदणनिमित्तमिहागएण संदिट्ठं।
चरणंमि उज्जमो भे कायव्वो किं व सेसेसु॥

[आपके गच्छ में जो मरुदेवी नामक प्रवर्तिनी आर्या थी, वह प्रथम स्वर्ग में जाकर महर्धिक देव हुई है। वह टक्कलनामक विमान में है और दो सागर आयुष्य के परिमाण से उत्पन्न हुई है।

† वर्तमान में इसे डीडवाणा कहते हैं। जो जोधपुर स्टेट के पर्वतसर डिवीजन में है।
* सिंघी जैन ग्रन्थमाला से मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित स्वोपज्ञवृत्ति सह प्रकाशित हो चुकी है।

मुनीन्द्र जिनेश्वरसूरि को यह समाचार मेरी ओर से कह देना और कहना कि—महर्द्धिक देव-देहधारिणी मरुदेवी जिन-वन्दना के लिये टक्कलपुर में आई थी, वहाँ यह सन्देश दिया है कि आप चारित्र के लिये अधिक से अधिक उद्यम करें। शेष अन्य कार्यों से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।]

उस ब्रह्मशान्ति नामक यक्ष ने यह सन्देश जिनेश्वरसूरि को नहीं सुनाया; किन्तु गिरिनार पर्वत के शिखर पर युगप्रधान का निश्चय करने के लिये उपवास करने वाले उस श्रावक को उठाया और उसके पहिनने के वस्त्र पर म० स० ट० स० ट० च० ये अक्षर लिख दिये और कहा कि नगर में जाओ और वहाँ पर जिस आचार्य के हाथ से धोने पर ये अक्षर मिट जायँ, उसी को युग-प्रधान आचार्य समझ लेना। वह श्रावक वहाँ से चलकर अनेक शहरों में गया और अनेक आचार्यों को वे अक्षर दिखाये, किन्तु उनके तात्पर्य को कोई भी नहीं जान सका। बाद में सौभाग्य से वह उस ग्राम में पहुंचा जहाँ जिनेश्वरसूरि विराज रहे थे। सूरिजी ने उन अक्षरों को बाँच कर जान लिया कि तीन गाथाओं के ये आदि अक्षर हैं। फिर उनको वस्त्र पर से धो दिया और सन्देश के रूप में मरुदेवी की कही हुई तीनों गाथायें ज्यों की त्यों लिख दीं। इस बात को देखकर उसको यह निश्चय हो गया कि—ये ही युगप्रधान आचार्य हैं और मुख्य रूप से उनको अपना गुरु स्वीकार किया। इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रदर्शित धर्म को अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार से प्रदीप्त करके श्रीजिनेश्वरसूरिजी देवलोक पधार गये।

आचार्य जिनचन्द्रसूरि

८. आचार्य जिनेश्वर के पश्चात् सूरियों में श्रेष्ठ जिनचन्द्रसूरि हुये, जिनके अष्टादश-नाममाला का पाठ तथा अर्थ सब अच्छी तरह जिह्वाग्र उपस्थित था। सब शास्त्रों के पारङ्गत इन महाराज ने अठारह हजार प्रमाण वाली संवेगरङ्गशाला[†] की सं० ११२५ में रचना की। यह ग्रन्थ भव्य जीवों के लिये मोक्षरूपी महल का सोपान सा है। आपने जावालिपुर[*] में जाकर श्रावकों की सभा में—'चीवंदणमावस्सय' इत्यादि गाथाओं की व्याख्या करते हुए जो सिद्धान्तसंवाद कहे थे, उनको उन्हीं के शिष्य ने लिख कर तीन सौ श्लोकों के परिमाण का दिनचर्या[¶] नामक ग्रन्थ तैयार कर दिया, जो श्रावक समाज के लिये बहुत ही उपकारी सिद्ध हुआ है। वे जिनचन्द्रसूरि भी अपने काल में जिनधर्म का यथार्थ प्रकाश फैलाकर देवगति को प्राप्त हुये।

---

† इसका संशोधन आचार्य देवभद्र और श्री जिनवल्लभगणि ने किया था।

* जावालिपुर 'जालोर' को कहते हैं, जो वर्तमान में जोधपुर स्टेट में है। इसका 'स्वर्णगिरि' नाम भी कई ग्रन्थों में मिलता है।

¶ सम्भवतः यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं है।

आचार्य अभयदेवसूरि

६. तदनन्तर—नवाङ्गी व्याख्याकार युगप्रधान श्रीमद् अभयदेवसूरि हुए। इन्होंने नौ अङ्गों की व्याख्या करने में जो अपनी बुद्धि की कुशलता प्रकट की है उसका स्वरूप इस प्रकार है—साधुओं की चर्या में अग्रगण्य श्री अभयदेवसूरिजी क्रम से ग्रामानुग्राम विहार करते हुये शम्भाणा नामक ग्राम में गये। वहां पर किसी रोग के कारण आपका शरीर अस्वस्थ हो गया। जैसे जैसे औषधि आदि का प्रयोग किया गया वैसे वैसे घटने के बजाय रोग अधिक से अधिक बढ़ता ही गया। जरा भी आराम नहीं हुआ। चतुर्दशी के दिन कई योजन दूर रहने वाले श्रावक भी महाराज के साथ पाक्षिक प्रतिक्रमण करने को आया करते थे। महाराज ने किसी समय अपने शरीर को अधिक रोगग्रस्त जानकर सब श्रावकों को बुलाकर आदेश दिया—'आगामिनी चतुर्दशी के दिन हम संथारा लेंगे। इसलिये मिथ्या-दुष्कृत-दान खमत-खामणा के वास्ते आप लोगों की उपस्थिति आवश्यक है।' सूरिजी के इस निश्चय के बाद त्रयोदशी के दिन अर्धरात्रि के समय शासनदेवी प्रगट हुई और उसने सूरिजी से कहा—'सोते हो या जागते हो?' दुर्बलतावश मन्द स्वर से सूरिजी ने कहा—'जागता हूँ'। देवी ने कहा—'शीघ्र उठिये और उलझी हुई इस नौसूत्ररूपी कूकड़ी को सुलझाइये।' सूरिजी बोले—'समर्थ नहीं हूँ 'माँ'।' देवी बोली—'क्यों, शक्ति क्यों नहीं है।' अभी तो बहुत वर्षों तक जीवित रहोगे। नव अङ्गों की व्याख्या तुम्हारे ही हाथों से होगी।' आचार्य ने कहा—'मेरे शरीर की तो यह अवस्था है, मैं व्याख्या कैसे कर सकूँगा?' तब देवी ने उन्हें उपदेश दिया—स्तम्भनकपुर* में सेढी नदी के किनारे खाकर के सूखे पत्तों के नीचे पार्श्वनाथ भगवान् की स्वयम्भू प्रतिमा विद्यमान है। उस प्रतिमा के आगे भक्तिभाव से स्तवना कीजिये। आपका शरीर स्वस्थ हो जायगा। ऐसा कह कर देवी अदृश्य हो गई। प्रातःकाल होते ही गुरुजी अन्तिम मिथ्या-दुष्कृत दान देंगे—इस अभिप्राय से स्थानीय और बाहिर के रहने वाले सब श्रावक एकत्रित होकर आये और श्रीपूज्यजी को वन्दना की। पूज्यश्री ने कहा—'हम पार्श्वनाथ भगवान् की वन्दना करने के लिये स्तम्भनकपुर जायेंगे। अब यहां नहीं रहेंगे और अब संथारा भी नहीं लिया जायगा।' सूरीश्वर के विचार में सहसा परिवर्तन देखकर श्रावकों को विश्वास हो गया कि महाराज को अवश्य ही किसी न किसी शासन देव का उपदेश हुआ है। उन्होंने निवेदन किया—भगवन्! हम लोग भी भगवद्वन्दन के लिये आपके साथ चलेंगे। यात्रार्थी श्रावकों का संघ तैयार हो गया। महाराज के लिये यान का प्रबन्ध किया गया। शुभ शकुन में सारा ही संघ वहां से रवाना हो गया। रोग के कारण महाराज की भूख बन्द हो गई थी। परन्तु देवगुरु की कृपा से मार्ग में पहले ही प्रयाण में महाराज की भूख कुछ-कुछ जागृत हुई और षड् रसों की अभिलाषा होने लगी। चलते-चलते जब

* वर्तमान 'खम्भात'।

धवलक्का[1] नामक ग्राम में पहुँचे, तब तक तो सूरिजी का सब रोग दूर होकर शरीर स्वस्थ हो गया। स्वस्थ होने पर आचार्यश्री ने वाहन का त्याग कर दिया और पैदल ही यात्रा करते हुये खंभात पहुँचे। वहां पर श्रावक लोग श्री पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा को शासन देवी के कहने के अनुसार खोजने लगे। परन्तु उन्हें कहीं भी नहीं दिखाई दी। हताश होकर गुरुजी से आकर पूछा—'भगवन् ! प्रतिमा किस स्थान पर है ?' गुरुजी ने कहा—'ढाक के पत्तों के ढेर के नीचे देखो।' गुरुजी की आज्ञानुसार पत्तों को हटाकर सबने देदीप्यमान प्रतिमा देखी। वहां के निवासियों से भक्तवृन्द को ज्ञात हुआ कि यहां पर एक गाय प्रतिदिन आकर भगवान् की प्रतिमा को स्नान कराने के लिये दूध झारती थी। भगवान् की प्रतिमा के दर्शन करके श्रावक बड़े आनन्द विभोर हुये और गुरुजी से आकर निवेदन किया—भगवन् ! आपके बतलाये हुए स्थान पर प्रतिमा प्राप्त हो गई है। श्रावकों के ये वचन सुनकर आचार्य भगवद्वन्दना के लिये चले। वहां प्रतिमा के दर्शन करके भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुये आचार्य जी ने खड़े-खड़े ही शासन देवी की सहायता से 'जय तिहुयण' आदि बत्तीस पद्यों के स्तोत्र की रचना की। इस स्तोत्र में अन्तिम दो गाथायें देवताओं का आकर्षण करने वाली थी। इसलिये देवताओं ने आचार्य महाराज से कहा—'भगवन् ! नमस्कार सम्बन्धी तीस गाथाओं के स्तोत्र-पाठ से ही हम प्रसन्न होकर पाठ करने वालों का कल्याण करेंगे। अन्तिम दो गाथाओं के पाठ से तो हमको प्रत्यक्ष उपस्थित होना पड़ेगा, जो हमारे लिये कष्टदायी होगा। अतः स्तोत्र में से अन्त की दो गाथाओं का संहरण कर दीजिये।' देवताओं के अनुरोध से आचार्य ने स्तोत्र में से वे दो गाथायें कम कर दीं। वहां पर आचार्य महाराज ने सारे समुदाय के साथ वन्दना की और अनेक उपचारों से विस्तारपूर्वक पूजा कर उस प्रतिमा की वहां स्थापना की और वहां पर एक सुन्दर विशाल देव-मन्दिर का निर्माण किया गया। तभी से विश्व में श्री अभयदेवसूरि द्वारा स्थापित सब मनोरथों का पूर्ण करने वाला यह श्री पार्श्वनाथ स्वामी का तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

१०. वहां से विहार कर आचार्य महाराज पाटण शहर में आ गये। वहां पर स्वर्गीय जिनेश्वरसूरि द्वारा प्रतिष्ठित 'करडिहट्टी' बसति में रहे। सब प्रकार की सुविधा देखकर स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, विवाहप्रज्ञप्ति आदि नौ अङ्गों की टीका का प्रणयन प्रारम्भ किया। व्याख्या करते समय कहीं पर जब-जब उन्हें सन्देह होता तो वे जया-विजया-जयन्ती-अपराजिता नामक शासन देवियों का स्मरण करते थे। वे देवियाँ महाविदेह क्षेत्र में विराजमान तीर्थंकर भगवान् से पूछकर तब-तब उनका सन्देह निवारण करती थीं।

११. उन्हीं दिनों में चैत्यवासी आचार्यों में प्रधान द्रोणाचार्य ने भी सिद्धान्त-व्याख्या प्रारम्भ की। अपना २ पुट्ठा लेकर सभी आचार्य उनके पास श्रवण करने आने लगे। महाराज

[1] वर्तमान 'धोलका' गुर्जरप्रान्त।

अभयदेव सूरिजी भी वहाँ जाया करते थे। द्रोणाचार्य आये हुये सब आचार्यों को अपने पास आसन पर बिठलाता था। सिद्धान्तों की व्याख्या करते समय जिन जिन गाथाओं में द्रोणाचार्य को सन्देह होता था, वहाँ वे इतने मन्द स्वर से बोलते थे कि दूसरों को कुछ सुनाई नहीं देता था। यह देखकर दूसरे दिन अभयदेवसूरिजी ने व्याख्यान करने योग्य प्रकरण की सुन्दर व्याख्या कर के द्रोणाचार्य को ला दी और कहा "इसे देखकर इसके अनुसार आप सिद्धान्त की व्याख्या करें।" जो कोई भी उस व्याख्या को देखता था, वह आश्चर्य-चकित हो उठता था। अतः द्रोणाचार्य ने जब उस व्याख्या को पढ़ा तो उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे-"यह व्याख्या गणधरों की बनाई हुई है या अभयदेव सूरि की ?" जब उन्हें मालूम हुआ कि अभयदेवसूरि की ही बनाई हुई है; तब तो द्रोणाचार्य के मन में अभयदेवसूरि के प्रति सम्मान का भाव बहुत बढ़ गया। दूसरे दिन व्याख्यान के समय जब अभयदेवसूरि व्याख्या श्रवण करने आये तब द्रोणाचार्य गद्दी से खड़े होकर उनका स्वागत करने के लिये सम्मुख गये। अपने आचार्यों के द्वारा विधिमार्गानुयायी आचार्य के प्रति प्रतिदिन इस प्रकार आदराधिक्य देखकर वहाँ आने वाले सब चैत्यवासी आचार्य रुष्ट हो गये। सभास्थल से उठकर सबके सब नगर में जाकर कहने लगे-"अभयदेवाचार्य में हमसे कौन सा गुण अधिक है, जिसके कारण हमारे प्रधान आचार्य भी उसका इतना आदर करते हैं। ऐसा करने से हमारी प्रतिष्ठा तो सर्वथा नष्ट ही हो गई। और फिर हम तो कुछ भी नहीं रहे।" द्रोणाचार्य तो बड़े बुद्धिमान् और गुणों के पक्षपाती थे, उन्होंने एक नूतन श्लोक बनाकर मठों में सब चैत्यवासी आचार्यों के पास भिजवाया:—

आचार्याः प्रतिसद्म सन्ति महिमा येषामपि प्राकृतै-
र्मातुं नाऽध्यवसीयते सुचरितैस्तेषां पवित्रं जगत्।
एकेनाऽपि गुणेन किन्तु जगति प्रज्ञाधनाः साम्प्रतं,
यो धत्तेऽभयदेवसूरिसमतां सोऽस्माकमावेद्यताम् ॥

[आजकल घर-घर में अनेक आचार्य हैं, जिनकी महिमा को भी साधारण पुरुष समझ नहीं सकते और जो अपने सच्चरित्रों से सारे संसार को पवित्र कर रहे हैं। यद्यपि यह सब कुछ सत्य है, फिर भी मैं विद्वान् लोगों से पूछता हूं कि इस समय जगत् में कोई एक आचार्य भी ऐसा बतलावें जो किसी एक गुण में भी इन अभयदेवसूरि की समानता कर सकता हो।"]

इस श्लोकबद्ध सूचना को पढ़कर सब आचार्य ठंडे पड़ गये। तदनन्तर द्रोणाचार्य ने अभयदेवसूरि से कहा-'आप सिद्धान्तों की जो वृत्तियां बनावेंगे उनका लेखन और संशोधन मैं करूँगा।'

वहां पर रहते हुए श्रीअभयदेवसूरिजी ने परिग्रह-धारी दो गृहस्थों को प्रतिबोध देकर उनको सम्यक्त्वी द्वादशव्रतधारी बनाया। वे दोनों ही शान्ति के साथ श्रावक धर्म का पालन करके देवलोक में पहुँचे। देवलोक से तीर्थंकर वन्दना के लिये महाविदेह क्षेत्र में गये। वहाँ पर सीमन्धर स्वामी और युगमन्धर स्वामी की वन्दना की। उनके पास से धर्म सुनकर पूछा—"हमारे गुरु श्रीअभयदेव-सूरिजी कौन से भव में मोक्ष पधारेंगे?" दोनों स्वामियों ने कहा—'तीसरे भव में मुक्ति जायँगे।' यह सुनकर वे दोनों देव बड़े प्रसन्न हुए और अपने गुरु श्री अभयदेवसूरि के पास जाकर वन्दना करके भगवान् की कही हुई बात सुनाई। और वहाँ से वापिस लौटते समय उनने इस अग्रिम गाथा का उच्चारण किया—

भणियं तित्थयरेहिं महाविदेहे भवंमि तइयंमि।
तुम्हाण चेव गुरवो मुत्तिं सिग्घं गमिस्संति॥

[महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्करों ने यह बात कही है कि तुम्हारा गुरु तीसरे भव में शीघ्र ही मुक्ति को जायगा।] इस गाथा को स्वाध्याय करती हुई महाराज की एक साध्वी ने सुना। उसने आकर वह गाथा महाराज को सुनाई। महाराज ने कहा—"हमको पहिले ही देव सुना गये।"

तदनन्तर किसी समय वहाँ से श्रीसूरिजी विहार करके पाल्हऊदा नामक ग्राम में पधारे। वहां पर महाराज के बहुत से श्रमणोपासक भक्त थे। उनके कई जहाज समुद्र में चला करते थे। उन्होंने जहाजों को किराने के माल से लदा कर बिदेश में भेजा था। वहां यात्री लोगों की जुबानी अफवाह—किंवदन्ती—सुनाई दी की किराने के भरे हुये जहाज डूब गये। इस दुःखद बात को सुनकर श्रावक अत्यन्त उदास हो गये। और इसी कारण वे उस दिन श्री अभयदेवसूरिजी की वन्दना करने को ठीक समय पर नहीं जा सके। श्रीसूरिजी ने किसी कारणवश उन्हें याद किया तब वे गये और वन्दना करके बैठ गये। तब महाराज ने उनसे वन्दनार्थ आने में देर हो जाने कारण पूछा। श्रावक बोले—महाराज! जहाजों के डूबने की किंवदन्ती सुनकर हम लोग बहुत दुःखित हो उठे हैं और यही कारण है कि आज हमारा वन्दना करने भी आना नहीं हुआ। महाराज ने उनका यह कथन सुनकर जहाज सम्बन्धी कुछ बात जानने के लिये एकाग्र चित्त से क्षणभर कुछ ध्यान लगाया। फिर श्रावकों से कहा—"आप लोग इस विषय में चिन्तित न हों। कोई चिन्ता करने की बात नहीं है।" फिर दूसरे दिन किसी मनुष्य ने आकर समाचार सुनाये कि "आप लोगों के जहाज सकुशल समुद्र पार पहुँच गये हैं।" इस शुभ समाचार को पाकर श्रावक लोग सब मिलकर महाराज के पास आये और निवेदन किया—"भगवन्! आपने जो आज्ञा की थी वह सत्य हुई। इस किराने के व्यापार में जितना लाभ होगा उसका आधा द्रव्य हम लोग सिद्धांत की पुस्तकों की लिखाई में व्यय

करेंगे। "इससे आपकी मुक्ति होगी। यह सर्वथा युक्त है। आपका यह कर्त्तव्य ही है।" इस तरह महाराज ने उनकी सराहना-प्रशंसा की। उन लोगों ने प्रोत्साहित होकर श्रीअभयदेवसूरि विरचित सिद्धांत-वृत्ति की अनेक पुस्तकें लिखवाईं। वहां से विहार करके श्रीसूरिजी वापस पाटण आ गये। उन दिनों चारों दिशाओं में यह प्रसिद्ध हो गई कि श्री अभयदेवसूरिजो सब सिद्धांतों के पारंगत हैं।

आचार्य जिनवल्लभसूरि

१३. उस समय में आशिका नगरी में चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि नाम के एक मठाधीश आचार्य रहते थे। उस नगरी में जितने श्रावकों के बालक थे, वे सब उनके पास मठ में पढ़ते थे। उन बालकों में एक श्रावकपुत्र का नाम जिनवल्लभ था। उसका पिता उसे बचपन में ही छोड़कर स्वर्ग सिधार गया था। उसकी माता ने ही उसका पालन पोषण किया था। जब उसकी आयु पढ़ने योग्य हुई; तब माता ने उसको अन्य बालकों के साथ पढ़ने के लिये मठ में भेजना शुरु किया। अन्य सहपाठियों की अपेक्षा वह अधिक पाठ याद कर लेता था। एक दिन जब वह—जिनवल्लभ—मठ से पढ़कर घर जा रहा था तो मार्ग में उसको एक टीपना मिला, जिसमें सर्पाकर्षणी तथा सर्प-मोचणी नामक दो विद्यायें लिखी हुई थीं। उसमें बताई हुई विधि के अनुसार जिनवल्लभ ने पहले पहली विद्या के मंत्रों का उच्चारण किया। उसके प्रभाव से सब दिशाओं से सर्प आने लगे, उन्हें देखकर विद्या के प्रभाव को जानकर वह जरा भी नहीं घबड़ाया और दूसरी सर्पमोचणी विद्या का यथाविधि उच्चारण करके उन आते हुये सर्पों को वैसे ही वापस लौटा दिया। यह समाचार जब गुरु जिनेश्वरसूरिजी ने सुना तो उनका हृदय उस बालक पर आकर्षित होने लगा और वे जान गये कि यह बालक बड़ा गुणी है। तब उनने किसी भी प्रकार से उसको अपने अधिकार में ले लेने का दृढ़ संकल्प किया। सूरिजी ने अनेक प्रलोभन देकर उस बालक को अपने वश में करके उसकी माता को मधुर वचनों से समझा-बुझा कर पाँच सौ रुपये दिलाये और जिनवल्लभ को अपना शिष्य कर लिया। उसे छन्द, अलङ्कार, काव्य, नाटक, ज्योतिष तथा लक्षणादि सब विद्याओं का अध्ययन कराया। किसी समय उन आचार्यश्री का ग्रामान्तर जाने का संयोग उपस्थित हुआ। जाते समय मठ आदि के संरक्षण का भार जिनवल्लभ को सौंप कर बोले—'सावधानी से कार्य करना। हम भी अपना कार्य सिद्ध करके शीघ्र ही वापस आते हैं।' शिष्य ने प्रार्थना की—'श्रीमान् निश्चिन्त पधारें और कार्य समाप्त करके शीघ्र ही वापस लौट आवें।' गुरुजी के चले जाने बाद दूसरे दिन ही जिनवल्लभ ने सोचा, 'भण्डार में पुस्तकों की भरी हुई पेटी धरी है। उसे खोलकर देखना चाहिए कि पुस्तकों में क्या क्या लिखा है। क्योंकि पुस्तकों से ही सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।' यह विचार करके उसने पेटी खोलकर सिद्धान्त की एक पुस्तक निकाली। उसमें लिखा हुआ देखा—

साधु को गृहस्थों के घरों से ४२ दोषों से रहित भिक्षा—मधुकरी वृत्ति से—लेकर संयम पालने के लिये देह-निर्वाह करना चाहिये। इस प्रकार के विचारों को देखकर उसने सोचा, 'संयम और आचार ही मुक्ति में ले जाने वाला मार्ग है। हमारे वर्तमान आचार से तो हमें मुक्ति की प्राप्ति नितान्त दुर्लभ है।' इस प्रकार गम्भीर वृत्ति से विचार करते हुये जिनवल्लभजी ने पुस्तक को जैसी की तैसी यथा-स्थान धर दी और मठ के संचालन के कार्य में पूर्ववत् संलग्न हो गये। कुछ दिन बाद गुरुजी आ गये और मठ को पहले से सुव्यवस्थित देखकर बड़े प्रसन्न हुये उनकी प्रशंसा करने लगे कि, 'यह बड़ा चतुर है। वास्तव में जैसा हमने सोचा है यह वैसा ही निकलेगा। किन्तु इसने सब विद्यायें सिद्धान्त के बिना पढ़ी हैं; और वह सिद्धान्त-विद्या इस समय अभयदेवसूरिजी के पास सुनते हैं। इसलिये इस जिनवल्लभ को उनके पास भेज कर सिद्धान्तों का ठीक ज्ञान प्राप्त कराना चाहिये और तदनन्तर इसको अपनी गद्दी पर बिठा देना चाहिये।' ऐसा निश्चय करके भोजन आदि प्रबन्ध के लिये पाँच सौ मोहरें देकर और सेवा के लिये जिनशेखर नामक द्वितीय साधु के साथ जिनवल्लभ को सिद्धान्त-ज्ञानार्थ श्रीअभयदेवसूरि के पास में भेज दिया। अणहिलपुर पाटण जाते हुये ये दोनों साधु मार्ग में रात्रि के समय मरुकोट में माणू श्रावक के बनाये जिन मन्दिर में प्रतिष्ठा की। वहां से चलकर पाटण पहुँचे और वहां लोगों से अभयदेवसूरिजी का स्थान पूछकर उनकी वसति पहुँचे। गुरुजी के दर्शन करके भक्ति-श्रद्धा के साथ उनकी वन्दना की। गुरुजी को सामुद्रिक चूड़ामणि का ज्ञान था। अतः इसको देखते ही शारीरिक लक्षणों से जान गये कि—यह कोई भव्य जीव है। सूरिजी ने पूछा—'तुम्हारा यहां आगमन किस प्रयोजन से हुआ है?' जिनवल्लभ ने उत्तर दिया—'भगवन्! हमारे गुरु ने सिद्धान्तवाचनरसास्वादन के लिये मकरन्द के लोभी भ्रमर के सदृश मुझको श्रीमान् के चरणकमलों में भेजा है।' इस उत्तर को सुनकर अभयदेवसूरि ने विचार किया, 'यद्यपि यह चैत्यवासी गुरु का शिष्य है, तथापि योग्य है। इसकी योग्यता, नम्रता और शिष्टता देखकर सिद्धा-न्त-वाचना देने को हृदय स्वतः चाहता है; क्योंकि शास्त्र में बतलाया है —

मरिज्जा सह विज्जाए कालंमि आगए विउ।
अपत्तं च न वाइज्जा पत्तं च न विमाणए॥

[अवसान समय के आने पर विद्वान् मनुष्य अपनी विद्या के साथ भले ही मरे, परन्तु कुपात्र को शास्त्र-वाचना न कराये और पात्र के आने पर उसको वाचना न कराके अपमान न करें।]'

इस प्रकार शास्त्रीय वाक्यों से पूर्वापर का विचार करके सूरिजी ने उससे कहा—जिनवल्लभ! तुमने बहुत अच्छा किया जो सिद्धान्तवाचना के लिए मेरे पास आये। तदनन्तर अच्छा दिन देखकर महाराज ने उसको सिद्धान्त-ग्रन्थ पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। गुरुजी जिस समय सिद्धान्तवाचना देते

उस समय जिनवल्लभ बड़ा प्रसन्न होकर एकाग्र चित्त से सुधारस की तरह उपदेशामृत का पान करता था। उसकी ज्ञानपिपासा और उपदेशामृत-ग्रहण करने की अद्भुत प्रतिभा को देखकर गुरुजी ने बड़ी प्रसन्नता मानी। आचार्यश्री ने प्रसन्न होकर इस प्रकार सिद्धान्त वाचना देना प्रारम्भ कर दिया कि जिससे सहज ही थोड़े ही समय में सिद्धान्तवाचना परिपूर्ण हो गई।

१४. उन्हीं दिनों में कोई एक ज्योतिषी महाराज का अत्यन्त भक्त हो गया। उसने महाराज से प्रार्थना की—'यदि आपका कोई योग्य शिष्य हो तो मुझे दीजिये। मैं उसको अच्छा ज्योतिषी बना दूंगा।' महाराज ने उसका यह कथन सुनकर अपने योग्य शिष्य इस जिनवल्लभगणि को ज्योतिष पढ़ाने के लिये उसके पास भेज दिया। ज्योतिषी ने बड़ी उदारता से अपनी योग्यता के अनुसार उसको ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान कराया। यथाविधि विद्याध्ययन पूर्ण कर लेने के अनन्तर जिनवल्लभ जी ने अपने आशिकानगरीस्थ दीक्षा गुरुजी के पास चले आने की इच्छा की और वहां से विहार करने के लिये शुभ मुहूर्त निकाल कर विद्यागुरु श्री अभयदेवसूरि जी महाराज से जाने के लिये आज्ञा मांगने गये। गुरुजी ने जाने की आज्ञा देते हुये आदेश दिया—'मैंने सारे सिद्धान्त अपनी जानकारी के अनुसार तुझ को पढ़ा दिये हैं। तुमको अपने जीवन में सिद्धान्त के अनुसार ही आचरण करना चाहिये। हे वत्स! शास्त्र के प्रतिकूल किसी भी प्रकार का व्यवहार मत करना।' जिनवल्लभगणि ने कहा—'भगवन्! श्रीमान् की आज्ञा के अनुसार ही सदा बर्ताव करूँगा। गुरुजी की आज्ञा पाकर जिनवल्लभजी शुभ दिन देख वहां से चल कर—जिस मार्ग से पहले गये थे—उसी मार्ग से फिर मरुकोट* आ पहुँचे। वहां पर उन्होंने देवमन्दिर में सिद्धान्तों के अनुकूल एक विधि लिखी; जिससे अविधि चैत्य भी मुक्तिसाधक विधिचैत्य बन सकता है। वह विधि यह है:—

> अत्रोत्सूत्रजनक्रमो न च न च स्नात्रं रजन्यां सदा,
> साधूनां ममताश्रयो न च न च स्त्रीणां प्रवेशो निशि।
> जातिज्ञातिकदाग्रहो न च न च श्राद्धेषु ताम्बूलमि--
> त्याज्ञात्रेयमनिश्रिते विधिकृते श्रीजैनचैत्यालये ॥

[मन्दिरों में सूत्रविरोधि मनुष्यों का आना-जाना अच्छा नहीं है। रात में स्नात्र-महोत्सव नहीं करना चाहिये। साधुओं को ममता के स्थान-मन्दिरों में नहीं रहना चाहिए। रात्रि के समय मंदिरों में स्त्रियों का प्रवेश सिद्धान्त-विरुद्ध है। मन्दिरों में इकट्ठे होकर जाति-बिरादरी सम्बन्धी विवाद-झगड़े करना सर्वथा अनुचित है। मन्दिर में कोई भी श्रावक पान न खावे। मन्दिर पर किसी का एकाधिपत्य

* मरोठ (सिन्ध)

वाली भूमि का दीक्षित है, इस कारण गच्छ के लोग इस कार्य में [illegible]
उन्होंने गच्छ-धारक वर्धमानाचार्य को गुरुपद पर आसीन किया और जिनवल्लभगणि [illegible]
ओर से उपसम्पदा प्रदान कर उन्हें आज्ञा दी—'तुम हमारी आज्ञा से [illegible]
अभयदेवसूरि ने एक समय प्रसन्नचन्द्राचार्य को एकान्त में बुलाकर कहा—'मेरे पाट पर अच्छा लग्न
देखकर जिनवल्लभगणि को स्थापित कर देना।' परन्तु दैवयोग से इस प्रस्ताव को कार्यरूप में
परिणत करने का शुभवसर नहीं आया था कि प्रसन्नचन्द्रसूरि देवलोक चले गये। उन्होंने देवलोक
होते समय देवभद्राचार्य को पूर्वोक्त प्रस्ताव सुनाकर कहा कि—'मैं इस आज्ञा को पूर्ण नहीं कर
सका हूँ। तुम इस आदेश को कार्यरूप में अवश्य लाना।' इन्होंने यह बात सुनकर कहा—'जैसा
समय-संयोग होगा, इस आज्ञा का पालन किया जायगा। आप अपनी आत्मा को सन्तोष दीजिये।'

१५. श्री अभयदेवसूरि के देवलोक पहुंच जाने के बाद वाचनाचार्य जिनवल्लभगणि कितने ही दिनों तक पाटण के आस-पास विहार करते रहे। परन्तु गुजरात के लोग, चैत्यवासी आचार्यों का अत्यधिक संपर्क होने के कारण अर्ध-विदग्ध थे। अतः इनमें प्रतिबोध-विधान की सफलता न देखकर महाराज का मन वहाँ रहने को नहीं चाहा। इसलिये अपने साथ दो अन्य साधुओं को लेकर शुभ शकुन देखकर भव्य जीवों को भगवद्भाषित धर्मविधि का उपदेश देने के लिये चित्रकूट (चित्तौड़) आदि देशों में विहार कर गये। उन देशों में अधिकतर चैत्यवासी साधुओं का प्रभाव तथा निवास था। जनता भी उन्हीं की अनुयायिनी थी। अधिक क्या कहें। अनेक ग्रामों में विहार करते हुये महाराज चित्तौड़ पहुँचे। यद्यपि वहाँ पर विरोधियों ने जनता में महाराज के विरुद्ध बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा किया, तथापि वे लोग महाराज का कुछ भी अनिष्ट करने में समर्थ न हो सके, क्योंकि पाटण में रहते हुए ही महाराज की प्रसिद्धि को सब जनता सुन ही चुकी थी। वहाँ जाकर महाराज ने अपने ठहरने के लिये वहाँ के लोगों से स्थान माँगा। उन्होंने किसी स्थान का प्रबन्ध कर देने के बजाय हँसीपूर्वक कहा—'यहाँ एक बला चण्डिका का मन्दिर है। आप उसमें ठहरें।' महाराज ने उनके कुटिल अभिप्राय का ज्ञान कर लिया कि, 'टूटे-फूटे और सूने घर में भूत-प्रेत पिशाचों की शङ्का होती है। इसी से ऐसा स्थान मेरे अनिष्ट की बुद्धि से ये बतला रहे हैं। परन्तु कोई चिन्ताजनक बात नहीं है। देवगुरु की कृपा से सब शुभ ही होगा।' ऐसा सोचकर जिनवल्लभगणि देव गुरु का ध्यान करके उनके निर्दिष्ट स्थान पर ही ठहर गये। उस स्थान की अधिष्ठात्री देवी चण्डिका महाराज के ज्ञान, ध्यान और तपानुष्ठान से प्रसन्न हो गई। जिस चण्डिका का लोगों को बड़ा भारी भय था और जिससे वहाँ लोगों का अनिष्ट [illegible], वही चण्डिका आज इन साधुजी के तपोबल को देखकर, जो [illegible] इनकी सेविका बन गई। महाराज के इस आश्चर्यजनक प्रभाव को देखकर सब लोग [illegible]

[illegible] ये सब सिद्धान्तों के पारगामी विद्वान थे। [illegible] [illegible] थे। [illegible] के ज्ञाता थे। निमित्तशास्त्र-ज्योतिष भी [illegible] थे। [illegible] [illegible] आदि ग्रन्थों के पण्डित थे। महाकाव्य, [illegible], [illegible], न्याय, [illegible] आदि [illegible] के ये [illegible] थे, [illegible] नाटक, [illegible] ज्योतिषशास्त्र, [illegible], [illegible] तथा [illegible] कवियों द्वारा रचित [illegible] के ये विशेष [illegible] थे। महाराज के इस प्रकार के विशेष ज्ञान की बातें चित्तौड़ में खूब प्रसिद्ध हो रही थी। अनेक [illegible] ब्राह्मण आदि सब लोग अपने-अपने सन्देहों का निवारण करने के लिये महाराज के पास आने लगे। जिस-जिस को जिस-जिस शास्त्र में सन्देह उत्पन्न होता था, महाराज सब शास्त्रविषयक यथार्थ उत्तर देते हुए उनकी शङ्कायें दूर करते थे। अब तो धीरे धीरे श्रावक लोग भी कुछ-कुछ आने लगे। सिद्धान्त-वचनों को सुनकर और तदनुसार क्रिया को भी देखकर साधारण, सढुक प्रभृति श्रावकों ने सन्तोषपूर्वक वाचनाचार्य जिनवल्लभगणि को गुरुत्वेन स्वीकार किया। गुरु उपदेश से प्राप्त की हुई ज्योतिष विद्या के बल से जिनवल्लभगणिजी को अतीत तथा अनागत (भूत भविष्यत्) का पूर्ण-ज्ञान था। एक समय साधारण नामक एक श्रावक ने महाराज से परिग्रह-परिमाण व्रत के निमित्त प्रार्थना की। गुरुजी ने व्रत-ग्रहण की उसे आज्ञा दे दी और पूछा, "कितना परिग्रहपरिमाण लेना चाहते हो?।" साधारण बोला—"महाराज! सर्वसंग्रह २० हजार करूँगा।" फिर गणिजी ने कहा, 'यह तो बहुत थोड़ा है, और अधिक करो।' गुरुजी की आज्ञा से परिग्रहपरिमाण एक लाख का किया। गुरुजी के प्रभाव से साधारण श्रावक के लक्ष्मी की वृद्धि होने लगी, लक्ष्मी के बढ़ने से सारे संघ की सहायता करने लगा। साधारण श्रावक की तरह अन्य श्रावक भी महाराज की आज्ञा से प्रतिदिन अधिकाधिक प्रवृत्त होने लगे।

१६. आश्विन मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को श्रीमहावीर भगवान् का गर्भापहार नामक कल्याणक आता है। उस दिन जिनवल्लभगणिजी ने सब श्रावकों के सामने कहा, "यदि देव-मन्दिर में जाकर भगवान् के समक्ष देववन्दना की जाय तो अत्युत्तम हो। पाँच कल्याणक तो हैं ही। छठा कल्याणक गर्भापहार है। क्योंकि (पंच हत्थुत्तरे होत्था साइणा परिनिव्वुडे) इस सिद्धान्त वाक्य से इसका होना स्पष्ट सिद्ध है। यहाँ पर कोई विधिचैत्य तो है नहीं। इसलिये चैत्य-[illegible] में जाकर [illegible] करेंगे।" तदनन्तर श्रावकों ने कहा—"यदि आप की यही सम्मति है तो ऐसा ही करें।" फिर सब श्रावक स्नान करके पवित्र वस्त्र पहिन कर पूजा की पवित्र सामग्री लेकर गणिजी के साथ मन्दिर के लिये रवाना हुए। मन्दिर के द्वार पर बैठी हुई आर्या ने श्रावक-समुदाय के साथ आते हुए गुरुजी को देखकर पूछा—"आज के दिन कौन सा विशेष पर्व है?।" श्रावकों में से किसी एक ने उत्तर दिया कि, "[illegible] कल्याणक के [illegible] निमित्त [illegible]

१७. श्वेताम्बर साधुवर्ग के प्रमुख तथा सर्व शास्त्र-विषय के प्रखर पण्डित आये हुए हैं, ऐसा सुनकर कोई पण्डिताभिमानी ज्योतिषी ब्राह्मण महाराज के पास आया। श्रावकों ने आसन देकर उसे आदरपूर्वक बैठाया। महाराज ने उससे पूछा—'आपका निवास कहाँ है ?' उसने उत्तर दिया, 'यहीं है'। फिर गुरुजी ने पूछा—'किस शास्त्र में आपका अधिकतर अभ्यास है। आप किस शास्त्र के पण्डित हैं ?'

ब्रा०—ज्योतिष शास्त्र में है।

गणि—चन्द्र-सूर्य लग्नों को अच्छी तरह जानते हो ?

ब्रा०—ये ही क्या, आप कहें तो एक दो तीन लग्न बताऊँ। उसकी बातों और व्यवहार से गणिजी जान गये कि यह अभिमानी है और विद्या से गर्वित होकर यहां आया है।

गणि—आपका शास्त्रीय ज्ञान बहुत उत्तम है।

ब्राह्मण—आपको भी शास्त्रों का कुछ अभ्यास है ?

गणि—हाँ, लग्न विषयक कुछ-कुछ अनुभव है।

ब्रा०—आप कोई लग्न बतलाइये।

गणि—कहो, कितने लग्न कहूँ, दस या बीस।

यह वचन सुनकर ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर गणिजी ने कहा—'पण्डितजी ! आकाश में जो यह दो हाथ की बदली दिखाई देती है, कितना पानी बरसायेगी।' ब्राह्मण को इस प्रश्न का उत्तर न सूझा। गणिजी ने उसी समय कहा—'यह बादल का दो हाथ का टुकड़ा दो घड़ी में सारे आकाश में फैल जायगा और इतना बरसेगा कि दो चौड़े-चौड़े पात्र अपने आप जल से भर जायेंगे।' ब्राह्मण के वहाँ पर ही बैठे रहते महाराज की भविष्यवाणी के अनुसार उस बादली ने इतना पानी बरसाया कि वे दोनों बड़े-बड़े पात्र थोड़ी देर में पानी से परिपूर्ण हो गए। यह चमत्कार देखकर ब्राह्मण ने महाराज को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और प्रार्थना कि, 'जब तक यहाँ रहूँगा आपकी चरणवन्दना करके भोजन किया करूँगा। मुझे ज्ञात नहीं था कि आप इस प्रकार के महात्मा हैं।' इस घटना से गणिजी की सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई। सब लोग कहने लगे कि श्वेताम्बर साधुओं का शास्त्रविषयक ज्ञान बहुत अधिक है।

१८. किसी समय चैत्यवासी मुनिचन्द्राचार्य ने अपने दो शिष्यों को सिद्धान्तवाचना के लिये जिनवल्लभगणि के पास भेजा। गणिजी भी उनको अधिकारी समझ कर सिद्धान्तवाचना देने को सहमत हो गये। वे दोनों अपने मन में महाराज के प्रति द्वेष रखते थे। अतः वे सर्वदा

महाराज का अहित सोचा करते थे। गणिजी के श्रावकों को बहकाने के विचार से वे उनसे प्रीति का व्यवहार करने लगे। एक समय उन्होंने अपने चैत्यवासी गुरु के पास भेजने के लिये एक पत्र लिखा। उस लिखित पत्र को बस्ते में रखकर वाचना-ग्रहण करने के लिये वाचनाचार्य के पास आये और गणिजी के निकट वन्दना करके बैठ गये। पढ़ने के लिये बस्ता खोला तो उस नूतन पत्र पर महाराज की दृष्टि पड़ गई। महाराज ने पत्र को ले लिया और पढ़ने लगे। उस पत्र को महाराज के हाथों से ले लेने का उनका साहस न हुआ। उस लेख में लिखा था, 'जिनवल्लभगणि के कई श्रावकों को तो हमने अपने अनुकूल कर लिया है। थोड़े ही दिनों में सबको ही अपने अधीन कर लेने का दृढ़ संकल्प है।' महाराज को उनकी मनोवृत्ति का पूरा ज्ञान हो गया। इस पर महाराज ने एक आर्या छन्द रच कर कहा—

> आसीज्जनः कृतघ्नः क्रियमाणघ्नस्तु साम्प्रतं जातः।
> इति मे मनसि वितर्को भविता लोकः कथं भविता॥

[किये हुये उपकार को न मानने वाले कृतघ्न पुरुष पहिले भी थे, किन्तु प्रत्यक्ष में किये जाने वाले उपकार को न मानने वाले भी कृतघ्न इस समय देखे जाते हैं। मुझे रह-रह कर विचार आता है कि आगे होने वाले लोग कैसे होंगे ?।]

महाराज ने उनसे कहा—'विद्यागुरु के प्रति तुम्हारे ऐसे अशुभ भाव पुनः पुनः चिंतनीय हैं।' वे अत्यन्त लज्जित होकर अपने स्थान पर वापस चले गये।

१६. किसी समय जब जिनवल्लभगणिजी बहिर्भूमिका के लिये बाहर जा रहे थे, उस समय महाराज की विद्वत्ता की प्रशंसा सुनकर आया हुआ एक पण्डित उनसे मिला और किसी राजा के वर्णन के लक्ष्य से एक समस्यापद उनके सामने रक्खा—'कुरङ्गः किं भृङ्गो मरकतमणिः किं किमशनिः।' महाराज ने कुछ सोचकर तत्काल ही उस समस्या की पूर्ति करदी और उसे सुना दी :—

> चिरं चित्तोद्याने वसति च मुखाब्जं पिबसि च,
> क्षणादेणाक्षीणां विषयविषमोहं हरसि च।
> नृप ! त्वं मानाद्रिं दलयसि रसायां च कुतुकी,
> कुरङ्गः किं भृङ्गो मरकतमणिः किं किमशनिः॥

[हे राजन् ! आप मृगनयनी सुन्दरियों के चित्त रूपी उद्यान में विचरते हैं, इसलिये आपके विषय में उद्यानचारी हरिण की आशङ्का होती है। उनही सुन्दरियों के मुखकमलों का पान करते

हैं, इसलिये आप में अमर का सन्देह होता है। ओष्ठ कामिनियों की वियोग विष से उत्पन्न हुई मूर्च्छा को दूर करते हैं। अतः आप मरकत मणि जैसे शोभित होते हैं और मानिनियों के मानरूपी पर्वत को चूर-चूर कर देते हैं अतः आपके विषय में वज्र की आशङ्का होने लगती है।]

इस प्रकार सुन्दर साभिप्राय समस्या-पूर्ति को सुनकर वह आगन्तुक पण्डित अति प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि 'लोक में आपकी जैसी प्रसिद्धि हो रही है, वास्तव में आप वैसे ही हैं। आपकी यह प्रसिद्धि यथार्थ है।' महाराज की प्रशंसा करता हुआ चरणों में वन्दना करके वह चला गया। तदनन्तर गुरुजी भी अपने वासस्थान पर आ गये। वहाँ पधारने पर श्रावकों ने प्रार्थना की, 'आज आपको बाहर से आने में बहुत अधिक समय लगने का क्या कारण हुआ?' तब आपके संग में जाने वाले शिष्य ने समस्या-सम्बन्धी सारी बातें कहीं जिसे सुनकर श्रावकों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

२०. किसी समय गणदेव नामक एक श्रावक यह सुनकर कि महाराज के पास सुवर्ण बनाने की सिद्धि है। अतः सुवर्ण प्राप्ति के लिये चित्तौड़ में आकर तन-मन-धन से महाराज की सेवा करने लगा। महाराज ने उसके अभिप्राय को जान लिया और उसे योग्य समझ कर धीरे धीरे ऐसी देशना दी कि जिससे अल्प समय में ही उसको वैराग्यभाव प्राप्त हो गया। जब वह अच्छी तरह विरक्त हो गया तब महाराज ने उससे कहा—'भद्र! क्या तुम्हें सुवर्ण-सिद्धि बतलाऊं?' उसने कहा—'भगवन्! मेरे पास के ये बीस रुपये ही पर्याप्त हैं। इनके द्वारा ही मैं व्यापार करता हुआ श्रावक-धर्म का पालन करूंगा। अधिक परिग्रह सर्वथा दुःख का कारण है।' महाराज ने विचारा—'इसकी जन्म-कुण्डली और हस्तरेखा से विदित होता है कि इसके द्वारा भव्यपुरुषों में धर्म-वृद्धि करने का योग पड़ा है।' इसलिये उसको धर्म-तत्त्वों का उपदेश करके उसे धर्म-प्रचार के लिये बागडदेश की ओर भेज दिया। अपने निर्मित "कुलक" लेख भी उसको पढ़ा दिये थे जिनके द्वारा उसने वहां लोगों को विधिमार्ग का पूर्ण स्वरूप बतलाकर अधिकांश जनता को गणिजी के मन्तव्यों का अनुयायी बना दिया।

२१. गणिजी महाराज के व्याख्यान में अच्छे-अच्छे विद्वान् मनुष्य आया करते थे। अधिकतर ब्राह्मण लोग अपने-अपने सन्देहों को निवारण करने के लक्ष्य से आया करते थे। एक दिन व्याख्यान में 'पिक्खाईण गिहीणं' इत्यादि गाथा आई। इस गाथा में ब्राह्मणों की समालोचना की गई है। अतः वे रुष्ट हो कर व्याख्यान से चले गये। सबने एकत्रित होकर सर्वसम्मति से निश्चय किया कि, 'इनके साथ शास्त्रार्थ किया जाय और उसमें इनको पराजित किया जाय।' उनके इस निश्चय को सुनकर गणिजी के हृदय में अणुमात्र भी भय की उत्पत्ति न हुई, क्योंकि 'विद्या, बुद्धि, प्रतिमा-बल में उनका तीर्थङ्करों के समान प्रभाव था।' किसी कवि ने कहा भी है:—

मर्यादाभङ्गभीतेरमृतमयतया धैर्यगाम्भीर्ययोगात्,
न क्षुभ्यन्त्येव तावन्नियमितसलिलाः सर्वदैते समुद्राः।
आहो क्षोभं व्रजेयुः क्वचिदपि समये दैवयोगात्तदानीं,
न क्षोणी नाद्रिचक्रं न च रविशशिनौ सर्वमेकार्णवं स्यात्॥

[अमृत के समान स्वच्छ जल से परिपूर्ण नियमित जल वाले ये समुद्र-धीरता गम्भीरता और मर्यादाभङ्ग के डर से क्षोभ को प्राप्त नहीं होते हैं। यदि दैवयोग से ऐसे इन समुद्रों में कदाचित् क्षोभ उत्पन्न हो जाय तो पृथिवी, पर्वत, सूर्य, चन्द्र तक का भी पता न चले। सारा जगत् जलमय ही हो जाय।]

महाराज ने इस श्लोक को भोजपत्र पर लिखकर एक योग्य मनुष्य के हाथ में देकर कहा—'इस पत्र को ब्राह्मणों की सभा में ले जाओ और उनमें सबसे वृद्ध ब्राह्मण को दे आओ।' आपकी आज्ञानुसार वह पत्र एक वृद्ध के हाथ में सौंप दिया गया। उसने अपनी ज्ञानपूत दृष्टि से श्लोक के अभिप्राय को जानकर सोचा, 'हम तो केवल एक-एक शास्त्र के विद्वान् हैं और ये सब विद्या के भण्डार हैं। इनके साथ अपना शास्त्रार्थ करना अनुचित है।' ऐसा विचार कर उस विवेकशील ब्राह्मण ने सबको समझाकर शान्त किया।

२२. किसी समय धारा नगरी के श्री नरवर्मदेव राजा की राजमान्य पण्डित सभा की प्रसिद्धि सुनकर दक्षिण दिशा से दो पण्डित उत्सुक होकर उनका पाण्डित्य देखने की इच्छा से आये और राजकीय पण्डित सभा में 'कण्ठे कुठारः कमठे ठकारः' की समस्या रखकर सभासद् स्थानीय पंडितों से उसकी पूर्ति करने को कहा। सब राजपण्डितों ने अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा के अनुसार समस्या पूर्ति की, किन्तु उससे आगन्तुक विद्वानों का संतोष नहीं हुआ। उस अवसर पर किसी ने राजा से निवेदन किया, 'राजन्! इनका मन राजकीय पण्डितों को की हुई समस्या-पूर्ति से संतुष्ट हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता।' राजा ने उनसे पूछा—'क्या कोई और भी ऐसा विद्वान् है जिसके द्वारा समस्या पूर्ति कराई-जाकर इन दोनों को प्रसन्न किया जाय।' तब कोई विवेकी पुरुष बोला—'देव! चित्तौड़ में स्थित श्वेताम्बर साधु जिनवल्लभगणि सब विद्याओं में पारङ्गत हैं—ऐसा सुना जाता है।' राजा ने तत्काल शीघ्रगामी दो ऊँटों के साथ एक पुरुष को पत्र देकर साधारण श्रावक के पास भेजा। उसमें लिखा था—'साधारण! आप अपने गुरुजी से इस समस्या की सुन्दरातिसुन्दर पूर्ति कराकर शीघ्र भिजवावें।' यह पत्र साधारण के पास सायंकाल में प्रतिक्रमण के समय पहुँचा। साधारण ने वह राज-पत्र गुरुजी को सुनाया। गुरुजी ने प्रतिक्रमण क्रिया को समाप्त करके समस्या पूर्ण करके लिख दी—

रे रे नृपाः! श्रीनरवर्मभूप-प्रसादनाय क्रियतां नताङ्गैः।
कण्ठे कुठारः कमठे ठकारश्चक्रे यदश्वोग्रखुराग्रघातैः॥

[हे नृपजनों ! तुम अपने मस्तक झुका कर श्रीनरवर्म राजा को प्रसन्न रखो, जिसके घोड़ों के खुरों के अनुभाग से शत्रुओं के कण्ठ में कुठार का चिह्न हो गया है।]

इस समस्या-पूर्ति को लेकर प्रयाण करने वाला वह राजकीय पुरुष रातों-रात चलकर शीघ्राति-शीघ्र धारानगरी को आ पहुँचा और राजसभा में आकर वह पूर्ति पण्डितों के सामने धर दी। उसको देख उन आगन्तुक पण्डितों की प्रसन्नता की सीमा न रही। वे बोले—'इस सभा में तो इस प्रकार उद्भट कविता करने वाला ऐसा कवि नहीं है। यह पूर्ति तो इनके अतिरिक्त किसी अन्य कवि की की हुई है। यह पूर्ति किसने की है? राजा ने वस्त्र-द्रव्यादि से उनका सत्कार करके उनको विदा किया।

२३. तदन्तर महाराज भी चित्तौड़ से विहार करके क्रम से विचरण करते हुये धारा नगरी में आये। किसी ने राजा को सूचना दी, 'राजन्! समस्यापूर्ति करने वाले वे श्वेताम्बर साधु महाराज आज कल यहां धारानगरी में ही आये हुए हैं।' राजा का मन तो महाराज की प्रतिभा से पहले ही आकृष्ट हो रहा था अतः अपने अनुचर से कहा, 'स्वामी जी महाराज को शीघ्र यहां पधरा लाओ। उनका उपदेश सुनेंगे।' राजा के आदेश से महाराज बुलाये गये। आपके उपदेशामृत से राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और प्रार्थना करने लगा, 'महाराज! मैं आपको तीन लाख रुपये या तीन गांव देना चाहता हूँ।' महाराज ने कहा—'राजन्! हम लोग व्रती साधु हैं। हमने धनादि परिग्रह का त्याग कर दिया है।' राजा का विशेष आग्रह देखकर उन्होंने कहा—'यदि आपका यही आग्रह है तो चित्तौड़ में श्रावकों ने दो मन्दिर बनवाये हैं। वहाँ पर इन दो लक्ष रुपयों की लागत से आप पूजा मण्डपिका बनवा सकते हैं।' राजा ने इस दान को स्थायी समझकर महाराज के आदेशानुसार मण्डपिका बनवा दीं। महाराज के इतने भारी त्याग को देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ और महाराज की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। इससे लोगों में भी आपकी अत्यधिक प्रसिद्धि हो गई।

२४. उसी समय नागपुर (नागोर) के श्रावकों ने नेमिनाथ भगवान् का नवीन मन्दिर और मूर्ति बनवाई थी। वहां के श्रावकों का यह निश्चय था कि—'उस मन्दिर और मूर्ति की प्रतिष्ठा श्रीजिनवल्लभगणि को गुरु बनाकर उनके हाथ से करावें।' ऐसा एकमत से विचार करके उन्होंने बड़े आदर सम्मानपूर्वक महाराज को अपने यहां बुलाया। श्रीपूज्यजी ने शुभ दिन और शुभ लग्न में

नेमिनाथ स्वामी की मूर्ति की यथाविधि प्रतिष्ठा की*। इस पुण्य-कार्य के प्रभाव से वहां के सभी श्रावक लक्षाधीश हो गये। उन्होंने भी नेमिनाथ भगवान् की प्रतिमा के रत्नजटित आभूषण बनवाये; यही धनवृद्धि का सदुपयोग है। नरवरपुर के श्रावकों के मन में भी यह भाव उत्पन्न हुआ, 'गणिजी को गुरु करके उनके द्वारा देवमन्दिर की प्रतिष्ठा करावें।' ऐसा सोच कर मन्दिर तैयार करवा कर महाराज को आदर से बुलाया। आचार्य श्री ने आकर उन श्रावकों की इच्छानुसार प्रतिष्ठा सम्बन्धी सब कार्य विधिपूर्वक करवा दिया। महाराज ने नागपुर और नरवर दोनों ही स्थानों के मन्दिरों पर रात्रि में भगवान् के भेंट चढ़ाना, रात्रि में स्त्रियों के आगमन आदि के निषेध के लिये शिलालेख के रूप में विधि लिखवा दी, जिसको 'मुक्तिसाधक-विधि' नाम से कहा है। तदनन्तर मरुकोट्टनगरस्थ श्रावकों ने गणिजी महाराज से अपने यहाँ पधारने की प्रार्थना की। उनकी इस विनति को स्वीकार करके महाराज विक्रमपुर होते हुये मरुकोट पधारे। वहां के श्रद्धालु श्रावकों ने महाराज को एक अतिसुन्दर स्थान पर ठहराया, जिसमें भोजन-भजन आदि के लिए अलग-अलग स्थान बने हुए थे। महाराज वहां पर सुखपूर्वक विराजे। श्रावकों ने प्रार्थना की—'महाराज! आपके मुखारविन्द से जिनवाणी के रसामृत का आस्वादन करना चाहते हैं।' महाराज ने कहा—'श्रावक लोगों का उपदेश सुनना ही धर्म है। आप लोगों की इच्छा हो तो 'उपदेश-माला' का प्रारम्भ किया जाय?' श्रावकों ने कहा—'यह तो हमने पहले भी सुनी है। फिर महाराज के मुखारविन्द से भी सुन लेंगे।' उनकी इच्छानुसार महाराज ने शुभ दिन देखकर व्याख्यान प्रारम्भ किया। "संवच्छरमुसभजिणो" इस एक गाथा की व्याख्या में छः मास का समय व्यतीत हो गया। इस प्रकार के दृष्टान्त उदाहरण और सिद्धान्तों के उपदेशामृत से श्रावकों को अभूतपूर्व लाभ मिला औ वे तृप्त नहीं हुए। श्रावक बोले—'भगवन्! व्याख्यान में ऐसी अपूर्व वर्षा या तो तीर्थंकर भगवान् ही कर सकते हैं या आपने ही की है।' इस प्रकार श्रावक लोग महाराज की देशना की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

२५. एक दिन व्याख्यान देकर महाराज श्रावकों के साथ देवमन्दिर से आरहे थे। अपने निवास स्थान पर जाते समय मार्ग में महाराज ने एक अश्वारूढ़ दूल्हे को देखा; जिसके साथ में कई कुटुम्बी, बन्धुवर्ग तथा अनेतियों का समूह था और पीछे-पीछे मनोहर माङ्गलिक गायन करती हुई महि-

---

* इसका उल्लेख तत्कालीन देवालय के निर्मापक सेठ धनदेव के पुत्र कवि पद्मानन्द अपने वैराग्य-शतक में भी करते हैं :—

"सिक्तः श्रीजिनवल्लभस्य सुगुरोः शान्तोपदेशामृतैः,
श्रीमन्नागपुरे चकार सदनं श्रीनेमिनाथस्य यः।
श्रेष्ठी श्रीधनदेव इत्यभिधया ख्यातश्च तस्याङ्गजः,
पद्मानन्दशतं व्यधत्त सुधियामानन्दसम्पत्तये॥"
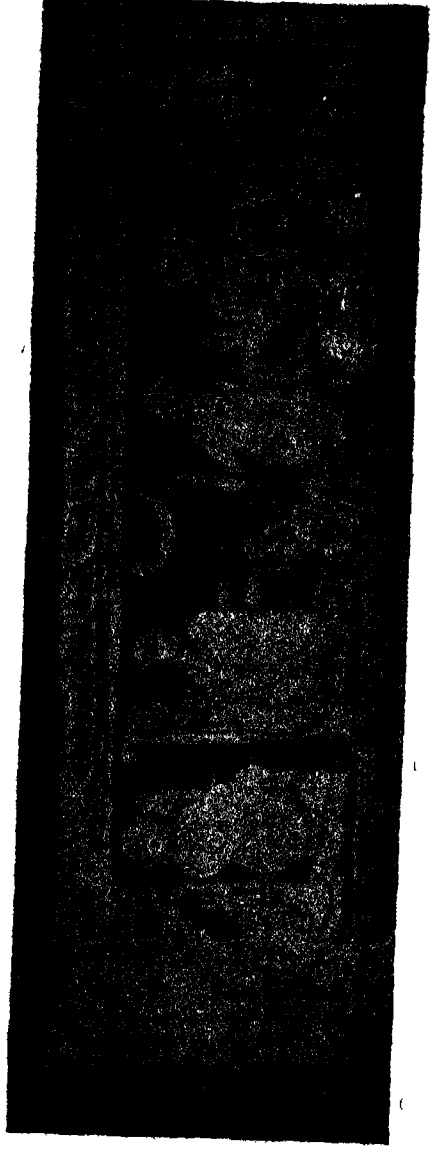
युग प्रधान दादा श्रीजिनदत्त सूरिजी (पृष्ठ ३१)

आचार्य जिनेश्वरसूरिजी (द्वितीय) (पृष्ठ १०७)

स्त्रियों का जुलूस चल रहा था। वह सजधज से विवाह करने जा रहा था। उसे देखकर महाराज बोले—'यह संसार क्षणभंगुर है। यह दूल्हा मृत्यु को प्राप्त होगा और ये ही स्त्रियां जो इस समय उत्साह से मंगल गान कर रही हैं, रोती हुई लौटेंगी।' वह वर वधू के घर पहुँच कर घोड़े से नीचे उतरा और मकान के जीने पर चढ़ने लगा कि दैवयोग से उसका पाँव फिसल गया और वह गिर कर घरट के कीले पर आ पड़ा। फिर क्या था, वह कीला उसके पेट में घुस गया। पेट के दो टुकड़े हो गये, चमड़ा फट गया और वह मर गया। उन स्त्रियों को रोती हुई वापस आती हुई देखकर सब श्रावक लोग महाराज के इस भविष्य विषयक ज्ञान से चकित हो गये और महाराज की स्तुति करने लगे कि महाराज तो त्रिकालज्ञ हैं। इस प्रकार श्रावकों में धर्म का परिणाम बढ़ाकर तथा अपने अद्भुत चमत्कारों से सब को चकित करके महाराजश्री वहाँ से नागपुर पधारे।

२६. उन्हीं दिनों में देवभद्राचार्यजी विचरते हुये गुजरात प्रान्त के विख्यात नगर पाटण में आये। वहां आने पर उन्होंने सोचा—'प्रसन्नचन्द्राचार्य ने पर्यन्तसमय में मेरे से कहा था कि—'जिनवल्लभगणि को अभयदेवसूरिजी महाराज के पाट पर स्थापित कर देना। इस कार्य के सम्पादन करने का इस समय ठीक अवसर है।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने जिनवल्लभगणिजी के पास पत्र भेजा। उसमें लिखा था, 'समुदाय के साथ आप शीघ्र ही चित्तौड़ आवें। वहां हम सब मिलकर पूर्वविचारित कार्य को सफल करेंगे।' पत्र को पढ़कर गणिजी परिवार सहित चित्तौड़ आ गये। पण्डित सोमचन्द्र को भी आह्वानपत्र भेजा था किन्तु वे समय पर न आ सके। शुभ मुहूर्त देखकर श्रीदेवभद्रसूरि ने श्री जिनवल्लभगणि को श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज के स्थान पर अभिषिक्त कर दिया। पदारूढ होने का समय आषाढ़ शुक्ला ६ सं० ११६७ वि० बताया गया है। वीरप्रभु के विधिचैत्यालय में उपदेश सुनने के लिये आने वाले अनेक भव्यजन युगप्रधान श्री जिनवल्लभसूरि को युगप्रधान श्री अभयदेवसूरिजी के आसनासीन देखकर तथा उनके उपदेशामृत को सुनकर मोक्षमार्ग के पथिक हो गये। तदनन्तर श्रीदेवभद्राचार्यजी पाटमहोत्सव सम्बन्धी सब कार्य करके विहार करते हुये अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। वि० सं० ११६७ कार्तिक कृष्णा १२ रात्रि के चतुर्थ पहर में श्री जिनवल्लभसूरिजी तीन दिन का अनशन कर पंचपरमेष्ठी का ध्यान करते हुये, चतुर्विध सङ्घ को मिथ्यादुष्कृत दान देकर देवलोक हो गये।

युगप्रधान जिनदत्तसूरि

२७. पहिले किसी समय श्री जिनेश्वरसूरि के शिष्य उपाध्याय श्री धर्मदेव की आज्ञा में रहने वाली विदुषी साध्वियों ने धोलका में चातुर्मास किया था। वहाँ पर वच्छक—मन्त्र वाछिग की धर्मपत्नी वाहडदेवी अपने पुत्र के साथ इन आर्याओं के पास धर्मकथा सुनने को आया करती

थी। उस श्राविका का धर्म-प्रेम देखकर साध्वियाँ बाहड़देवी को विशेषरूप से धर्मकथायें सुनाया करती थीं। वे आर्यायें सामुद्रिक शास्त्र के बल से पुरुष-सम्बन्धी शुभाशुभ लक्षण भी जानती थीं। बाहड़देवी के पुत्र के शरीर में वर्तमान प्रधान-लक्षणों को वे अच्छी तरह से जान गईं। उन लक्षणों का लाभ उठाने के लिये वे श्राविका को बारम्बार समझाती थीं। आर्याओं के कहने-सुनने से वह उनका कथन मान गई और अपने पुत्र को शिष्य बनाने के लिये देने को तैयार हो गई। चातुर्मास समाप्त होने पर आर्याओं ने धर्मदेवोपाध्याय को समाचार दिया कि, 'हमने यहाँ पर एक पात्ररत्न पाया है। यदि आपको योग्य लगे तो स्वीकार करें।' संवाद पाते ही धर्मदेवोपाध्याय शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पहुँचे। बालक को देखकर अतीव प्रसन्न हुये। शुभ लग्न, मुहूर्त्त एवं तिथि देखकर वि० सं० ११४१ में दीक्षा देकर उस बालक का सोमचन्द्र नाम रक्खा और उसे अपना शिष्य बनाया। उपाध्यायजी ने नवदीक्षित सोमचन्द्र को श्री सर्वदेव गणि को सौंप दिया और गणिजी से कहा कि तुम इसकी देख रेख करो तथा इसे साधु-सम्बन्धी क्रिया-कलापों को सिखाते हुये बहिर्भूमिका आदि के लिये साथ ले जाया करो। इस बालक का जन्म सं० ११३२ में हुआ था। दीक्षा के समय इसकी अवस्था नौ साल की थी। प्रतिक्रमण सूत्र वगैरह इसने घर पर रहते ही याद कर लिये थे। अशोकचन्द्राचार्य ने इनको बड़ी दीक्षा दी। दीक्षा लेने के बाद, पहिले ही दिन सर्वदेवगणि इनको साथ लेकर बहि-र्भूमिका के लिये गये। सोमचन्द्र बालक था; अज्ञान दशा थी। इसलिये खेत में से उगे हुये बहुत से चणों को इसने जड़ से उखाड़ दिया, (ऐसा करना साध्वाचार के विपरीत था)। सर्वदेव गणि ने इस अनुचित व्यवहार को देखकर उसे शिक्षा देने के लिये सोमचन्द्र से रजोहरण और मुखवस्त्रिका लेली और कहा कि, 'तुम अपने घर जाओ। दीक्षा लिये बाद साधु को हरि वनस्पति को तोड़ना वनस्पतिकाय की विराधना है।' इस तर्जन-गर्जन को सुनकर बालक सोमचन्द्र बोला—'आप घर जाने के लिये कहते हैं सो तो ठीक, परन्तु पहिले मेरे मस्तक पर जो चोटी थी उसे दिवा दीजिये, तो लेकर अपने घर चला जाऊँ।' इस उत्तर को सुनकर गणिजी को आश्चर्य हुआ और मन ही मन कहने लगे 'इस बात का हमारे पास कोई प्रत्युत्तर नहीं है।' इस बात को स्थान पर जाकर गणिजी ने धर्मदेवो-पाध्याय से कहा। उसे सुनकर उपाध्यायजी ने सोचा—'इन लक्षणों से जाना जाता है कि यह अवश्य ही योग्य होगा।'

२८. सोमचन्द्र सर्वत्र पत्तन में घूम-घूमकर विद्वानों के साथ लक्षण-पञ्जिका आदि शास्त्रों को परिश्रम के साथ पढ़ने लगा। एक दिन सोमचन्द्र स्थानीय भावडाचार्य की धर्मशाला में पंजिका पढ़ने जा रहा था। मार्ग में अन्य मतावलम्बी किसी उद्धत मनुष्य ने कहा—'अरे श्वेताम्बर साधु! यह कपलिका (पढ़ने का बस्ता) किसलिये ग्रहण की है?' सोमचन्द्र ने तत्काल ही उत्तर दिया 'तुम्हारा मुखमर्दन करने के लिये और अपने मुख की शोभा बढ़ाने के लिये।' वह पुरुष इसका कुछ

भी जवाब न दे सका और अपना–सा मुंह लेकर चला गया। सोमचन्द्र धर्मशाला में गया। वहाँ बहुत से राज्याधिकारियों के पुत्र पढ़ते थे। एक दिन अध्यापक ने योग्यता को जाँच करने के लिये पूछा–'सोमचन्द्र! 'न विद्यते वकारो यत्र स नवकारः' अर्थात् वकार जिसमें न हो वह नवकार है? सोमचन्द्र ने कहा–नहीं, 'नवकरणं नवकारः' नवकार शब्द का अर्थ है नवकरण चाहिये। ऐसा उत्तर सुनकर अध्यापक ने विचारा कि इसके साथ उत्तर-प्रत्युत्तर करना जरा टेढी खीर है (ऐरा-गैरा पंचकल्याणी इसके साथ भिड़ नहीं सकता)।

एक समय लुंचन का दिन होने से सोमचन्द्र पाठशाला न जा सका। पाठशाला का यह नियम था कि यदि एक भी विद्यार्थी अनुपस्थित हो तो उस दिन पाठशाला बन्द रखी जाय। उस दिन गर्विष्ठ अधिकारी–पुत्रों ने आचार्य से कहा—'भगवन्! कृपया पाठ पढाइये। सोमचन्द्र के स्थान पर हमने यह पत्थर रख दिया है; इसे आप सोमचन्द्र ही समझ लीजिये।' आचार्य ने उन सब के अनुरोध से प्रचलित पाठशालीय नियम को तोड़कर उस दिन सबको पाठ पढ़ाया। दूसरे दिन सोमचन्द्र पाठशाला आया। उसको अपने कतिपय साथियों से पहिले दिन की बातों का पता लगा। सोमचन्द्र ने अध्यापक आचार्य से कहा—'आपने बड़ा उत्तम काम किया जो मेरी अनुपस्थिति में मेरे स्थान पर पत्थर रखकर काम निकाल लिया। परन्तु आप कृपा करके आज तक पढ़ाया हुआ पंजिका–पाठ मुझसे भी पूछिये और इनसे भी; जो जवाब न दे सके उसे ही पाषाण समझना चाहिये।' अध्यापक गुरु ने कहा—'सोमचन्द्र! तू गन्धयुक्त कस्तूरिका की तरह प्रज्ञादि गुणों से युक्त है। मैं तेरे को भलीभाँति जानता हूँ परन्तु इन मूर्खों ने पढ़ाने के लिये बार-बार अनुरोध किया, अतः ऐसा किया गया। तुम हमको क्षमा करो।'

२९. जब यह सोमचन्द्र अन्य शास्त्रों को पढ़कर तैयार हो गया तब हरिसिंहाचार्य ने इसको समस्त शास्त्रों की वाचना दी और अपने पास की वह कपलिका (पुट्ठा) भी दी जिससे स्वयं उन्होंने विद्याभ्यास किया था। देवभद्राचार्य ने प्रसन्न होकर कटाक्षरख (उत्कीर्णक) दिया, जिससे उन्होंने महावीर चरित आदि चार कथाशास्त्र काष्ठ की पट्टिका पर लिखे थे। पण्डित सोमचन्द्र गणि इस प्रकार सर्वसिद्धान्तों का ज्ञाता होकर ग्रामानुग्राम विचरने लगा। ज्ञानी, ध्यानी, मनोहारी और आल्हादकारी सोमचन्द्र गणि को देखकर उपासकवर्ग अतीव आनंदित होता था।

३०. गच्छ के प्रधान और वयोवृद्ध श्री देवभद्राचार्य (जो गच्छ के संचालक थे) ने जब आचार्य जिनवल्लभसूरि का देवलोक गमन सुना तो इन्हें बड़ा दुःख हुआ। कहने लगे—'स्वर्गीय गुरु श्री अभयदेवसूरिजी के पट्ट को जिनवल्लभसूरिजी उज्ज्वल कर रहे थे परन्तु, क्या किया जाय?' (सारा काम ही चौपट हो गया)। देवभद्राचार्य के हृदय में यह बात आई कि 'श्रीजिनवल्लभसूरिजी

युगप्रधान थे। उनके स्थान पर किसी वैसे ही योग्य को नहीं बैठाया गया तो हमारी गुरुभक्ति का क्या मूल्य है ? हमारे गच्छ में उनके पाट पर बैठने योग्य कौन है ?' ऐसा विचार करते हुये उनका पण्डित सोमचन्द्र गणि की तरफ लक्ष्य गया। उपासकवर्ग भी इन्हीं को चाहते हैं और यह ज्ञान-ध्यान-क्रिया में भी निपुण है; इसलिये यही योग्य है। सर्वसम्मति से इसका निश्चय करके सोमचन्द्र को लिखा गया कि 'तुमको श्री जिनवल्लभसूरिजी के पाट पर स्थापित किया जायगा। इसलिये जहाँ तक हो सके शीघ्र ही चित्तौड़ चले आओ। स्वर्गीय आचार्य को भी यह बात अभीष्ट थी। श्री जिनवल्लभसूरि के पाट-महोत्सव पर तुम बुलाने पर भी नहीं पहुँच सके थे। ऐसा न हो कि इस समय भी तुम लापरवाही कर जाओ। पाट पर बैठने के लिये बहुत से उम्मीदवार खड़े हुये हैं (परन्तु संघ के संचालकों ने उनकी आशालताओं पर तुषारापात कर दिया है)।' पत्र पहुंचते ही पंडित सोमचन्द्र गणि भी शीघ्र विहार कर चित्तौड़ आगये और देवभद्राचार्य भी आगये। समाज को पाट-महोत्सव की सूचना दी गई। साधारण जनता केवल इतना ही जानती थी कि श्री जिन-वल्लभसूरिजी के पट्ट पर किसी योग्य व्यक्ति को सूरि पद दिया जायगा। यह पद किसको और कब दिया जायगा ? इस बात का किसी को पता नहीं था। श्रीदेवभद्रसूरि ने सोमचन्द्र गणि को एकान्त में बुलाकर कहा—'श्रीजिनवल्लभसूरिजी से प्रतिष्ठित, साधारण, साधु आदि श्रावकों से पूजित श्री महावीर स्वामी के विधि-चैत्य में समस्त संघ के समक्ष आगामी दिन श्रीजिनवल्लभसूरिजी के पाट पर हम तुमको स्थापित करेंगे। लग्न का निश्चय कर लिया गया है।' इस कथन को सुनकर पण्डित सोमचन्द्र ने कहा—'आपने जो कहा सो ठीक है, परन्तु मेरी प्रार्थना यह है कि कल के दिन स्थापना कीजियेगा तो कल मृत्युयोग है। अतः मैं अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकूँगा। इसलिए आज से सातवें दिन शनिवार के दिन जो लग्न हो; यदि उस लग्न में मैं पाट पर बैठाया जाऊँगा तो सर्वत्र ही मैं निर्भय होकर विचरूँगा और श्रीजिनवल्लभसूरिजी के अभिमत मार्ग में मेरे द्वारा चतुर्विध संघ की अधिकाधिक वृद्धि हो सकेगी।' श्रीदेवभद्राचार्य ने कहा—'बहुत अच्छा, वह लग्न क्या दूर है ? उसी दिन ही सही।' निश्चित दिन आने पर वि० सं० ११६९ वैशाख सुदि प्रति-पदा को श्रीजिनवल्लभसूरिजी के पाट पर बड़े आरोह-समारोह के साथ पण्डित सोमचन्द्र गणि स्था-पित किये गये और श्री संघ की तरफ से नाम परिवर्तन कर इनका नाम श्री जि न द त्त सू रि रखा गया। सायंकाल के समय बाजे-गाजे के साथ निवास स्थान पर आये। सभी साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं ने विधिपूर्वक वंदना की। इसके पश्चात् श्रीदेवभद्राचार्य ने कहा—'महाराज ! यहाँ पर उपस्थित सब लोगों की आपके मुखारविंद से उपदेशामृत-पान करने की अभिलाषा है।' इस प्रार्थना को स्वीकार करके आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी ने अमृत के समान कर्णप्रिय सिद्धान्तोदाहरणों से युक्त देशना दी; जिसे सुनकर उपस्थित जनता अतीव ही प्रमुदित हुई और कहने लगी 'देवभद्रा-चार्य को धन्यवाद है कि जिन्होंने सुपात्रों के स्थान में सुपात्र को ही पदारूढ किया।' देवभद्राचार्य

ने कहा—'स्वर्गीय आचार्य जिनवल्लभसूरिजी ने इस लोक को त्यागते समय मुझे यह आदेश दिया था कि हमारे पद पर सोमचन्द्र गणि को स्थापित करना। उसे सफल बनाकर उनकी आज्ञा का मैंने पालन किया है।' श्रीदेवभद्राचार्य ने आचार्य जिनदत्तसूरि से प्रार्थना की—'आप कुछ समय तक अन्य प्रदेशों में विचरण करें।' यह सुनकर जिनदत्तसूरि ने कहा—'बहुत अच्छा, ऐसा ही करेंगे।'

३१. एक समय जिनशेखर नामक साधु ने कलह आदि कुछ अनुचित कार्य किया; इसलिये देवभद्राचार्य ने उसे समुदाय से बाहर निकाल दिया। जब जिनदत्तसूरिजी बहिर्भूमिका के लिये बाहर गये तो उनकी प्रतीक्षा में बैठा हुआ जिनशेखर मार्ग में ही महाराज के पैरों में आ गिरा और बड़ी दीनता के साथ कहने लगा—'महाराज! मेरे से यह भूल हो गई। आप एक बार क्षमा करें। आगे से इस तरह की उद्दण्डता कभी नहीं करूंगा।' दया के समुद्र श्रीजिनदत्तसूरिजी ने भी कृपा करके उसे समुदाय में ले लिया। देवभद्राचार्य को यह मालूम होने पर उन्होंने आचार्यश्री से कहा—'इसको समुदाय में लेकर आपने अच्छा कार्य नहीं किया। यह आपको कभी भी सुखावह न होगा।' यह सुनकर आचार्यश्री ने कहा—'यह सदा से ही स्वर्गीय आचार्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी की सेवा में रहा है; इसको कैसे निकाला जाय? जब तक निभेगा तब तक निभायेंगे।' तत्पश्चात् देवभद्राचार्यजी अन्यत्र विहार कर गये।

३२. आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी ने 'किस तरफ विहार करना चाहिये?' इसके निर्णयार्थ उन्होंने देवगुरुओं का स्मरण किया और तीन उपवास किये। देवलोक से श्री हरिसिंहाचार्य आये और बोले—'हमको स्मरण करने का क्या कारण है?' जिनदत्तसूरिजी ने कहा—'मुझे किस तरफ विहार करना चाहिये? यह निर्णय प्राप्त करने के लिये मैंने आपको स्मरण किया है।' 'मारवाड़ आदि की तरफ विहार करो' ऐसा उपदेश देकर हरिसिंहाचार्य अदृश्य हो गये। दैवयोग से उन्हीं दिनों मारवाड़ के रहने वाले मेहर, भावर, वासल, भरत आदि श्रावक व्यापार-वाणिज्य के लिये वहां आये हुये थे। वे लोग गुरु श्रीजिनदत्तसूरिजी के दर्शन करके तथा उनका प्रवचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुये और उनको सदा के लिये अपना गुरु बनाया। उनमें भरत तो शास्त्र-ज्ञान के लिये वहीं रह गया और बाकी सब अपने-अपने घरों पर जाकर कुटुम्बियों के सम्मुख गुरुजी के गुण वर्णन करने लगे। इस प्रकार मारवाड़ में महाराज की प्रशंसा का सूत्रपात हो गया। वहां से विहार करके श्रीपूज्यजी नागपुर पहुँचे। नागपुर के श्रावकों में मुख्य सेठ धनदेव महाराज से कहने लगा कि यदि आप अपने व्याख्यान में 'आयतन-अनायतन' का झगड़ा छोड़ दें तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सभी श्रावक आपके आज्ञाकारी बन जायँ। आप मेरे वचन के अनुसार करें तो सबके पूज्य बन सकते हैं। उसका कथन सुनकर सूरिजी बोले—'धनदेव, शास्त्रों में लिखा है—श्रावक गुरुवचनानुसार चलें; किन्तु यह कहीं भी देखने में नहीं आया कि गुरु

श्रावकों की आज्ञा का पालन करे (उत्सूत्र भाषण महान् दोष है)। 'अधिक परिवार के अभाव में हमारी मान-पूजा नहीं होगी' तुम्हारा यह कथन भी ठीक नहीं है। मुनिवरों ने कहा है:—

मैवं मंस्था बहुपरिवारो जनो जगति पूज्यतां याति।
येन धनतनययुक्तापि शूकरी गूथमश्नाति ॥

[अर्थात् आप यह न समझिये कि अधिक परिवार वाला आदमी जगत् में अवश्य ही पूज्य हो जाता है। पुत्र-पौत्रों के अधिक परिवार को साथ रखती हुई भी सूकरी मैले को खाती है।]

यह कथन धनदेव को नहीं भाया। प्रत्युत कर्णकटु मालूम हुआ। किसी को अच्छा लगे या न लगे, गुरु लोग तो युक्तियुक्त ही कहेंगे। ये वचन वहाँ बैठे हुये कतिपय विवेकशील पुरुषों को बड़े अच्छे मालूम हुए।

महाराज नागपुर से अजमेर गये। वहाँ पर ठाकुर आशाधर, साधारण, रासल आदि श्रावक इनके अनन्यभक्त थे। श्री जिनदत्तसूरिजी प्रतिदिन वहां पर बाहड़देव मन्दिर में देव-वन्दना के लिये जाया करते थे। एक दिन वहाँ पर मन्दिराध्यक्ष चैत्यवासी आचार्य आगया। वह इन महाराज से (दीक्षा-पर्याय आदि) प्रत्येक बात में छोटा था, तथापि मन्दिर में इनके साथ देव-वन्दनादि शिष्टाचार का पालन नहीं करता था। ठाकुर आशाधर आदि श्रावकों ने महाराज से कहा 'यहाँ आने से क्या फायदा जबकि आपके साथ युक्त सद्व्यवहार नहीं वर्ता जाय।' उसी दिन से (मन्दिर में आकर किया जाने वाला देव-वन्दना आदि) व्यवहार रुक गया। इसके बाद सब श्रावकों का एक समूह अजमेर के तत्कालीन राजा अर्णोराज के पास गया और राजा से निवेदन किया कि, 'हमारे गुरु श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज यहाँ आपकी नगरी में पधारे हैं।' राजा ने कहा, 'यदि आये हैं तो बड़े आनन्द की बात है; आप लोग मेरे पास किस कार्य के लिये आये हैं। उस काम को कहो।' श्रावक बोले—'महाराज, हमको एक ऐसे भूमिखण्ड की जरूरत है; जहां पर हम लोग देवमंदिर, धर्मस्थान और अपने कुटुम्ब के लिये कुछ घर बनवालें।' उनकी यह प्रार्थना सुनकर राजा ने कहा—'शहर से दक्षिण की ओर जो पहाड़ है उसके ऊपर और नीचे तुम्हारे जचे सो बनवा लो। तुम्हारे गुरुजी के दर्शन हम भी करेंगे।' श्रावकों ने यह सारा वृत्तान्त गुरुजी से आकर कहा। सुनकर गुरुजी कहने लगे 'जबकि राजा स्वयं ही दर्शनों की अभिलाषा प्रकट करता है, तो आप लोग उनको अवश्य बुलावें। उनके यहां आने में अनेक लाभ हैं।' अच्छा दिन देखकर श्रावक लोगों ने राजा को आमंत्रित किया। राजा साहब आये और गुरुजी को सम्मान के साथ वन्दना की। आचार्यश्री ने राजा को इस प्रकार आशीर्वाद दिया—

श्रिये कृतनतानन्दा विशेषवृषसंगताः ।
भवन्तु भवतां भूप! ब्रह्मश्रीधरशंकराः ॥

[हे राजन् ! भक्तों को आनन्द देने वाले क्रम से गरुड़, शेषनाग और बैल पर चढ़ने वाले ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आपका कल्याणकारी हों ।]

महाराज की विद्वत्ता देखकर प्रसन्न हुआ राजा कहने लगा—'भगवन् ! सदा हमारे यहाँ ही रहिये ।' गुरुजी बोले, 'राजन्, आपने कहा तो ठीक; परन्तु हम साधुओं की मर्यादा ऐसी है कि हमें एक स्थान पर अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिये । सर्वसाधारण के उपकार की दृष्टि से हमें सर्वत्र विहार करना पड़ता है । हां, हम यहां पर सदा आते जाते रहेंगे, जिससे कि तुम्हें मानसिक संतोष होता रहे ।' आचार्यश्री के साथ वार्तालाप से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ राजा वहां से उठकर अपने स्थान को गया । उसके जाने के बाद पूज्यश्री ठाकुर आशाधर से बोले—

इदमन्तरमुपकृतये प्रकृतिचला यावदस्ति संपदियम् ।
विपदि नियतोदयायां पुनरुपकर्तुं कुतोऽवसरः ॥

[स्वभाव से ही चंचल, यह लक्ष्मी जब तक पास में है, तब तक परोपकार जरूर करना चाहिये । विपत्ति का आना निश्चित है । विपत्ति आने पर धोखा धरते रहो तो फिर परोपकार करने का मौका हाथ आना कठिन है । विपत्ति-संपत्ति में यही अंतर है ।]

इसलिये आपको खम्भात, शत्रुञ्जय और गिरनार मन्दिरों के समान श्री पार्श्वनाथ स्वामी, श्रीऋषभदेव स्वामी तथा श्रीनेमिनाथ स्वामी के मन्दिर बनवाने चाहियें । उन मंदिरों के ऊपर अम्बिका देवी की छतरी और नीचे गणधर आदि के स्थान बनाने चाहियें । आप सम्पत्तिशाली हैं । लक्ष्मी के सदुपयोग का यह अच्छा अवसर है । आप इससे लाभ उठाइये । लक्ष्मी का सर्वदा स्थायी रहना बड़ा मुश्किल है ।

३३. आशाधर ठाकुर को इस प्रकार कर्त्तव्य का उपदेश देकर सूरीश्वरजी बागड़ देश की ओर विहार कर गये । वहां के लोग श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज के अनन्यभक्त थे । उनका देवलोक-गमन सुनकर वहां वालों को बड़ा खेद हुआ था; परन्तु जब उन्होंने सुना कि उनके पाट पर विराजमान श्रीजिनदत्तसूरिजी बड़े ही ज्ञानी, ध्यानी तथा महावीर स्वामी के वदनारविंद से निकले हुए सुधर्मास्वामी गणधर से रचित सिद्धान्तों के बड़े अच्छे ज्ञाता हैं, तो उनके आनन्द की कोई सीमा न रही । जब लोगों ने आकर यह समाचार सुनाया कि जिनवल्लभ युगप्रधान, तीर्थङ्करों के समान

सद्गुरु श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज अजमेर से विहार करके हमारी तरफ आ रहे हैं, तो लोग उनके दर्शनों के लिये बड़े ही आतुर हो उठे। जब महाराज वहां पधार आये तो उनके दर्शन करके लोगों को हार्दिक संतोष हुआ। श्रावक लोगों ने महाराज से अनेक प्रकार के प्रश्न किये। सूरिजी ने 'केवलज्ञानी' की तरह उन सबको यथोचित उत्तर दिया। महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर कई लोगों ने सम्यक्त्व, कइयों ने देशविरति तथा बहुतों ने सर्वविरति व्रत धारण किया। सुनते हैं वहां पर महाराज ने बावन साध्वियां और अनेक साधुओं को दीक्षा दी।

३४. उसी समय साधु जिनशेखर को उपाध्याय पद देकर कतिपय मुनियों के साथ विहार कराकर रुद्रपल्ली भेज दिया। वहां पर वह अपने नाती गोतियों (स्वजनवर्ग) की श्रद्धावृद्धि के लिये तप करने में प्रवृत्त हो गया। स्थानीय जयदेवाचार्य ने अपने स्थान पर आने जाने वाले लोगों से सुना कि श्रीजिनवल्लभसूरिजी के पाट पर आरुढ़ सर्व गुण-सम्पन्न, श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज आजकल हमारे इस (वागड़) प्रान्त में आये हुए हैं। उन्होंने सोचा इनका आना हमारे लिये बड़ा ही कल्याणकारी है। स्वर्गीय श्री जिनवल्लभसूरिजी ने चैत्यवास को त्यागकर श्रीअभयदेवसूरिजी के पास वसतिमार्ग को स्वीकार किया था। तभी से हमारा मानसिक झुकाव वसति मार्ग की ओर है। वे अपने परिवार के साथ श्री जिनदत्तसूरिजी के दर्शन एवं वंदना के लिये उनके पास आये। वन्दनादि शिष्टाचार के बाद सिद्धान्त-मधुर-वचनों से सूरिजी ने उनके साथ कुछ देर तक सम्भाषण किया। महाराज के मधुर वचनों से मुग्ध हुए जयदेवाचार्य ने कहा कि, 'जन्म जन्मान्तर में हमारे गुरु ये ही हों।' शुभ दिनों में श्री जयदेवाचार्य ने उनके पास दीक्षाग्रहण की। शास्त्रों में वर्णित सनत्कुमार चक्रवर्ती ने जिस प्रकार त्याग के बाद साम्राज्यसम्पत्ति की ओर मुंह मोड़कर नहीं देखा, वैसे ही श्री जयदेवाचार्य ने मठ, मंदिर, उद्यान, कोश, खजाना आदि को छोड़कर बाद में उनकी तरफ जरा भी लक्ष्य नहीं किया।

श्री जिनप्रभाचार्य नाम के एक महात्मा रमल विद्या के अच्छे जानकार होने से लोगों में खूब प्रसिद्ध हो चुके थे। वे घूमते फिरते किसी समय तुर्कों के राज्य में चले गये। वहाँ पर उनको ज्ञानी समझकर एक यवन ने पूछा—'मेरे हाथ में क्या वस्तु है?' साधुजी ने गणित करके बतलाया, 'कि तुम्हारे हाथ में खड़िया मिट्टी का टुकड़ा और उसके साथ में एक बाल भी है।' उसको बाल का पता नहीं था। जब मुट्ठी खोलकर देखा तो मृत्तिका खण्ड के साथ एक केश भी है। इस ज्ञान-बल को देखकर वह तुर्क बड़ा प्रसन्न हुआ और मुनिजी का हाथ पकड़ कर चूमता हुआ अपनी मातृभाषा में 'बक्का-बक्का' ऐसे बोला। (वह मुसलमान कोई बड़ा आदमी था। उसने चाहा कि इस साधु को अपने साथ में रक्खूं) आचार्य ने सोचा—'यवन प्रायः (दुष्ट) विश्वासघाती हुआ करते हैं। इनका कोई भरोसा नहीं—कदाचित् मुझे मार डालें।' इस कारण

आचार्यजी वहाँ से रातों रात भगकर अपने देश में आ गये। देश में आने पर चैत्यवासियों में प्रसिद्ध श्री जयदेवाचार्य को वसतिमार्ग के आश्रित जानकर उनकी भी इच्छा वसति-मार्ग-सेवन की हुई; परन्तु वसतिमार्ग के नियमों को असिधारा के समान कठिन समझ कर मन में झिझक गये। वसतिमार्ग के आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी को अपना गुरु बनाया जाय या नहीं ? इस बात का निश्चय करने के लिये उन्होंने रमल का पाशा डाला। प्रथम बार पाशा डालने पर गणित करने से श्री जिनदत्तसूरिजी का नाम आया। दूसरी बार भी पाशा डालने पर उन्हीं का नाम आया। तीसरी बार जब गणित करने लगे तो आकाश से एक अग्नि का गोला गिरा और आकाश वाणी हुई—'यदि तुम्हें शुद्ध-मार्ग से प्रयोजन है तो क्यों वारम्बार गणित करते हो ? इन्हीं को अपना गुरु मानकर धर्माचरण करो।' इस वाणी से संशयरहित होकर जिनप्रभाचार्य ने श्री जिन-दत्तसूरिजी से दीक्षा ग्रहण की। और अपनी आत्मा को सन्तोष दिया। उन्हीं दिनों में अतिशय ज्ञानी श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज के पास आकर चैत्यवासी श्री विमलचंद्रगणि ने अपनी सम्प्रदाय के दो आचार्यों को उनके अनुयायी बना जानकर स्वयं भी वसतिमार्ग को स्वीकार किया। उसी समय जिनरक्षित और शीलभद्र ने भी अपनी माता के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। वैसे ही स्थिरचंद्र और वरदत्त नाम के दो भाइयों ने प्रव्रज्या स्वीकार की। वहीं पर एक जयदत्त नाम का मुनि बड़ा मंत्रवादी था। उसके पूर्वज मंत्रविद्या में विख्यात थे; परन्तु वे पूर्वज क्रुद्ध हुई देवी से नष्ट कर दिये गये थे। केवल यह एक बचा था। यह जिनदत्तसूरिजी की शरण में आकर दीक्षित हो गया। सूरिजी ने दुष्ट देवता से इसकी रक्षा की। गुणचन्द्र नाम के यति को भी सूरिजी ने दीक्षा दी। इन यतिजी को जब ये श्रावक अवस्था में थे, तुर्क पकड़कर ले गये थे। इनका हाथ देखकर तुर्कों ने कहा कि 'इन्हें अपना भण्डारी बनायेंगे।' यह कहीं भाग न जाय इस कारण से इनको जंजीर से जकड़ दिया गया था। परन्तु इन्होंने कैद की कोठरी में पड़े-पड़े नमस्कार मंत्र का एक लक्ष जाप किया। उस जाप के प्रभाव से सायंकाल जंजीर अपने आप छिन्न-भिन्न हो गई। वहाँ से निकलकर वे ढलती रात में एक दयालु बुढ़िया के घर में छिपकर रहे। बुढ़िया ने दया करके इनको अपने कोठे में छिपा लिया था। तुर्कों ने इधर-उधर इनकी खूब खोज की, परन्तु ये मिले नहीं। रात में वहाँ से निकलकर जैसे-तैसे अपने घर आये। इस घटना से वैराग्य उत्पन्न होने से इन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की थी। रामचन्द्रगणि अपने पुत्र जीवानन्द के साथ इस धर्म को भव्य धर्म जानकर अन्यगच्छ को छोड़ कर सूरिजी का आज्ञाकारी बना। इसी प्रकार ब्रह्मचन्द्रगणि ने भी इनसे व्रत ग्रहण किया। श्रीजिनदत्त-सूरिजी के पास जब साधु-साध्वियों का विशाल समुदाय हो गया, तो इन्होंने उनमें से योग्यों को चुन-चुन कर वृत्तिपंजिका आदि टीका ग्रन्थ पढ़ने के लिये धारा नगरी में भेजा। उनमें जिनरक्षित, शीलभद्र, स्थिरचन्द्र, वरदत्त, श्रीमति, जिनमति, पूर्णश्री आदि साधु-साध्वियों के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। वहाँ पर इन्होंने श्रावक महानुभावों की सहायता से विद्याभ्यास किया।

वहाँ से श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज रुद्रपल्ली की तरफ विहार कर गये। एक गाँव में एक श्रावक प्रतिदिन व्यंतरदेव से सताया जाता था। वह गाँव मार्ग में आगया। उस व्यंतर-पीड़ित श्रावक के पुण्य से महाराज वहीं ठहर गये। उस श्रावक ने महाराज के पास आकर अपनी शरीर की अवस्था बताई। महाराज समझ गये कि इसके शरीर में जो व्यंतर है वह बड़ा भयानक है और मंत्र-तंत्रों से साध्य नहीं है। महाराज ने गणधर सप्तति का टिप्पण बनाकर उसके हाथ में दिया और कहा, 'तुम अपनी दृष्टि और मन इसमें स्थिर रक्खो।' ऐसा करने से वह व्यंतर पहले दिन बीमार की शय्या तक पहुंचा, दूसरे दिन गृहद्वार तक और तीसरे दिन आया ही नहीं। वह पीड़ित श्रावक एकदम स्वस्थ हो गया। वहाँ से चलकर महाराज रुद्रपल्ली पहुंचे। जिनशेखरोपाध्यायजी वहाँ पहले से थे ही। महाराज का आगमन सुनकर स्थानीय श्रावक-वृन्द को साथ लेकर वे उनके सम्मुख आये। बड़े आरोह-समारोह तथा गाजे-बाजे के साथ पूज्यश्री का नगर प्रवेश कराया गया। रुद्रपल्ली के एक सौ बीस श्रावक-कुटुम्बों को जिनधर्म में दीक्षित किया तथा पार्श्वनाथ स्वामी और ऋषभदेव स्वामी के दो मन्दिरों की सूरिजी ने प्रतिष्ठा की। कई श्रावकों ने देशविरति और कइयों ने सर्वविरति व्रत धारण किये। सर्वविरतिव्रत धारकों में देवपालगणि आदि मुख्य थे। उपदेश आदि से सब लोगों को समाधान देकर 'जयदेवाचार्य को हम यहाँ भेज देंगे' ऐसा कहकर महाराज पश्चिम देश की तरफ चले गये।

२५. वहाँ से फिर बागड़ देश में आये। व्याघ्रपुर में जयदेवाचार्य से भेंट हुई। महाराज ने जयदेवाचार्य को रुद्रपल्ली भेज दिया और स्वयं व्याघ्रपुरी में रहकर श्रीजिनवल्लभसूरि प्ररूपित, चैत्य-गृहविधिस्वरूप 'चर्चरी' काव्य की रचना की। उसका गुटका बनाकर मेहर, वासल आदि श्रावकों को ज्ञान के लिये विक्रमपुर भेजा। विक्रमपुर में देवधर के पिता रुल्हिया के घर के पास पौषधशाला में एकत्रित होकर श्रावकों ने वह चर्चरी पुस्तक खोली। उसी समय उन्मत्त देवधर ने अचानक कहीं से आकर चर्चरीपुस्तक श्रावकों के हाथ से छीनकर फाड़ डाली। ये लोग उस उन्मत्त का कुछ भी न कर सके। उसके पिता से शिकायत की तो उसने कहा, 'यह तो प्रमादी है; इसका क्या इलाज किया जाय। तथापि हम उसे समझा देंगे। वह आयन्दा ऐसी हरकत नहीं करेगा।' श्रावकों ने सर्वसम्मति से पूज्यश्री को एक पत्र दिया। उसमें भेजी हुई चर्चरी पुस्तक के फाड़े जाने का हाल लिख दिया। पत्र लिखित समाचारों को जानकर पूज्यश्री ने दूसरी चर्चरी पुस्तक लिखवाकर भेजी और उसके साथ पत्र में यह भी लिखा कि—'देवधर को खोटी-खरी कुछ भी मत कहना। देव-गुरुओं की कृपा से यह थोड़े दिनों में ही सुधर जायगा।' 'चर्चरी' काव्य की दूसरी पुस्तक को पाकर सब श्रावकों ने एकत्रित होकर उसे खोली और पढ़ने से सबको अतीव सन्तोष हुआ। देवधर को मालूम हुआ कि दूसरी पुस्तक आगई है, तो उसने सोचा कि, 'एक तो मैंने फाड़ डाली थी। फिर आचार्य ने भेजी है; तो जरूर इस पुस्तक में कोई रहस्य छिपा हुआ है। जैसे भी हो यह बात

जाननी चाहिये; देखें इसके अन्दर क्या लिखा है ?' एक दिन श्रावक लोग अपने नित्य नियम से निवृत्त होकर चर्चरी पुस्तक को स्थापनाचार्य के पास आले में रखकर पौषधशाला के कपाट बन्द करके चले गये। देवधर को मौका मिल गया। वह अपने घर के उपरिभाग से उतरकर पौषधशाला में आ गया और यथास्थान रखी हुई उक्त पुस्तक को बड़े चाव से पढ़ने लगा। गाथाओं का अर्थ समझने से मनमें आल्हाद आने लगा। 'अनायतनं बिम्बम्', 'स्त्री पूजां न करोति' ये दो पद उसकी समझ में नहीं आये। पुस्तकोल्लिखित जैनधर्म के उच्च रहस्यों को समझकर उसके मन में जैन–सिद्धान्तों के प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई और उसने अपने मन में यह संकल्प किया कि मैं भी इस मार्ग का अनुसरण करूँगा।

इधर श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज ने बागड़ देश में रहते हुये जिन साधु-साध्वियों को विद्याभ्यास करने के लिये धारानगरी भेजा था, उन सबको वहाँ से बुला लिया और सभी को सिद्धान्तों का अभ्यास कराया। अपने दीक्षित जीवदेवाचार्य को मुनीन्द्र (आचार्य) पद की उपाधि दी और अन्य शिष्यों को वाचनाचार्य के पदों से सम्मानित किया; जिनके शुभ नाम ये हैं—वाचनाचार्य जिनचक्रित (? चन्द्र) गणि, वा० शीलभद्रगणि, वा० स्थिरचन्द्रगणि, वा० ब्रह्मचंद्रगणि, वा० विमलचन्द्रगणि, वा० वरदत्तगणि, वा० भुवनचन्द्रगणि, वा० वरनागगणि, वा० रामचन्द्रगणि, वा० मणिभद्रगणि। और श्रीमति, जिनमति, पूर्णश्री, ज्ञानश्री, जिनश्री इन पांच आर्याओं को महत्तरा पद से विभूषित किया। इसी प्रकार स्वर्गीय हरिसिंहाचार्य के सुयोग्य शिष्य मुनिचन्द्र को उपाध्याय पदवी दी। इन मुनिचंद्रजी ने श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज से प्रार्थना की थी कि 'यदि मेरा कोई योग्य शिष्य आपके पास आजाय तो कृपया आप उसे आचार्य पद देने की उदारता दर्शावें।' महाराज ने यह बात स्वीकार करली। कुछ काल के बाद उनके शिष्य जयसिंह को, चित्तौड़ में दिये हुये वचन के अनुसार आचार्य की उपाधि दी और जयसिंह के शिष्य जयचन्द्र को, पाटण में समवसरण में मुनीन्द्र (सूरि) पद पर स्थापित किया और महाराज ने दोनों को उपदेश दिया कि—'देखो रीति से वर्तना, कहीं क्रिया–काण्ड में असावधानी न होने पावे।' जीवानन्द को उपाध्याय पदारूढ़ किया। यहाँ यदि इन आचार्य, उपाध्याय, वाचनाचार्य प्रभृति प्रत्येक मुनिवरों का विहार–स्थान, योग्यता, शिष्य-प्रशिष्य आदि का वर्णन करने लगें तो एक बड़ा विस्तृत ग्रन्थ बन जायगा। इसलिये संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जिनदत्तसूरिजी महाराज ने आचार्यादि समस्त पदाधिकारियों को भविष्य के लिये कर्त्तव्य समझाकर, सबके विहार आदि के स्थान निश्चित कर दिये और महाराज स्वयं अजमेर की ओर प्रस्थान कर गये। अजमेर के भक्तिमान श्रावकों ने गाजे-बाजे के साथ ठाठ-बाट से पूज्यश्री का नगर प्रवेश कराया।

३६. वहाँ पर ठाकुर आशाधर आदि ने पहाड़ पर तीन देवमन्दिर एवं अम्बिकादेवी आदि के स्थान बनवाये थे। श्रावकों की प्रार्थना से श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज ने अच्छा लग्न देखकर

देवमन्दिरों के मूलनिवेश में वासक्षेप किया और शिखर आदि मन्दिर के पार्श्ववर्ती स्थानों में उन-उन मूर्तियों की स्थापना करवाई। यह पहले कहा जा चुका है कि विक्रमपुर में सरिइयापुत्र देवधर चर्चरी पुस्तक के पढ़ने से सुविहित-पक्ष के प्रति अनुरक्त एवं भक्तिमान हो गया था। उसी देवधर ने अपने कुटुम्ब के पन्द्रह श्रावकों को एकत्रित करके अपने पिता एवं सेठ आशदेव को सम्बोधन करके कहा, 'श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज से यहाँ विक्रमपुर में विहार करने के लिये प्रार्थना करनी चाहिये।' यद्यपि ये लोग चैत्यवासी आचार्यों में श्रद्धा रखते थे; परन्तु प्रभावशाली देवधर के विरुद्ध बोलने का किसी को साहस नहीं हुआ। श्रावकों को साथ लेकर वह अजमेर के लिये चल पड़ा। मार्ग की थकावट दूर करने के लिये नागपुर में ठहरा। धर्मीमानी देवधर का विक्रमपुर से आना नागपुर वासियों को विदित हो गया।

३७. उस समय वहाँ पर चैत्यवासी देवाचार्य विशेष रूप से प्रसिद्ध हो रहे थे। देवधर ने सुना कि देवगृह में व्याख्यान के समय देवाचार्य बैठे हैं। तब देवधर चरणप्रक्षालनादि कर देवगृह में आया। आचार्य की वन्दना की। फिर दोनों ओर से सुखशाता और कुशल-प्रश्न का शिष्टाचार हुआ। तत्पश्चात् श्रावक देवधर ने पूछा कि, 'भगवन्, जिस मन्दिर में रात्रि के समय स्त्रियों का प्रवेश होता हो, उसे चैत्य क्यों कहना चाहिये ?' इस प्रश्न को सुनकर देवाचार्य ने सोचा-इसके कान में जिनदत्तसूरि का मन्त्र प्रवेश कर गया मालूम होता है। देवाचार्य ने प्रकट में कहा, 'श्रावक जी ! रात्रि में स्त्री प्रवेशादि उचित नहीं है।'

देवधर—तो आप लोग फिर वारण क्यों नहीं करते ?'

आचार्य—लाखों आदमियों में किस-किस को वारण किया जाय।

देवधर—भगवन् ! जिस देवमन्दिर में जिनाज्ञा न चलती हो, जहाँ जिनाज्ञा की अवहेलना करके लोग स्वेच्छा से वर्तते हों उसे जिनगृह कहा जाय या जनगृह ? इसका जवाब दीजिये।

आचार्य—जहाँ पर साक्षात् जिन भगवान् की प्रतिमा भीतर विराजमान दिखाई देती हो उसे जिन-मन्दिर क्यों नहीं कहना चाहिये।

देवधर—इतना तो हम मूर्ख भी समझ सकते हैं कि जहाँ पर जिसकी आज्ञा न मानी जाती हो, वह उसका घर नहीं कहा जा सकता। केवल पत्थर की अर्हत् मूर्ति को भीतर रख देने से और अर्हतों की आज्ञा को त्याग कर मनमाना व्यवहार करने मात्र से ही जिन-मन्दिर क्योंकर हो सकता है ? आप इस बात को जानते हुये भी प्रचलित प्रवाह को नहीं रोकते हैं। यह मैंने आपको वन्दन कर सूचित कर दिया कि आप रोकते नहीं प्रत्युतः इसको पुष्ट करते हैं। इसलिये ऐसे गुरुओं

को आज से मेरी यह अन्तिम वन्दना है। जहां तीर्थङ्करों की आज्ञा का यथार्थ रूप से पालन होता है, उसी मार्ग का अनुसरण करूंगा। इस प्रकार कहकर देवधर वहां से उठकर चल दिया।

इस प्रश्नोत्तर को सुनकर साथ वाले स्वकुटुम्बी श्रावकों की भी विधिमार्ग में स्थिरता हो गई। देवधर श्रावकवृन्द के साथ वहां से अजमेर गया। जिनदत्तसूरिजी महाराज की सेवा में पहुंचकर उसने भक्ति-भाव पूर्वक वन्दना की। उनका अभिप्राय जानकर श्रीसूरिजी ने देशना दी। देशना सुनने से देवधर के तमाम (सारे) संशय दूर हो गये। देवधर आदि श्रावकों ने महाराज से विक्रमपुर विहार करने के लिये प्रार्थना की। अजमेर से देवमन्दिर, प्रतिमा, अम्बिका, गणधर आदि की धूमधाम से प्रतिष्ठा करके सूरिजी महाराज देवधर के साथ विक्रमपुर आ गये। वहां पर बहुत से आदमियों को प्रतिबोध दिया और श्री महावीर स्वामी की स्थापना की।

३८. वहां से श्रीपूज्यजी उ च्चा न ग री में गये। मार्ग में विघ्नकारी भूत-प्रेत आदि को भी प्रतिबोध दिया। उच्चावासी लोकों को उपदेश दिया, इसमें तो कहना ही क्या है? वहां से वे न र व र गये। नरवर के बाद त्रि भु व न गि रि के कुमारपाल नाम के राजा को उन्होंने सदुपदेश दिया। वहां बहुत से साधु-संतों को विहार करवाया, एवं भगवान् शांतिनाथ देवकी प्रतिष्ठा करवाई। वहां से उज्जैन में जाकर व्याख्यान के समय महाराज को छलने के लिये श्राविकाओं के वेश में आई हुई चौसठ योगिनियों को प्रतिबोधित किया।

एक समय महाराज चित्तौड़ पधारे थे। नगर में प्रवेश के समय विघ्नप्रेमी लोगों ने अपशकुन करने के लिये रस्सी से बांधकर काले सर्प को मार्ग में सूरिजी के सन्मुख छोड़ दिया। श्रावकों ने अपशकुन समझकर गाजे-बाजे बन्द करवा दिये और सब पर विषाद छा गया तथा वे सब अत्यन्त दुःखी हुये। उनकी यह स्थिति देखकर ज्ञान के सूर्य श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज बोले—'आप लोग उदास क्यों हो गये हैं? जिन दुष्टों ने इस काले सर्प को बांधकर इस रास्ते में डाला है, वे भी इसी प्रकार निगडों से बांधे जाकर राजा द्वारा जेलखाने में डाले जायेंगे। इसलिये जुलूस को आगे चलने दो; यह बड़ा ही सुन्दर शकुन है।' जब कुछ दूर आगे पहुँचे तो दुष्टों ने अपशकुन बढ़ाने के लिये एक नकटी औरत को आगे लाकर खड़ी कर दी। उसको आगे खड़ी देखकर उसी की भाषा में श्रीपूज्यजी बोले—'आई भली'। उस दुष्ट रण्डा ने प्रत्युत्तर दिया—'मल्लह धाणुक्कह मुक्की।' कुछ हँसकर प्रतिभाशाली पूज्यजी बोले—'पक्खहरा तेण तुहछिन्ना।' इसके बाद वह निरुत्तर हो वहाँ से चली गई। महाराज का प्रभाव देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इन महाराज ने अपने जीवन में अनेक आश्चर्यकारी कार्य किये। देवता नौकरों की तरह सर्वदा इनका हुक्म उठाया करते थे। महाराज करुणा के समुद्र थे। महाराज ने धारापुरी, गणपद्र आदि अनेक नगरी, पुर, ग्रामों में महावीर, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ, अजितनाथ आदि तीर्थङ्करों की प्रतिमा, मन्दिर

और शिखरों की स्थापना की थी। इन्होंने अपने ज्ञान-बल से अपने बाद पाट की उन्नति करने वाले, रासल श्रावक के पुत्र जिनचन्द्रसूरि को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। उन्होंने इस भुवन में भव्य पुरुषों को उसी प्रकार प्रतिबोध दिया जैसे सूर्य कमलों को बोध देता है। इस प्रकार श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज का यह जीवन चरित्र अति संक्षेप में कहा गया है। अस्तु, उस नकटी औरत के हट जाने पर महाराज बड़े समारोह पूर्वक नगर में प्रविष्ट हुये और वहां पर कई दिनों तक रहकर तीर्थङ्कर-प्रतिमा-प्रतिष्ठा सम्बन्धी बहुत से महोत्सव करवाये। वहाँ से प्रस्थान करके आचार्यश्री अजमेर गये। अजमेर में वि० सं० १२०३ फाल्गुन सुदी ९ (नवमी) को जिनचन्द्रसूरि को दीक्षा दी गई। अन्य मनुष्यों से दुःसाध्य अति कठिन तपोबल के प्रभाव से बहुत ही उत्तमोत्तम विद्यायें-मंत्र-तंत्र तथा यंत्र महाराज जिनदत्तसूरिजी ने जान लिये थे। ये महात्मा भक्तों के वांछित मनोरथ सफल करने में चिन्तामणि रत्न के समान थे। इन्होंने वि० सं० १२०५ को वैशाख सुदि षष्ठी के दिन विक्रमपुर में रासलकुलनन्दन श्रीजिनचन्द्रसूरि को अपने पाट पर बैठाया। उस समय श्रीजिनचन्द्रसूरि की अवस्था केवल नौ ही वर्ष की थी; परन्तु इतनी छोटी अवस्था में ही ये महात्मा बड़े-बड़े विद्वानों के कान कतरते और सौभाग्य-भाग्य आदि अनेक गुणों के निधान थे। अपनी उपस्थिति में जिनचन्द्रसूरि को उत्तराधिकार देकर तथा करने योग्य समस्त कार्यों को विधि-पूर्वक समाप्त करके अजमेर में ही वि० सं० १२११ में आषाढ़ वदि* एकादशी को श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज इस असार संसार को त्याग कर देवताओं को दर्शन देने के लिये इन्द्र की प्रसिद्ध अमरावती में पधार गये।

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि

३६. विक्रम सम्वत् १२१४ में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने त्रिभुवनगिरि में सज्जनों के मन को हरने वाले, श्रीशान्तिनाथ शिखर पर बड़े ठाट-बाट के साथ सुवर्ण कलश और सुवर्णमय ध्वजदण्ड का आरोपण किया। इसके बाद हेमदेवी नाम की आर्या को प्रवर्तनी पद देकर वि० सं० १२१७ में फाल्गुन शुक्ल दशमी के दिन मथुरा पहुँच कर पूर्णदेवगणि, जिनरथ, वीरभद्र, वीरजय, जगहित, जयशील, जिनभद्र आदि सहित श्रीजिनपतिसूरि को दीक्षित किया। श्रा० क्षेमंधर नामक धनीमानी सेठ को उन्होंने प्रतिबोध दिया और उपर्युक्त वर्ष में ही वैशाख शुक्ला दशमी को मरुकोट में भगवान् चन्द्रप्रभस्वामी के विधि-चैत्य में सुवर्ण कलश और सुवर्णमय ध्वजदण्ड का आरोपण किया। कलश, ध्वज, दण्ड, साधु सेठ गोल्हक ने अपने निज के धन-व्यय से तैयार करवाये थे। इस महोत्सव में क्षेमंधर सेठ ने पाँच सो द्रम्म देकर माला ग्रहण की।

* प्रस्तुत पट्टावली के अतिरिक्त अन्य सब गुर्वावलियों तथा चरित्रों में स्वर्गगमन की तिथि आषाढ शुक्ला एकादशी ही उल्लिखित है तथा परम्परा से मान्य भी है।
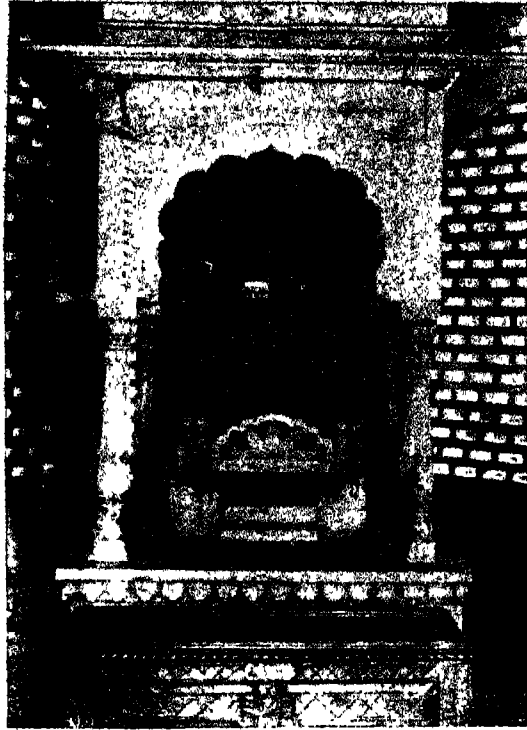
दादा जिनदत्त सूरिजी का स्वर्ग स्थान दादाबाड़ी अजमेर (पृष्ठ ४४)
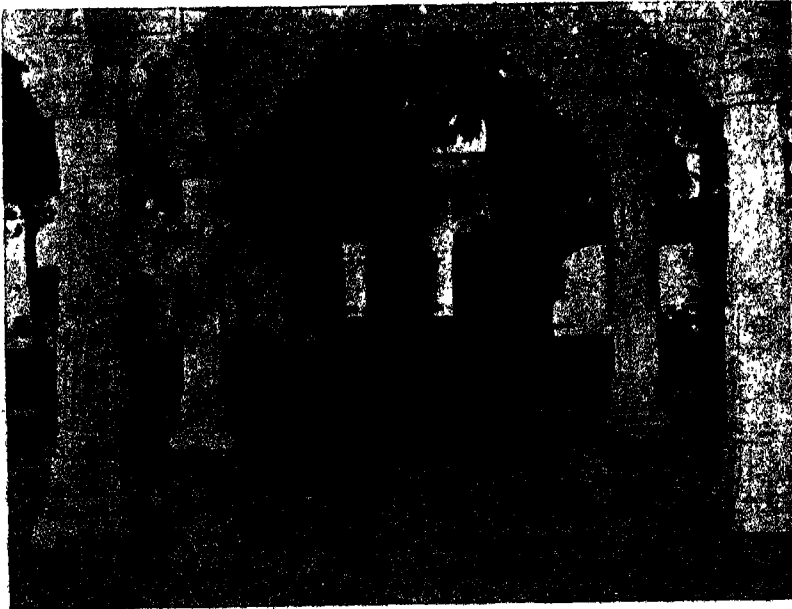
मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी का समाधिस्थान दिल्ली (पृष्ठ ४४)

युगप्रधान दादा जिनकुशल सूरिजी (पृष्ठ १४६)

वहाँ से महाराज उच्चानगरी में पहुँचे। सं० १२१८ में ऋषभदत्त, विनयचन्द्र, विनयशील, गुणवर्द्धन और मानचन्द्र आदि पाँच साधु तथा जगश्री, सरस्वती, गुणश्री आदि साध्वियाँ दीक्षित कीं। इन महाराज के शासनकाल में साधु–साध्वियों की संख्या बढ़ने लगी। तत्पश्चात् सं० १२२१ में ये महाराज सागरपाट पधारे। वहाँ पर श्रा० गयधर द्वारा बनाये गये श्री पार्श्वनाथ विधि–चैत्य में देवकुलिका प्रतिष्ठित की। अजमेर में पधार कर स्वर्गीय श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज के स्मारक स्तूप की प्रतिष्ठा की। तदनन्तर बब्बेरक ग्राम में जाकर वाचनाचार्य गुणभद्रगणि, अभयचन्द्र, यशचन्द्र, यशोभद्र और देवभद्र इन पाँच शिष्यों को दीक्षा दी और इनके साथ देवभद्र की धर्मपत्नी को भी अधिकारिणी समझ कर दीक्षित किया। आशिकानगरी में नागदत्त मुनि को वाचनाचार्य का पद दिया। महावन में श्रीअजितनाथ भगवान् के मन्दिर की विधि-पूर्वक प्रतिष्ठा की। इसी प्रकार इन्द्रपुर में वा० गुणचन्द्र गणि के पितामह लाल श्रावक द्वारा बनाये हुये शान्तिनाथ भगवान् के विधिचैत्य में सुवर्णमय दण्ड, कलश और ध्वजा प्रतिष्ठित की। तगला नामक ग्राम में अजितनाथ विधि–चैत्य की प्रतिष्ठा की। सं० १२२२ में वादलीनगर में वाचनाचार्य गुणभद्र-गणि के पितामह लाल श्रावक द्वारा बनवाये हुए सुवर्णमय दण्ड, कलश, ध्वजा आदि की श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने प्राचीन पार्श्वनाथ भुवन में प्रतिष्ठित कर, अम्बिका–शिखर पर भी सुवर्ण कलश की स्थापना कर, पूज्यश्री रुद्रपल्ली की ओर विहार कर गये। रुद्रपल्ली से आगे नरपालपुर में महाराज गये। वहाँ पर ज्योतिःशास्त्र के ज्ञान से गर्वित, एक ज्योतिषी महाशय से पूज्यश्री की मुलाकात हुई। वाद–प्रतिवाद चलने पर महाराज ने कहा कि 'चर-स्थिर-द्विस्वभाव इन तीन स्वभाव वाले लग्नों में किसी लग्न का प्रभाव दिखाओ।' ज्योतिषीजी के इन्कार करने पर सूरिजी ने कहा—'स्थिर स्वभाव वाले वृषलग्न की स्थिरता का प्रभाव देखिये; वृषलग्न के उन्नीस से तीस अंशों तक के समय में और मृगशीर्ष मुहूर्त में श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर के सामने एक शिला अमा-वस्या के दिन स्थापित की। यह १७६ वर्षों तक स्थिर रहेगी।' ऐसा कहकर पण्डित को जीत लिया। पण्डित लज्जित होकर अपने स्थान को गया। सुनते हैं वह शिला अब भी उक्त स्थान में ज्यों की त्यों वर्तमान है।

४०. महाराज नरपालपुर से लौटकर फिर रुद्रपल्ली चले आये। वहां पर छोटी अवस्था वाले महाराज जिनचन्द्रसूरिजी किसी दिन चैत्यवासी मुनियों के मठ के पास होकर अपने शिष्यों के साथ बहिर्भूमिका के लिये जा रहे थे। मठाधीश श्री पद्मचन्द्राचार्य ने उनको देखकर मात्सर्यवश पूछा—कहिये आचार्यजी, आप मजे में हैं?

श्रीपूज्यजी ने कहा—देव और गुरुओं की कृपा से हम आनन्द में हैं।

पद्मचन्द्राचार्य फिर बोले—आप आजकल किन-किन शास्त्रों का अभ्यास कर रहे हैं।

महाराज के साथ वाले मुनि ने कहा—श्री पूज्यजी आजकल 'न्याय-कन्दली' ग्रन्थ का चिन्तन करते हैं।

पद्मचन्द्राचार्य—तमोवाद (अंधकार प्रकरण) का चिन्तन किया है ?

श्री पूज्य जी—हां, तमोवाद प्रकरण देखा है।

पद्मचन्द्राचार्य—अच्छी तरह से मनन कर लिया ?

श्री पूज्य—हां करलिया।

पद्म०—अन्धकार रूपी है या अरूपी ? अंधकार का कैसा रूप है ?

श्रीपूज्य —अन्धकार का रूप कैसा ही हो। इस समय इसके विवेचना की आवश्यकता नहीं है। राज सभा में प्रधान-प्रधान सभ्यों के समक्ष शास्त्रार्थ की व्यवस्था की जाय। तदनन्तर-वादी-प्रतिवादी अपनी-अपनी युक्ति-प्रमाणों के द्वारा इस विषय का मर्मोद्घाटन करें। यह निश्चित है कि स्वपक्षस्थापन करने पर भी वस्तु अपना स्वरूप नहीं छोड़ती।

पद्म०—पक्षस्थापना मात्र से वस्तु अपना स्वरूप छोड़े या न छोड़े; परन्तु तीर्थङ्करों ने तमको द्रव्य कहा है। यह सर्वसम्मत है।

श्रीपूज्य०—अन्धकार को द्रव्य मानने में कौन इन्कार करता है ? पूज्यश्री जिनचन्द्रसूरिजी ने वार्तालाप के समय ज्यों-ज्यों शिष्टता और विनय दर्शित किया; वैसे-वैसे पद्मचन्द्राचार्य दर्प सीमा को पार कर गये। कोप के आवेग से उनकी आंखें लाल हो गईं। समस्त गात्रों में कँपकँपी छा गई और कहने लगे—'मैं जब प्रमाणरीति से 'अन्धकार द्रव्य है' इसे स्थापित करूँगा, तब क्या तुम मेरे सामने ठहरने की योग्यता रखते हो ?'

पूज्यश्री०—'किसकी योग्यता है, किसको नहीं' इसका पता राजसभा में लगेगा। (यहां पर व्यर्थ ही पागल की तरह प्रलाप करना मुझे नहीं आता)। पशुप्रायों की जङ्गल ही रणभूमि है। आप मुझे कम उम्र का समझकर अपनी शक्ति को अधिक न बघारिये। मालूम है छोटे शरीर वाले सिंह की दहाड़ सुनकर पर्वताकृति गजराज मारे भय के भाग जाते हैं ?

उन दोनों आचार्यों का यह विवाद सुनकर कौतुक देखने के लिये वहां पर बहुत से नागरिक लोग इकट्ठे हो गये। दोनों पक्ष के श्रावक अपने-अपने आचार्य का पक्ष लेकर एक दूसरे को अहङ्कार दिखाने लगे। अधिक क्या कहें; यह मामला राज्याधिकारियों के समक्ष उपस्थित किया गया। दोनों ओर से नियम कायदे निश्चित कर शास्त्रार्थ की व्यवस्था निर्धारित की गई। जिनचन्द्रसूरिजी दृढ़ता के साथ जब शास्त्रार्थ करने लगे, तो शास्त्रार्थ

के उपोद्घात में ही पद्मचन्द्राचार्यजी फिसल गये। उनका गर्व शास्त्रार्थ की प्रथमावस्था में ही भग्न हो गया। राजकीय अधिकारियों ने बड़ी सावधानी के साथ वस्तुस्थिति को समझकर उपस्थित दर्शकों के सामने ही राज्य की ओर से श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को विजय-पत्र दिया। चारों ओर से सूरीश्वर का जय-घोष होने लगा। जिन-शासन की लोगों में बड़ी प्रभावना हुई। इस आशातीत विजय के उपलक्ष्य में महाराज को बधाई देने के लिये अत्यन्त प्रसन्न हुये श्रावकों ने उत्सव मनाया। तत्पश्चात् श्रीपूज्य-भक्त श्रावक 'जयति हट्ट' इस नाम से प्रसिद्ध हुये और पद्मचन्द्राचार्य के भक्त श्रावक लोगों के आक्षेप तथा उपहास के पात्र बनकर 'तर्कहट्ट' इस नाम से प्रसिद्ध हुये। इस प्रकार यशस्वी आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी कई दिन तक वहाँ रहे। बाद में सिद्धान्तों में बताई हुई विधि के अनुसार एक सार्थवाह के साथ वहाँ से विहार किया।

४१. मार्ग में चो र सिं दा न क ग्राम के पास सारे ही संघ ने पड़ाव डाला। वहां पर म्लेच्छों के भय से संघ को आकुल-व्याकुल होता देखकर श्रीपूज्यजी ने पूछा—'आप क्यों व्याकुल हो रहे हैं ?' संघ वालों ने कहा—'भगवन् ! आप देखिये म्लेच्छों की सेना आ रही है। इधर इस दिशा में धूली का ढूँड उड़ रहा है और कान लगाकर ध्यान से सुनिये, फौज का हो-हल्ला सुनाई दे रहा है।' महाराज ने सावधान होकर सब से कहा—'संघस्थित भाइयों ! धैर्य रखो, अपने ऊँट, बैल आदि चतुष्पदों को एकत्रित करलो। प्रभु श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज सबका भला करेंगे।' इसके बाद पूज्यश्री ने मंत्र-ध्यान पूर्वक अपने दण्ड से संघ के पड़ाव के चारों ओर कोटाकार रेखा खींच दी। संघ के तमाम आदमी गोखी में घुसकर बैठ गये। उन लोगों ने घोड़ों पर चढ़े हुये, पड़ाव के पास होकर जाते हुये हजारों म्लेच्छों को देखा परन्तु म्लेच्छों ने संघ को नहीं देखा, केवल कोट को देखते हुये दूर चले गये। संघ के समस्त लोग निर्भय होकर आगे चले। दिल्ली में समाचार पहुँचा कि पिछले ग्राम से संघ के साथ श्रीपूज्यजी आ रहे हैं। खबर पाते ही दिल्ली के मुख्य-मुख्य श्रावक वन्दना करने के लिये बड़े समारोह के साथ सन्मुख चले। ठाकुर लोहट, सेठ पाल्हण, सेठ कुलचन्द्र और सेठ महीचन्द्र आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। नगर के मुखिया, धनी, मानी, सेठ, साहूकार सुन्दर वस्त्राभूषण पहिन कर, अपने-अपने परिवार को साथ लेकर हाथी, घोड़ा, पालकी आदि श्रेष्ठ सवारियों पर चढ़कर जब दिल्ली से बाहर जारहे थे; तब अपने महल की छत पर बैठे हुए दिल्ली नरेश महाराजा मदनपाल* ने उन्हें जाते देखकर विस्मय के साथ मन्त्रियों से पूछा—'आज ये नगर-निवासी बाहर क्यों जारहे हैं ?' मन्त्रियों ने कहा—'राजन् ! अत्यन्त सुन्दराकृति, अनेक शक्ति-सम्पन्न इनके गुरु आये हैं। ये लोग भक्तिवश उनके सन्मुख जा रहे हैं।' राजा लोग मनमौजी होते हैं। मन्त्रियों का पूर्वोक्त कथन सुनकर राजाधिराज के मन में यह अभिलाषा हुई कि

* सम्भवतः अनंगपाल का ही जैन-साहित्य में मदनपाल-पर्यायवाची नाम मिलता है। महाराज अनंगपाल अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के नाना थे।

ऐसे प्रभावशाली गुरु का दर्शन हम भी करेंगे और उसी समय अश्वशालाध्यक्ष को आदेश दिया— महासाधनिक! हमारे खाशा घोड़े को सजाओ तथा नगर में उद्घोषणा करवादो कि सब राजपूत घुड़सवार हमारे साथ चलें। भूपति का आदेश पाते ही हजारों क्षत्रियवीर अश्वारूढ़ होकर नरपति के साथ हो लिये। श्रावक लोगों के पहुँचने के पहिले ही महाराजा मदनपाल श्रीपूज्यजी के पास पहुँच गये। वहां पर पूज्यश्री के साथ वाले संघ के श्रेष्ठिगणों ने प्रचुर भेंट (नजराना) देकर राजा का सत्कार किया। श्रीपूज्यजी ने भूपति जानकर कर्णप्रिय मधुरवाणी से राजा को धर्मोपदेश दिया। देशना सुनकर राजा ने कहा—'आचार्यवर! आपका शुभागमन किस स्थान से हुआ है?' श्रीपूज्यजी ने कहा—'हम इस समय रुद्रपल्ली से आरहे हैं।' राजा ने कहा—'आपश्री अपने चरण-विन्यास से मेरी नगरी (दिल्ली) को पवित्र कीजिये।' राजा के यह वाक्य सुनकर आचार्य महाराज मन ही मन सोचने लगे—'पूज्य गुरुदेव श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज ने दिल्ली-प्रवेश का निषेध किया था। राजा चलने के लिये आग्रह कर रहा है। ऐसी स्थिति में क्या करें?' इस प्रकार आचार्यश्री पशोपेश में पड़कर कुछ भी उत्तर नहीं दे सके। आचार्य की मौन मुद्रा देखकर राजा बोला—'भगवन्! आप चुप क्यों हो गये? क्या मेरे नगर में आपका कोई प्रतिपक्षी (दुश्मन) है? क्या आपके मन में यह आशंका है कि मेरे परिवार के उपयोगी आहार-पानी नहीं मिलेगा? अथवा और कोई कारण है; जिससे मार्ग में आये हुये मेरे नगर को छोड़कर आप अन्यत्र जा रहे हैं?' यह सुनकर आचार्यश्री ने कहा—'राजन्! आपका नगर धर्म-प्रधान क्षेत्र है।' यह सुनते ही बीच में ही महाराजा ने कहा—'तो फिर उठिये, दिल्ली पधारिये। आप विश्वास रखिये मेरी नगरी में आपकी तरफ कोई अंगुली उठाकर भी नहीं देख सकेगा।' इस प्रकार दिल्लीश्वर महाराजा मदनपाल के बारम्बार अनुरोध से जिनचन्द्रसूरिजी दिल्ली के प्रति विहार करने को प्रस्तुत हो गये। यद्यपि स्वर्गीय आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी के दिल्ली-गमन-निषेधात्मक अन्तिम उपदेश के त्यागने से उनके हृदय में मानसिक-पीड़ा अवश्य थी, परन्तु भावी के वश होकर आचार्यश्री राजा के प्रेम-भक्ति के प्रभाव में आकर दिल्ली चल दिये, अस्तु। जैनाचार्य के शुभागमन के उपलक्ष्य में सारा नगर सजाया गया। चौबीस प्रकार के बाजे बजने लगे। भाट-चारण लोग विरुदावली पढ़ने लगे। गगनचुम्बी विशाल भवनों पर ध्वजा-पताकायें फहराने लगीं। वसन्त आदि मांगलिक गाने गाये जारहे थे। नर्तकियां नाच रही थीं। महाराज के मस्तक पर छत्र विराजमान हो रहा था। लाखों आदमी जुलूस के साथ चल रहे थे। स्वयं दिल्लीपति महाराजा मदनपाल अपनी बाँह पकड़ाये हुये महाराजश्री के आगे चल रहे थे। वन्दरवाल और तोरणों से सभी गृह-द्वार सजाये गये थे। 'चौबीसो' गाती हुई हजारों रमणियों का झुण्ड छतों पर से आचार्यश्री के दर्शन करके अपने को धन्य मान रही थीं। ऐसे अभूतपूर्व समारोह के साथ सूरीश्वर ने भारत की परम्परागत प्रधान राजधानी दिल्ली में प्रवेश किया। महाराज के विराजने से नगर-निवासियों में 'राजा से रंक तक' नवजीवन का संचार हो गया।

उपदेशामृत की झड़ी से अनेक लोगों की सन्तप्त आत्मा को शान्ति पहुँची। इस प्रकार वहां रहते हुये कई दिन बीत गए।

४२. एक दिन दयालु स्वभाव वाले महाराज ने अनन्यभक्त श्रेष्ठि कुलचन्द्र को धनाभाव के कारण अर्थ-दुर्बल देखकर, केसर, कस्तूरी गोरोचन आदि सुगन्धित पदार्थों की स्याही से मंत्राक्षर लिखकर एक 'यन्त्रपट' दिया और कहा—'कुलचन्द्र! इस यन्त्रपट की अपनी मुट्ठीभर अष्टगन्ध चूर्ण से प्रतिदिन पूजन करना। यन्त्र पर चढा हुआ यह चूर्ण पारे के संयोग से 'सुवर्ण' बन जायगा।' पूज्यश्री की बताई हुई विधि के अनुसार यन्त्रपट की पूजा करने से श्रेष्ठि कुलचन्द्र कालान्तर में क्रोडपति हो गया।

४३. नवरात्रों की नवमी के दिन पूज्यश्री नगर के उत्तर द्वार से होकर बहिर्भूमिका के लिये जा रहे थे। मार्ग में मांस के लिये लड़ती हुई दो मिथ्यादृष्टि वाली देवियों को देखा। करुणार्द्र हृदय सूरिजी ने उनमें से अधिगाली नामक देवी को प्रतिबोध दिया। उस देवी ने सदुपदेश से शान्त-चित्त होकर पूज्यश्री से निवेदन किया—'भगवन्! आज से मैं मांस—बलि का त्याग करती हूँ। परन्तु, कृपा करके मुझे रहने के लिये स्थान बतलाइये; जहां पर रहती हुई मैं आपके आदेश का पालन कर सकूँ।' उसके सन्तोष के लिये पूज्यश्री ने कहा—'देवीजी! श्रीपार्श्वनाथ भगवान के विधि-चैत्य में तुम चले जाओ और वहां दक्षिणस्तम्भ में रहो।' देवी को इस प्रकार आश्वासन देकर महाराज पौषधशाला में गये। श्रेष्ठि लोहट, कुलचन्द्र, पाल्हण आदि प्रधान श्रावकों से कहा—'पार्श्वनाथ मन्दिर के दक्षिण स्तम्भ में अधिष्ठायक मूर्ति बनवादो। वहां मैंने एक देवी को स्थान दिया है।' आदेश पाते ही श्रावकों ने सब कार्य ठीक कर दिया। श्रीपूज्यजी ने प्रतिष्ठा करवादी। अधिष्ठातृ का नाम अतिबल रखा गया। श्रावकों की ओर से उसके लिये अच्छे भोग का प्रबन्ध कर दिया गया। अतिबल (नामक प्रतिष्ठित देवता) भी श्रावकों के अभीष्ट-मनोरथ की पूर्ति करने में प्रवृत्त हुआ।

वि० सं० १२२३ में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज चतुर्विध संघ से क्षमा-प्रार्थना करके अनशन विधि के साथ द्वितीय भादवा वदि चतुर्दशी के दिन इस संसार को त्याग करके देवलोक को प्रयाण कर गये।

४४. शरीर त्यागते समय महाराज ने अपने पार्श्ववर्ती लोगों से कहा था कि, 'नगर से जितनी दूर हमारा दाह संस्कार किया जायगा; नगर की आबादी उतनी ही दूर तक बढ़ेगी।' इस गुरु-वचन को याद करके उपासकगण महाराजश्री के मृतशरीर को अनेक मण्डपिकाओं से मण्डित विमान में रखकर शहर से बहुत अधिक दूर ले गये। वहां पर भूमि पर रखे हुये श्रीपूज्यजी के

विमान को देखकर तथा जगत्त्रय को आनन्ददायक गुणों का स्मरण करके प्रधान-गीतार्थ साधु गुणचन्द्र गणि शोकाश्रुपूर्ण गद्गद्वाणी से महाराजजी की स्तुति करने लगेः—

चातुर्वर्ण्यमिदं मुदा प्रयतते त्वद्रूपमालोकितुं
माहत्त्वाश्च महर्षयस्तव वचः कर्तुं सदैवोद्यताः ।
शक्रोऽपि स्वयमेव देवसहितो युष्मत्प्रभामीहते,
तत्किं श्रीजिनचन्द्रसूरिसुगुरो ! स्वर्गं प्रति प्रस्थितः ॥१॥
साहित्यं च निरर्थकं समभवन्निर्लक्षणं लक्षणं,
मन्त्रैर्मन्त्रपरैरभूयत तथा कैवल्यमेवाश्रितम् ।
कैवल्याज्जिनचन्द्रसूरिवर ! ते स्वर्गाधिरोहे हहा !
सिद्धान्तस्तु करिष्यते किमपि यत्तन्नैव जानीमहे ॥२॥
प्रामाणिकैराधुनिकैर्विधेयः, प्रमाणमार्गः स्फुटमप्रमाणः ॥
हहा ! महाकष्टमुपस्थितं ते, स्वर्गाधिरोहे जिनचन्द्रसूरे ! ॥३॥

[हे सुगुरु श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज ! चारों वर्णों के लोग सदैव आपका दर्शन करने के लिये नित्य सहर्ष प्रयत्न किया करते थे। तथैव हम साधुगण भी सर्वदा आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये प्रस्तुत रहा करते थे। फिर भी आप हम निरपराध लोगों को छोड़कर स्वर्ग पधार गये; इसका एकमात्र कारण हमारी समझ में यही आया है कि देवताओं के साथ स्वयं देवराज-इन्द्र भी बहुत समय से आपके दर्शनों की प्रतीक्षा करता था ॥१॥

आपश्री के स्वर्ग पधारने से साहित्य-शास्त्र निरर्थक हो गया; अर्थात् आप ही उसके पारगामी—मर्मज्ञ थे। वैसे ही न्यायशास्त्र लक्षण-शून्य हो गया। आपका आश्रय टूट जाने से निराधार, मंत्रशास्त्र के मन्त्र परस्पर में मन्त्रणा करते हैं कि अब हमें किसका सहारा लेना चाहिये; अर्थात् आप मन्त्रशास्त्रों के अद्वितीय ज्ञाता थे। इसी प्रकार ज्योतिष की अवान्तरभेद रमलविद्या ने आपके वियोग में वैराग्यवश मुक्ति का आश्रय लिया है। अब सिद्धान्त-शास्त्र क्या करेंगे ? इसका हमें ज्ञान नहीं है ॥ २ ॥

आधुनिक मीमांसकों के लिये मीमांसा-शास्त्र का प्रमाणमार्ग अप्रमाण स्वरूप हो गया है; क्योंकि उसका विशेषज्ञ अब इस धराधाम पर नहीं रहा। श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ! आपके स्वर्गाधिरोहण से सब शास्त्रों में हलचल मच गई है ॥ ३ ॥]

इस प्रकार गुरु-गुण-गान करते-करते गुणचन्द्र गणि अधीर हो गये। आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। इसी तरह अन्य साधुवर्ग भी गुरु-स्नेह से विह्वल होकर परस्पर में पराङ्मुख होकर अश्रुपात करने लगे। उपस्थित श्रावकवर्ग भी वस्त्रांचल से नेत्र ढांककर हिचकियाँ लेने लगे। गुणचन्द्र गणि स्वयं धैर्य धारण करके इस अप्रिय दृश्य को रोकने के लिये साधुओं को सम्बोधन करके कहने लगे—'पञ्चमहाव्रतधारी मुनिवरों! आप लोग अपनी-अपनी आत्मा को शान्ति दें। श्रीपूज्यजी ने स्वर्ग सिधारते समय मुझे आवश्यक कर्त्तव्य का निर्देश कर दिया है। जिस तरह आप लोगों के मनोरथ सिद्ध होंगे वैसा ही किया जायगा। इस समय आप मेरे पीछे-पीछे चले आवें।' इस तरह दाह-संस्कार सम्बन्धी क्रिया कलाप को सम्पादित कर सब मुनिजनों के साथ सर्वादरणीय भाण्डागारिक गुणचन्द्र गणि पौषधशाला में आ गये। कुछ दिन दिल्ली में रहने के बाद चतुर्विध संघ के साथ भाण्डारिक गुणचन्द्र गणि ब ब्बे र क की तरफ बिहार कर गये।

आचार्य जिनपतिसूरि

४५. वहां पर संघ के प्रधान पुरुषों की सम्मति लेकर बड़े गाजे-बाजे और ठाठ-बाट के साथ जिनचन्द्रसूरि के पाट पर आचार्य योग्य छत्तीस गुणों से अलंकृत, चौदह वर्ष की आयु वाले नरपति स्वामी नाम के ब्रह्मचारी को बिठाया गया। पाट पर आरूढ़ होने के पश्चात् इनका नाम परिवर्तन करके जिनपतिसूरि रखा गया। पाटारोहण सम्बन्धी सारा कार्य स्व० जिनदत्तसूरिजी महाराज के वयोवृद्ध शिष्य श्रीजयदेवाचार्य के तत्त्वावधान में सम्पन्न हुआ। जिनपतिसूरिजी का जन्म वि० सं० १२१० में वि क्र म पु र में हुआ था। उनकी दीक्षा १२१७ को फाल्गुन शुक्ला दशमी को हुई थी और वे सं० १२२३ कार्तिक सुदी १३ को पाट पर आरूढ़ हुए। इनकी दीक्षा में अनेक देश-देशान्तरों से लोग आये थे। आगन्तुकों के आतिथ्य में एक हजार १०००) रुपयों का व्यय भार श्री सेठ मानदेवजी ने उठाया था। श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज के समय में वाचनाचार्य पद को धारण करने वाले श्रीजिनभद्राचार्य को आचार्य पद देकर श्री संघ ने द्वितीय श्रेणि का आचार्य बनाया। उसी स्थान पर श्रीजिनपतिसूरिजी ने पहले पहल पद्मचन्द्र, पूर्णचन्द्र नाम के दो गृहस्थों को प्रतिबोध देकर साधु-व्रत में दीक्षित किया। तत्पश्चात् सं० १२२४ में वि क्र म पु र में गुणधर, गुणशील, पूर्णरथ, पूर्णसागर, वीरचन्द्र और वीरदेव को क्रम से तीन नन्दियों की स्थापना करके दीक्षा दी। महाराज ने जिनप्रिय मुनि को उपाध्याय पद प्रदान किया और सं० १२२५ में पु ष्क र णी नामक नगर में सपत्नीक जिनसागर, जिनाकर, जिनबन्धु, जिनपाल, जिनधर्म, जिनशिष्य, जिनमित्र को पञ्च महाव्रतधारी बनाया। महाराज ने पुनः वि क्र म पु र में आकर जिनदेवगणि को दीक्षा दी। इसके बाद सं० १२२७ में श्रीपूज्य उ च्चा न ग री में आये और वहां पर धर्मसागर, धर्मचंद्र, धर्मपाल, धर्मशील, धनशील, धर्ममित्र और इनके साथ धर्मशील की माता को

भी दीक्षित किया। जिनहित मुनि को वाचनाचार्य का पद दिया गया। वहां से महाराज मरुकोट आये, मरुकोट में शीलसागर, विनयसागर और उनकी बहिन अजितश्री को संयम व्रत दिया। सं० १२२८ में पूज्यश्री सागरपाड़ा पहुँचे। वहां पर सेनापति आम्बड तथा सेठ साढल के बनाये हुये अजितनाथ स्वामी तथा शान्तिनाथ स्वामी के मंदिरों की प्रतिष्ठा करवाई। इसी वर्ष बब्बेरक गाँव में भी विहार किया। वहां से आशिकानगरी के श्रावकों को पता लगा कि महाराज पास के गाँव में पधार गये हैं, तो आशिका के राजा भीमसिंह को साथ लेकर श्रावक वर्ग महाराज के पास पहुँचे, वन्दना-नमस्कार व्यवहार के बाद जब पूज्यश्री ने कुशल प्रश्न किया तो राजा ने स्वरूपवान और लघुवयसी आचार्य के वचनों में अत्यधिक मधुरता देखकर कुछ उपदेश सुनाने के लिये प्रार्थना की। सूरीश्वर ने राजनीति के साथ धर्म का उपदेश किया। अवसर देखकर राजा ने केलि-वश कहा—'भगवन्! हमारे नगर में एक दिगम्बर महा विद्वान् है। क्या उसके साथ आप शास्त्रार्थ करेंगे?' महाराज की सेवा में बैठे हुए जिनप्रिय उपाध्याय ने कहा—'राजन्! हमारे धर्म में चलकर किसी से विवाद करना उचित नहीं माना है। परन्तु यदि कोई अभिमानी पंडित अपना सामर्थ्य दिखलाता है और जिन-शासन की अवहेलना करता हुआ हमें व्यर्थ ही खिन्न करता है तो, हम पीछे नहीं हटते हैं। जैसे-तैसे उसका मान-मर्दन करके ही हमें शान्ति मिलती है।' राजा ने पूज्यजी की तरफ इशारा करते हुए कहा कि, 'क्या ये ठीक कहते हैं?' पूज्यश्री ने कहा, 'बिलकुल ठीक कहते हैं'। फिर उपाध्यायजी बोले—'ज्ञान की अधिकता से हमारे गुरु समर्थ ही हैं, परन्तु धार्मिक मर्यादा के अनुसार ज्ञान का अभिमान नहीं करते हुये भी अपनी शक्ति से धर्म में बाधा देने वाले प्रतिवादी को सब लोगों के सामने घमंड के पहाड़ से नीचे उतार सकते हैं।' फिर राजा ने पूछा—'आचार्यजी! आपके ये पंडितजी क्या कहते हैं?' पूज्यजी ने कहा—

ज्ञानं मददर्पहरं माद्यति यस्तेन तस्य को वैद्यः।
अमृतं यस्य विषायति तस्य चिकित्सा कथं क्रियते। १॥

[ज्ञान, अभिमान और मोह को दूर करता है, जो मनुष्य ज्ञान को पाकर भी घमन्ड करे, उसका वैद्य कोई नहीं है। जिसको अमृत भी जहर लगे, उस पुरुष की चिकित्सा किस प्रकार की जाय। अर्थात् विद्या का पहला फल विनय प्राप्ति है।]

इस प्रकार अनेक प्रकार के सदुपदेशों से राजा का हृदय खिंच गया। राजा ने कहा—'आचार्यवर! अब देर क्यों करते हैं? हमारे नगर में प्रवेश करने के लिये काफी समय लगेगा।' अधिक क्या कहें राजा तथा श्रावकों का अनुरोध मानकर महाराज आशिका को गये। भूपति भीमसिंहजी के साथ पूर्वोक्त दिल्ली प्रवेश की तरह आशिका में प्रवेश किया।

वहां पर रहते हुए किसी दिन अपने बहुत से अनुयायी साधुओं के साथ महाराज बहिर्भूमिका के लिये जा रहे थे। उस समय सामने से आते हुए महाप्रामाणिक दिगम्बराचार्य नगर द्वार के पास मिल गये। महाराज ने सुख-साता प्रश्न के बहाने उसके साथ वार्तालाप शुरू किया। उसी सिलसिले में सज्जनता के विवेचन के लिये श्लोकों की व्याख्या चल गई। किसी पद की व्याख्या में मतभेद होने के कारण विवाद जरा कुछ अधिक बढ़ गया। उस प्रसंग को सुनने के लिये उत्सुक कतिपय नागरिक पुरुष एवं राजकीय कर्मचारी भी वहां आ उपस्थित हुए। श्रीपूज्यजी का सिंहगर्जन एवं प्रमाण सहित युक्ति तथा तर्कों को देख सुनकर सभी लोग कहने लगे 'छोटे से श्वेताम्बराचार्य ने पंडितराज दिगम्बराचार्य को जीत लिया।' वहां पर उपस्थित दीदा, कक्करिऊ, काला आदि राजकीय कर्मचारियों ने राज सभा में जाकर राजा भीमसिंह के समक्ष कहा 'राजाधिराज ! आप उस दिन जिन आचार्य के सम्मुख गये थे, उन अल्प वयस्क आचार्य ने स्थानीय दिगम्बराचार्य को जीत लिया। राजा सुनकर बहुत प्रफुल्लित हुआ और बोला—'क्या यह बात सत्य है ?' वे बोले—'राजन् ! यह बात एकदम सत्य है। इसमें हँसी नही है।' राजाने पूछा, 'कहां और किस प्रकार उनका संघर्ष हुआ।' उन्होंने शहर के दरवाजे के पास जो जिस प्रकार सारी जनता के समक्ष चर्चा-वार्त्ता हुई वह सारी कह सुनाई। सुनकर राजाजी कहने लगे—'पुरुषार्थ प्राणियों के समस्त सम्पत्तियों का हेतु है। इस विषय में बड़ेपन और छोटेपन का कोई मूल्य नहीं है। मैंने उसी का कृत्य देखकर उसी दिन जान लिया था कि इनके आगे दिगम्बर हो या और कोई विद्वान् हो, ठहर नहीं सकता।' इस प्रकार राजा ने भरी सभा में जिनपतिसूरिजी की अधिकाधिक प्रशंसा की। इसी वर्ष फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन देवमन्दिर में श्रीपार्श्वनाथ प्रतिमा की स्थापना करके पूज्यश्री सागरपाट पधारे और वहां देवकुलिका की प्रतिष्ठा की।

४७. सूरीश्वरजी वहाँ से सं० १२२८ में धनपाली पहुंचे और वहाँ पर श्री संभवनाथ स्वामी की प्रतिमा की स्थापना और शिखर की प्रतिष्ठा की। सागरपाट में पंडित मणिभद्र के पट्ट पर विनयभद्र को वाचनाचार्य का पद दिया। सं० १२३० में विक्रमपुर से विहार करके स्थिरदेव, यशोधर, श्रीचन्द्र और अभयमति, आसमति, श्रीदेवी आदि साधु-साध्वियों को दीक्षा देकर संयमी बनाया। संवत् १२३२ में पुनः विक्रमपुर आकर फाल्गुन शुदी १० को भांडागारिक गुणचन्द्रगणि-स्मारक स्तूप की रचना करवा के प्रतिष्ठा की।

उपर्युक्त वर्ष में ही श्रावकों के आग्रह से देव-मंदिर को प्रतिष्ठा करवाने के लिये जिनपतिसूरि जी महाराज फिर आशिकानगरी में आये। उस समय आशिका का वैभव देखने ही योग्य था। नगरी के बाहर राजा भीमसिंह को प्रसन्न करने के लिये आने वाले अधीनवर्ती राजाओं के तम्बू

लगे हुये थे। एक ओर राजकीय फौज-पलटनों का जमघट लगा हुआ था। राजकीय महल, प्रासादादि बाग-बगीचों के मनोहर दृश्य देखने से आशिका नगरी चक्रवर्ती की राजधानी सी लगती थी। वहाँ पर पार्श्वनाथ मंदिर तथा शिखर पर चढ़ाये जाने वाले सुवर्णमय-ध्वज-कलश महोत्सव पर नाना देशों से आये हुए दर्शनार्थी यात्रियों का अधिकाधिक जमघट हो रहा था। महाराज के साथ विक्रमपुर से भी हजारों श्रावक आये थे। सूरिजी महाराज चतुर्दश विद्याओं के विशेष रूप से जानकार थे और बुद्धि में बृहस्पति के समान थे। इन महाराज का उपदेश मुनि-यतियों के मनरूपी कमल को विकसित करने में सूर्य-मण्डल के समान था।

महाराज का नगर प्रवेश बड़े समारोह के साथ किया गया। प्रवेश के समय शंख, भेरी आदि नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे। अनेक लोग आदर पूर्वक सहर्ष महाराज के दीर्घायुष्य के हेतु लंछन (वारणा) कर रहे थे। नृत्य और गायन हो रहा था। युगप्रधान गुरुओं के नामोच्चारण के साथ स्तुति-गान करने वाले गन्धर्वों को दिये जाने वाले द्रव्य से कुबेर का धनाभिमान विदीर्ण हो रहा था। वैसे ही अपने पूर्वजों के नाम को सुन-सुनकर लोगों को अत्यधिक आनन्द आरहा था। हजारों आदमी पूज्यश्री के पीछे चल रहे थे। इस प्रकार महान् सम्मान के साथ श्रीपूज्यजी का नगर प्रवेश हुआ। उस समय महाराज के साथ ८० साधु थे। सभी साधु लब्धिधारी जैसे शास्त्रार्थ में अनेक विद्वानों को हराकर धन्यवाद प्राप्त किये तथा महाराज के चरण कमलों में भ्रमरवत् अनुरक्त थे। ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया के दिन बड़े विधि-विधान के साथ पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर के शिखर पर सुवर्ण का बना हुआ ध्वजा-कलश आरोपित किया गया। उस महोत्सव के शुभ अवसर पर दुसाझ साढल श्रावक की साऊ नाम वाली पुत्री ने ५०० मोहरें देकर माला पहनी। आचार्यजी ने धर्मसागरगणि और धर्मरुचिगणि को व्रती बनाया। कन्यानयन के विधि-चैत्यालय में आषाढ़ महीने में विक्रमपुर वासी गृहस्थावस्था के सम्बन्ध से श्रीजिनपतिसूरिजी के चाचा साह मानदेवजी कारित श्रीमहावीर भगवान् की प्रतिमा स्थापित की। व्याघ्रपुर में पार्श्वदेव-गणि को दीक्षा दी। सं० १२३४ में फलवर्द्धिका (फलौदी) के विधिचैत्य में पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा स्थापित की। लोक-यात्रा आदि व्यवहार में दक्ष श्रीजिनमतगणि को उपाध्याय पद प्रदान किया। यद्यपि जिनमतगणि के लोकोत्तर असाधारण गुणों को देखकर, उन्हें आचार्य पद दिया जाता था, परन्तु अपने निज के धर्मध्यान और शास्त्र-ज्ञान के मनन में हानि की संभावना से इन्होंने आचार्य पद स्वीकार नहीं किया। आचार्य को सारे गच्छ की देख-भाल करनी पड़ती है। अतः समयाभाव के कारण धर्मध्यान और शास्त्राभ्यास होना अति कठिन है। इसी प्रकार गुणश्री नामक साध्वी को महत्तरा का पद दिया गया। वहीं पर श्रीसर्वदेवाचार्य और जयदेवी नाम की साध्वी को दीक्षा दी गई। । सं० १२३५ में महाराजश्री का चातुर्मास अजमेर

में हुआ । वहाँ पर श्रीजिनदत्तसूरिजी के पुराने स्तूप का जीर्णोद्धार करके विशाल आकार बनवाया । देवप्रभ और उसकी माता चरणमति को दीक्षा देकर शान्ति-प्रधान जैनधर्म की छत्रछाया में आश्रय दिया । अजमेर में ही सं० १२३६ में सेठ पासट के बनवाई हुई महावीर मूर्ति की स्थापना की । अम्बिका शिखर की भी प्रतिष्ठा करवाई । वहाँ से जाकर सागरपाड़े में भी अम्बिका शिखर की स्थापना की । सं० १२३७ में 'बब्बेरक' गाँव में जिनरथ को वाचनाचार्य का पद दिया । सं० १२३८ में आशिका में आये और दो मन्दिरों की प्रतिष्ठा की ।

४८. महाराज सं० १२३६ में फलवर्द्धिका (फलोदी) आये और वहां पर श्रावकों की भक्ति और महाराज का प्रभाव देखकर नट-भट-विटों की संगत में रहने वाले, वृथा अभिमानी, उपकेशगच्छीय पद्मप्रभाचार्य मत्सरवश, ईर्ष्यावश या अज्ञान से, बहुत धनी श्रावकों के घमंड से अथवा कुकर्मविपाक से महाराज के विहार किये बाद पीछे से भाटों द्वारा इस बात का प्रचार करने लगा कि पद्मप्रभाचार्य ने जिनपतिसूरि को हरा दिया ।

जिनपतिसूरिजी के भक्त श्रावकों ने जब यह मिथ्यासंवाद सुना तो उन्हें बड़ा रोष आया । वे सब मिलकर पद्मप्रभाचार्य के पास गये और बोले—'पद्मप्रभाचार्य महाशय ! आप बड़े मिथ्या भाषी हैं । आप पाप से नहीं डरते ? आपने जिनपतिसूरिजी को किस समय और कहां पराजित किया था ? झूठ-मूठ हो भाटों से अपनी विरुदावली पढ़वाते हो ?' इनका कथन सुनकर पद्मप्रभाचार्य बोले—'यदि आप लोग इस बात को मिथ्या समझते हैं, तो आप अपने गुरुजी को फिर बुला लीजिये । फिर मैं उन्हें जीतने को तैयार हूं ।' इस बात को सुनकर वे बोले—'गीदड़ होकर यदि सिंह के साथ स्पर्द्धा करना चाहते हो तो निश्चय ही मरण की इच्छा रखते हो ।' दूसरे पक्ष के श्रावक भी वहां आ गये । दोनों दलों में जिद्‌वाद होने लग गया । उन्होंने होड़ के साथ शास्त्रार्थ का क्रम निर्धारित किया । इस झगड़े का समाचार अजमेर में श्रीजिनपतिसूरिजी के पास पहुँचा । महाराज ने विपक्षी के पराजय के लिये तथा संघ की प्रसन्नता के वास्ते जिनमत उपाध्याय को वहां भेजा । संघ वालों ने विचार किया, 'पद्मप्रभाचार्य मिथ्या भाषी है, कह देगा पहले मैंने जिनपतिसूरिजी को जीत लिया था; इसलिये वे तो मेरे सामने ठहर नहीं सकते, अतएव अपने पंडित को भेजा है ।' यह निश्चय कर के जिनमत उपाध्याय को साथ लेकर सभी श्रावक महाराज के पास अजमेर गये । अजमेर में उस समय राजा पृथ्वीराज चौहान राज्य करते थे । अजमेर के राजमान्य श्रावक रामदेव ने राजमहलों में जाकर राजा से प्रार्थना की कि, 'पृथ्वीपते ! हमारे गुरु महाराज का एक श्वेताम्बर साधु के साथ शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ है । इसलिये निवेदन है कि विद्वान् मंडली मंडित आपकी सभा में वह शास्त्रार्थ हो । ऐसी हमारी कामना है । अतएव आप कृपा करें और इसके लिये मौका दें ।' शास्त्रार्थ-प्रेमी राजा पृथ्वीराज ने कहा—'इसके लिये

अभी अवसर है। सेठ रामदेव ने निवेदन किया, 'स्वामिन्! दूसरा श्वेताम्बर साधु पद्मप्रभ यहां नही है फलवर्द्धिका (फलौदी) में हैं।' विनोदी राजा ने कहा--'भाटों को भेजकर उसे मैं बुला दूंगा। तुम अपने गुरु को तैयार करो।' सेठ रामदेव ने कहा, 'राजन्! हमारे गुरु तो यहां ही हैं।' राजा ने भाटों के लड़कों को भेजकर फलौदी से पद्मप्रभाचार्य को बुलाया। इसी बीच महाराज ने दिग्विजय करने के निमित्त न रा न य न से अपनी विशाल सेना के साथ प्रस्थान किया। दिग्विजय करके वापिस लौटने पर सेठ रामदेव ने अर्ज किया कि, 'राजन, हमारे लिये क्या हुक्म दिया है।' दीनों के प्रतिपालक राजा पृथ्वीराज ने कहा, 'तुम अपने गुरुजी से कहो कि कार्त्तिक शुक्ला दशमी के दिन शास्त्रार्थ के लिये निश्चित है।' जिनपतिसूरिजी नर समूह के साथ में श्री जिनमतोपाध्याय, प० श्री स्थिरचन्द्र, वाचनाचार्य मानचन्द्र आदि मुनिवृन्द को साथ लेकर राज सभा में पहुँचे। पद्मप्रभ भी भाटों के लड़कों के साथ वहाँ आ पहुंचा। राजा ने अपने प्रधान मंत्री 'कैमास' को आज्ञा दी कि वागीश्वर, जनार्दन गौड और विद्यापति, आदि राजपंडितों के समक्ष इनका शास्त्रार्थ होने दो। मैं जरूरी काम से निवृत्त होकर आता हूँ। ऐसा कहकर राजा साहब अपने विश्रामघर की ओर चले गये।

सभा भवन में प्रधान मंत्री (कैमास) श्रीपूज्यजी की मधुर मूर्त्ति को देखकर हर्ष पूर्वक कहने लगा—'अहो! ऐसे शांत एवं गम्भीर मूर्ति महात्माओं के दर्शन से नेत्रों को अतीव आनन्द मिलता है। कई दिगम्बर ऐसे मिलते हैं जिनके देखने से नैराश्य छा जाता है और आँखों को उद्वेग होता है, दूर से ही पिशाच जैसे दिखाई देते हैं।' मंत्री का यह कथन सुनकर पूज्यश्री कहने लगे :—

पंचैतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्मचारिणाम्।
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम्॥१॥

[पंच महाव्रतों को पालने वाले चाहे जिस धर्म के अनुयायी हों, अहिंसा, सत्य, अस्तेय त्याग और ब्रह्मचर्य ये तो पवित्र ही कहे जायगें। इस कारण पंच महाव्रतधारियों की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये।]

इस प्रकार श्री जिनपतिसूरिजी व्याख्या करके कैमास को समझा रहे थे। इसी बीच में ही उनकी बात काटकर ईर्ष्यालु पद्मप्रभाचार्य प्रधानमंत्री को निम्न श्लोक सुनाने लगा :—

प्राणा न हिंस्या न पिबेच्च मद्यं वदेच्च सत्यं न हरेत्परस्वम्।
परस्य भार्या मनसा न वाञ्छे स्वर्गं यदीच्छेद् विधिवत्प्रवेष्टुम्॥

[अर्थ—किसी के प्राणों की हिंसा नहीं करनी चाहिये, मद्य नहीं पीना चाहिये, और पराई स्त्री की मन से भी वांछा नहीं करनी चाहिये। जिस पुरुष को विधि पूर्वक स्वर्ग प्रवेश की इच्छा हो, वह उपर्युक्त कार्यों को भूल चूक कर भी न करे।]

इस श्लोक को सुनकर श्रीपूज्यजी बोले—'अहा हा! कैसा बढ़िया शुद्ध उच्चारण है?' पद्मप्रभाचार्य—'आप मेरी हँसी उड़ाते हैं?' श्रीपूज्य—'महानुभाव पद्मप्रभ! इस पंचम आरे में लोगों का अधूरा ज्ञान है, किसकी हँसी की जाय, और किसकी न की जाय?' पद्मप्रभाचार्य—'तो फिर आपने यह आक्षेप कैसे किया कि कैसा शुद्ध उच्चारण है।' श्रीपूज्य—'महाशय! पंडितों की सभा में शुद्ध उच्चारण करने से मुख की शोभा ही है।' पद्मप्रभाचार्य—'क्या कोई ऐसा है जो मेरे बोलते हुए श्लोकों में अशुद्धियाँ निकाल सके।' श्रीपूज्य—'यदि ऐसा घमंड है तो उसी श्लोक को फिर बोलिये।' जनार्दन, विद्यापति आदि राजपंडितों से भी कहा, 'पंडित महानुभावों! श्रीपद्मप्रभाचार्यजी श्लोक बोलते हैं। आप लोग भी जरा सावधान होकर सुनें।' पद्मप्रभाचार्य भीतर से आगबबूला हो रहा था, उद्दण्डता के साथ श्लोक बोलने लगा। सब सदस्यों को साक्षी बनाकर श्रीपूज्यजी ने उसके श्लोक में दश अशुद्धियाँ दिखलाईं और कहा—'महापुरुष इस प्रकार बोलने से शुद्ध समझा जाता है:—

> प्राणाश्च हिंस्याश्च पिबेच्च मद्यं, वदेच्च सत्यं न हरेत्परस्वम्।
> परस्य भार्यां मनसा न वाञ्छेत्, स्वर्गं यदीच्छेद्विधिवत्प्रवेष्टुम्॥

पद्मप्रभाचार्य कुछ-कुछ लज्जित होकर फिर बोला—'आचार्यजी! आप इस वचन-चातुरी से बेचारे भोले आदमियों को ठगते हैं।' पूज्यश्री—'यदि शक्ति हो तो आप भी ऐसा करें।' मंत्री कैमास बोला—'आप लोगों ने पहले-पहल यह शुष्कवाद क्यों छेड़ा? यदि आप लोगों की शक्ति है तो आप दोनों में से एक महात्मा किसी एक विषय को लेकर उसकी स्थापना करे और दूसरा उसका खंडन करे।' श्रीपूज्य—'पद्मप्रभाचार्य! मंत्रीश्वर का कथन बहुत ठीक है। अतएव आप किसी पक्ष का आश्रय लेकर बोलिये।' वह बोला—'आचार्य! जिनशासन की आधारभूत पूछने योग्य बातें बहुत हैं, परन्तु इस समय मैं एक बात पूछता हूं कि रात्रि के समय दक्षिणावर्त आरती के परित्याग का क्या कारण है?' यह तो अनेक आचार्यों का मत है कि कुटिल को कुटिलता से ही दबाना चाहिये 'वक्रो वक्रोक्त्यैव निर्लोठ्यः' इस अभिप्राय को लेकर श्रीपूज्यजी बोले—'क्या आपके कथनानुसार बहुजन-सम्मत वस्तु को आदरणीय समझना चाहिये। यदि ऐसा है तो मिथ्यात्व का आदर क्यों नहीं करते। इसे भी अनेक आदमियों ने अपना रक्खा है।' पद्मप्रभ—'वृद्धपरम्परागत जो कुछ भी हो, उसका हम आदर करते हैं। श्रीपूज्य—'वृद्ध परम्परागत न होने पर भी चैत्यवास को आपके पूर्वजों ने क्यों अपनाया?' पद्मप्रभ—'कैसे माना जाय कि चैत्यवास वृद्धपर-

म्परागत नहीं है। श्रीपूज्य—क्या भगवान महावीर के समवसरण में या किसी जिन-मन्दिर में गणधर गौतमस्वामी के भोजन-शयन का कहीं वर्णन आया है? इसका उत्तर न आने से पद्मप्रभाचार्य लज्जित होकर बोले, 'कर्णो स्पृष्टः कटिं चालयति' कान छूने पर कटि-प्रदेश को हिलाना यह कहां का न्याय है? मैंने पूछा था कि, 'दक्षिणावर्त्तारात्रिकावतारणविधि परम्परागत है' इसका आप लोगों ने क्यों त्याग किया? इसी बीच में आप ले आये चैत्यवास के प्रसङ्ग को।' श्रीपूज्य—'मूर्ख! "वक्रे काष्ठे वक्रो वेधः क्रियते" काठ में टेढ़ा ही वेध किया जाता है। क्या यह न्याय आपको याद नहीं है? अथवा जो कुछ भी हो। अब आप सावधान होकर सुनिये।' आपने कहा—'दक्षिणावर्त रात्रिकावतारणविधि परम्परागत है, यह कैसे जाना? सिद्धान्त-ग्रन्थों में रात या दिन का विचार नहीं है। किन्तु महावीर स्वामी के बाद होने वाले बहुश्रुत विद्वानों ने अपने कल्याण के लिये इन विधियों का अनुष्ठान किया है। अब प्रश्न यह होता है कि उनसे अनुष्ठित विधि दक्षिणावर्त थी या वामावर्त? इस संशय को दूर करने के लिये किसी युक्ति का अनुसन्धान करना चाहिये। 'न शवमुष्टिन्यायः कर्त्तव्यः' जैसे मुर्दे की मुट्ठी बन्द हुए बाद खुलती ही नहीं, वैसे ही हठ करना योग्य नहीं है। जो युक्तियुक्त हो, उसे मानना चाहिये इससे विपरीत को नहीं।' इस बात को सुनकर सभी सभासद् बोले—'पद्मप्रभ! आचार्यश्री ठीक कहते हैं। तत्पश्चात् सभ्यों की सम्मति से प्रमाणपूर्वक श्रीपूज्यजी ने सभा में धाराप्रवाही, सभी के शरीर में रोमांच पैदा करने वाली, देवरूपी वाणी बोलकर वामावर्त्तारात्रिकावतरण की स्थापना की। इस प्रकरण का हम यहाँ अधिक विस्तार नहीं करेंगे। यदि विशेष देखना हो तो 'प्रद्युम्नाचार्य कृत वादस्थल' पर श्रीपूज्यजी का बनाया हुआ (वादस्थल) है, उसमें देख सकते हैं। यहाँ ग्रन्थगौरव के भय से नहीं लिखा है।

४९. अधिक क्या कहें हर्षपरवश सभा-सभ्यों ने श्रीपूज्यजी का जय जयकार किया। इसी अवसर पर राजा पृथ्वीराज भी सभा में आ गये। और राज-सिंहासन पर बैठकर पूछने लगे—(कैमास को मंडलेश्वर की उपाधि मिली हुई थी इसलिये इसको 'मंडलेश्वर' संबोधन दिया गया है) 'मंडलेश्वर! कहो कौन जीता कौन हारा?' मंडलेश्वर ने श्रीपूज्यजी की तरफ अंगुली-निर्देश करके कहा—'ये जीते।' पद्मप्रभ इस बात से चिढ़कर बोला—'राजन्! मंडलेश्वर रिश्वत लेने में प्रवीण है, गुणियों के गुण-ग्रहण करने में प्रवीण नहीं हैं। इस बात को सुनकर क्रुद्ध हुआ मंडलेश्वर बोला—'रे मूढ़ श्वेतपट! अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। ये आचार्य बैठे हैं और ये सब सभासद् उपस्थित हैं। मैंने रिश्वत ले ली है तो मैं मौन-धारण किये बैठा रहूंगा। बड़ी खुशी है यदि आप अभी भी आचार्य को जीतलें, तो मैं मान लूँगा कि पहले भी आप ही जीते।' पद्मप्रभाचार्य मंडलेश्वर कैमास की नाराजगी का ख्याल करके कुछ सहम गये और बोले—'महानुभाव! मैं यह नहीं कहता कि आपने आचार्यजी के पास से किसी तरह की रिश्वत ली है। आपके समझने में कुछ

भ्रम हो गया है। मेरा कथन यह है कि आचार्य जिनपतिसूरिजी ने अपना गला फाड़कर जबरदस्ती से समस्त आचार्यों के अभिमत 'दक्षिणावर्तारात्रिकावतारणविधि' को अमान्य ठहरा कर आपके हृदय में विपरीत विश्वास जमा दिया है।

इस कथन को सुनकर श्रीपूज्यजी बोले, 'महात्मन् पद्मप्रभ ! यह विधि सब आचार्यों को अभिमत है; आपका यह कथन सत्य नहीं है। क्योंकि हमारी आज्ञा में रहने वाले आचार्यों को यह मान्य नहीं है।' पद्मप्रभाचार्य—'क्या आप और आपके आचार्य अन्य आचार्यों से अधिक ज्ञानवान् हैं जो आप लोग उनके अभिमत अर्थ को नहीं मानते।' श्रीपूज्य०—'पद्मप्रभ ! क्या अन्य आचार्य हमारी आज्ञा में वर्त्तमान आचार्यों से विशेषज्ञ हैं जो वे हमारे आचार्यों के सम्मत वामावर्तारात्रिक विधि को नहीं मानते ?' श्रीपूज्यजी ने इत्यादि वक्रोक्तियों के द्वारा राजा पृथ्वीराज के समक्ष पद्मप्रभाचार्य को निरुत्तर कर दिया। इसके बाद पद्मप्रभाचार्य राजा को सम्बोधन करके बोला—यदि आप आज्ञा दें तो आपकी सभा में बैठे हुए सम्मानित सभ्यों का मनोरंजन करने के लिये कुछ कुतूहल दिखलाऊँ। जैसे–आकाश मंडल से उतर कर आपकी गोद में बैठी हुई अत्यन्त सुन्दर विद्याधरी को दिखला सकता हूँ। बड़े से बड़े पहाड़ को अंगुल प्रमाण में बनाकर दिखा दूंगा। हरि–हर आदि देवों को आकाश में नाचते हुए दिखला दूंगा। जिसमें बड़ी–बड़ी तरङ्गमालायें हिलोरें ले रही है, ऐसे आते हुए समुद्र के दर्शन करा दूंगा। आपकी इस नगरी को आकाश में निराधार आबाद हुई दिखला दूंगा।

इस कथन को सुनकर सभासद बोले, 'पद्मप्रभ ! आपने यदि ऐसी इन्द्रजाल–कला ही सीखी है, तो फिर आचार्यजी के साथ शास्त्रार्थ के झगड़े में क्यों पड़े ? राजाधिराज से इनाम पाने के लिये लाखों ऐन्द्रजालिक आते रहते हैं। उनके साथ आप भी अपना खेल दिखलावें।' प्रसन्नचित जिनपतिसूरिजी ने कहा—'राजपंडितों ! यह आचार्य अपने आपको समस्त कलाओं का पारंगत मानता है। इसलिये यदि आज राजसभा में आप लोगों के समक्ष इसके पर्वत समान अखर्व–गर्व को चूरचूर न किया जायगा, तो सन्निपात के रोगी की तरह इसमें वायु बहुत बढ़ जायगी; फिर इसका इलाज जरा मुश्किल हो जायगा और यह इससे भी अधिक प्रलाप करने लग जायगा।' हँसते हुए श्री आचार्यजी के मुख से ये शब्द सुनकर वह बोला, 'आचार्यजी क्या हँसते है ? यह हँसी का समय नहीं, परीक्षा का समय है। अगर शक्ति है तो सब लोगों के चित्त में चमत्कार पैदा करने वाला कोई कला–कौशल दिखलाइये; नहीं तो इस सभा से बाहर निकल जाइये।'

इसके बाद श्रीपूज्यजी ने श्रीजिनदत्तसूरिजी के नाममंत्र का स्मरण कर कहा—'पद्मप्रभ ! पहले आप अपनी आत्मशक्ति की स्फुरणा के अनुसार पूर्वोक्त इन्द्रजाल को दिखलाइये। तत्पश्चात्

जो समयोचित होगा वह हम भी करेंगे।' तमाशा देखने के लिये उत्कंठित, राजा पृथ्वीराज ने कहा—'पद्मप्रभ! लो आचार्य ने भी अनुमति देदी है, अब शीघ्रतापूर्वक स्वेच्छानुसार नाना प्रकार के कौतुक दिखलाइए।' पद्मप्रभ के पास दिखलाने को क्या धरा था, वह तो सारशून्य था। श्रीपूज्यजी के पुण्य-प्रभाव के वश आकुल—व्याकुल होकर, पद्मप्रभ बोला—'आज रात को देवी की पूजाकर, अभीष्ट देवता का आवाहन करके एकान्त चित्त से मंत्रों का ध्यान करूंगा और कल प्रातः अनेक प्रकार के इन्द्रजाल दिखलाऊंगा।' इस कथन को सुनकर तथा पद्मप्रभाचार्य की पोल को देखकर सभासदों में हँसी के फव्वारे छूटने लगे, सभी लोगों ने दुर्वाक्य कहकर उनकी हँसी उड़ाई। निर्लज्जों का शिरोमणि पद्मप्रभाचार्य श्रीपूज्यजी से बोला—'आचार्यजी? क्या हँसते हैं यदि आप भले है तो अब भी कुछ दिखलावें।' श्रीपूज्यजी हँस कर बोले—'पद्मप्रभ! बतलाओ; इन्द्रजाल किसे कहते हैं?' वह बोला—'आप ही बतलाइये?' श्रीपूज्य—'मूर्खराज! असंभव वस्तु की सत्ता के आविर्भाव को इन्द्रजाल कहते हैं। पद्मप्रभ—'कैसे?' श्रीपूज्य—'आज एक इन्द्रजाल तो तुम्हारी आँखों के सामने हुआ है।' पद्मप्रभ—'वह क्या हुआ है?' श्री पूज्यजी ने कहा—'महानुभाव! क्या तुमने यह बात स्वप्न में भी सोची थी कि बड़ी गद्दी पर बैठने वाला मैं अनेक मुकुटधारी नरपतियों से ठसाठस भरी हुई महाराजा पृथ्वीराज की सभा में जाकर हार जाऊंगा और लोगों का हास्यपात्र बनने के लिये असम्बद्ध प्रलाप करूंगा परन्तु, दैवयोग से हमारी उपस्थिति में तुम्हारे लिये यह असंभावित बात बन गई। जिस इन्द्रजाल को आप दिखलाना चाहते हैं उसमें और इसमें क्या भेद है।'

क्रूर प्रकृति वाला पद्मप्रभाचार्य उपहास की परवाह न करता हुआ राजा को लक्ष्य करके कहने लगा, 'महाराज! आपने अतुल पराक्रम से प्रतापी राजाओं को हरा—हरा कर अपने आज्ञाकारी बना लिया है। राजा लोग आपकी आज्ञा को अमृत की तरह वांछनीय मानते हैं। इस समय इस समस्त भूमण्डल के आप ही एक अद्वितीय शासक हैं और युगप्रधान हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि यह आचार्य रुपये पैसे का लोभ—लालच दे देकर भाट लोगों के मुख से अपने आपको युगप्रधान विख्यात करा रहे हैं।' राजा ने कहा—'पद्मप्रभ! युगप्रधान शब्द का क्या अर्थ?' पद्मप्रभाचार्य ने अपना मनोरथ पूरा होता हुआ समझ कर सहर्ष कहा—'राजन्! युग शब्द का अर्थ है 'काल' प्रधान शब्द का अर्थ है सर्वोत्तम अर्थात्-वर्त्तमान काल में जो सर्वोत्तम हो, उसको 'युगप्रधान' कहते हैं। अब आप ही विचारिये—युगप्रधान आप हैं या यह साधु?' इस बीच श्रीपूज्य बोले—'मूर्ख पद्मप्रभ! अनर्गल प्रलाप कर हमारे सामने ही राजा को प्रतारणा देना चाहते हो।' इसके बाद आचार्य जी! राजा को संबोधित कर कहने लगे,—'महाराज! सब प्राणियों की रुचि भिन्न—भिन्न है। किसी को कोई वस्तु प्रिय है और किसी को कोई नहीं। जो जिनको अभीष्ट हैं, उसके प्रति नाना प्रकार के हार्दिक प्रेमसूचक शब्दों का लोग प्रयोग करते

करते हैं। जिस प्रकार मंडलेश्वर कैमास एवं राज्य के प्रधान लोग आपके प्रति अनेक प्रकार के आदर सूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं। उसी प्रकार प्रिय वस्तु को लोग अनेक तरह से अभिवादन करते है इसमें कोई बुराई की बात नहीं। तथा उनके सेवक-गण भी उनके लिये इसी प्रकार के शब्द व्यवहार करते है। यह पद्मप्रभाचार्य राज-सभा में मनमानी बातें करता हुआ सब के साथ शत्रुता प्रगट करता है।' इस कथन को सुनकर राजा ने कहा-'आचार्यजी आप ठीक कहते हैं। यह तो लोकाचार है, इसमें कोई हरकत की बात नहीं। राजा के यह बात भी ध्यान मे आ गई कि पद्मप्रभाचार्य ईर्ष्यावश चुगली करता है। राजा पृथ्वीराज ने जनार्दन, विद्यापति आदि अपने राजपंडितों से कहा कि, 'आप लोग सावधान होकर परीक्षा करें कि इन दोनों में कौन महाविद्वान् हैं। इनमें जो योग्य विद्वान् हो उस को जय पत्र दिया जाय और उसका ही सत्कार किया जाय।' पंडितों ने कहा 'राजाधिराज! न्याय, व्याकरण आदि विषयों में आचार्य जिनपतिसूरिजी प्रौढ़ विद्वान हैं। इस बात की हमने परीक्षा करली है। अब आप की आज्ञा से इनके साहित्य-विषयक अनुभव की जाँच करते हैं। राज-पंडित बोले-'आप दोनों महाशय राजा पृथ्वीराज ने भादानक के नरपति को जीत लिया इस विषय को लेकर कविता कीजिये। महाराज ने क्षण-मात्र एकाग्र-चित्त होकर उक्त विषय पर निम्न कविता की:—

यस्यान्तर्बाहुगेहं बलभृतककुभः श्रीजयश्रीप्रवेशे,
दोप्रप्रासप्रहारप्रहतघटतटप्रस्तमुक्तावलीभिः ।
नूनं भादानकीयै रणभुवि करिभिः स्वस्तिकोऽपूर्यतोच्चैः,
पृथ्वीराजस्य तस्यातुलबलमहसः किं वयं वर्णयामः ॥

[अतुल बलशाली इस राजा पृथ्वीराज का हम कहाँ तक वर्णन करें। इन्होंने अपने सैन्य बल से तमाम दिशाओं को जीत लिया है। अतएव जयलक्ष्मी ने आकर इनकी भुजाओं को अपना घर बना लिया है। प्रथम ही प्रथम नवोढ़ा वधु घर में प्रवेश करती है, उस समय गृहद्वार में स्वस्तिक का निर्माण किया जाता है; वैसे ही इनकी भुजाओं में जयलक्ष्मी प्रवेश के समय रणभूमि में भदानक राजा के हाथियों ने तीखे भालों की मार से फटे हुए अपने कुम्भस्थल से निकले हुए गज-मुक्ताओं से स्वस्तिक पूर्ति की है।]

इस श्लोक को बनाकर आचार्यश्री ने इसकी व्याख्या की। देखा-देखी पद्मप्रभाचार्य ने भी पूर्वापर को बिना सोचे ही शीघ्रतया संक्षेप में एक श्लोक बनाकर सुनाया। श्रीपूज्यजी ने कहा—श्लोक तो चार चरणों का ही देखा और सुना है। पद्मप्रभाचार्य का यह विचित्र श्लोक पाँच चरणों वाला है। उसी श्लोक में सदस्य लोगों को पाँच अशुद्धियाँ दर्शाई।

ईर्षावश पद्मप्रभाचार्य ने भी कहा, 'आचार्य ने जो "यस्यान्तर्बाहु गेहम्०" श्लोक कहा है यह तात्कालिक रचना नहीं है, पहले का अभ्यास किया हुआ है। पंडितों ने कहा—'आप धैर्य धारण कीजिये; हम जानते हैं।' राजपंडितों ने कहा—'आचार्यवर ! आप कृपा करके गद्य निबन्ध में पृथ्वीराज के सभा मंडप का वर्णन करें।' श्रीपूज्यजी मन ही मन सभा वर्णन की कल्पना करके खड़िया से जमीन पर लिखने लगे। जैसे :—

"चञ्चच्चेचकमणिनिचयरुचिररचनारचितकुट्टिमोच्चरन्मरीचिप्रपञ्चखचितदिक्चक्रवालम्, सौरभभरसम्भृतलोभवशावभ्रम्यमाणझङ्कारभृतभुवनभवनाभ्यन्तरभूरिभ्रमरसम्भृतविकीर्णकुसुमसम्भारविभ्राजमानप्राङ्गणम्, महानीलश्यामलनीलपट्टचेलोल्लसदुल्लोचाञ्चलालम्बमानानिलविलोलबहलविमलमुक्ताफलमालातुलितजलपटलाविरलविगलदुज्ज्वलसलिलधारम्, दिग्विक्षिप्तवलच्चक्षुःकटाक्षलक्षविक्षेपक्षोभितकामुकपक्षामुक्तमौक्तिकाद्यनर्घपञ्चवर्णानूतनरत्नालङ्कारविसरनिःसरत्किरणनिकुरम्बचुम्बिताम्बरारब्धनिरालम्बनचित्रकर्मप्रविशत्कुसुमायुधराजधानीविलासवारविलासिनीजनम्, क्वचिच्चूताङ्कुररसास्वादमत्तकलकण्ठकलरवसमाननवगानगानकलाकुशलगायनजनप्रारब्धललितकाकलीगेयम्, क्वचिच्छुचिचरित्रचारुवचनरचनाचातुरीचञ्चुनीतिशास्त्रविचारविचक्षणसचिवचक्रचर्च्यमाणाचारानाचारविभागम्, क्वचिदासीनोद्दामप्रतिवाद्यमन्दमदभिदुरोद्यदनवद्यहृद्यसमग्रविद्यासुन्दरीचुम्ब्यमानावदातवदनारविन्दकोविदवृन्दारकवृन्दम्, उद्धतकन्धराविविधमागधवर्ण्यमानोद्धुरधैर्यशौर्यौदार्यवर्धिष्णु, सुधाधामदीधितिसाधारणयशोराशिधवलितवसुन्धराभोगनिविशमानसामन्तचक्रम्, प्रसरन्नानामणिकिरणनिकरविरचितवासवशरासनसिंहासनासीनदोर्दण्डचण्डमाडम्बरखण्डिताखण्डवैरिभूमण्डलनमन्मण्डलेश्वरपटलस्पर्धोद्भटकिरीटतटकोटिसंकटविघटितविसंकटपादविष्टरभूपालम्, अपि चोद्यानमिव पुन्नागालंकृतं श्रीफलोपशोभितं च, महाकविकाव्यमिव वर्णनीयवर्णाकीर्णं व्यञ्जितरसं च, सरोवरमिव राजहंसावतंसं पद्मोपशोभितं च, पुरन्दरपुरमिव सत्या(?)धिष्ठितं विबुधकुलसंकुलं च, गगनतलमिव लसन्मङ्गलं कविराजितं च, कान्तावदनमिव सदलङ्कारं विचित्रचित्रकं च।"

[राजा पृथ्वीराज का सभा भवन कैसा सुन्दर है। चमकती हुई सुन्दर मणियों से उसकी भीत और आँगन बनाया गया है। उन्हीं मणियों की रुचिर रचना से रचित फर्श से निकलने वाली किरणों से इसके चारों ओर की दिशायें जग मगा रही है। जिसकी सुगन्ध के लोभ से आगत भ्रमरों के गर्जन से सारे ही सभा–भवन का मध्यभाग भर गया है; ऐसे फूलों के गुच्छे सभा मंडप के आंगन में बिखरे हुए हैं। इस सभा में नीले रङ्ग का रेशमी शामियाना तना हुआ है। हवा से हिलती हुई उसके चारों ओर हुई चंचल मुक्तामालायें ऐसी मालूम होती है मानो किसी जलाशय के चारों ओर निर्मल जलधारा टपकती हों। जिसमें कामदेव की राजधानी के उपयुक्त सुन्दरी–वेश्यायें विद्यमान हैं; उनके सुन्दर कटाक्षों से कामीजनों का हृदय क्षुभित हो रहा है। वेश्याओं से धारण किये गये मोती आदि अनेक वर्ण वाले रत्नों से जटित आभूषणों से विस्फूरित रङ्ग–विरङ्गी किरणों के समूह से निरालंब ही आकाश में चित्रकारी–सी हो रही है। सभा भवन में किसी स्थान पर आम की मंजरी खाने से मस्त हुई कोयल के कलरव के समान, संगीत व कला में निपुण कलावन्त लोगों से सुन्दर गान किया जा रहा है। कहीं पर सदाचार–सम्पन्न सुन्दर वचनों की रचना–चातुरी में

प्रसिद्ध, नीतिशास्त्र के विचार में विचक्षण ऐसा मंत्रीमंडल आचार–अनाचार का विचार कर रहा है। इसी सभा में किसी स्थान पर उत्कट प्रतिवादियों को परास्त करने में समर्थ, उत्तमोत्तम समस्त विद्यायें जिनकी जिह्वा पर नृत्य कर रही है, ऐसा विद्वद्वृन्द विद्यमान है। यहाँ पर अनेक उद्धत कंधरा वाले अनेक मागध राजाओं की वीरता, गम्भीरता और उदारता का बखान कर रहे हैं। चन्द्रमा के समान श्वेत–यश के द्वारा धवल की हुई पृथ्वी को भोगने वाले, अनेक छोटे बड़े सामन्त राजा आ आकर जिसमें प्रवेश कर रहे हैं। जिसमें राजा नानावर्ण की मणियों के जड़ाव से बनाए हुए इन्द्रधनुषाकार सिंहासन पर बैठे हुए हैं। जिसने अपने बाहुबल से तमाम शत्रु–समुदाय को छिन्न–भिन्न कर दिया है, ऐसे राजा पृथ्वीराज के चरण–कमलों में अनेक राजा लोग किरीटमुकुटाच्छादित मस्तक को झुकाते हैं। जैसे बगीचा पुन्नाग और श्रीफल के वृक्षों से शोभित होता है वैसे ही यह सभाभवन हस्ति–तुल्य पुष्ट काय वाले पुरुषों से तथा लक्ष्मी के वैभव से शोभित है। जैसे यहाँ कवियों का काव्य व्याख्या करने योग्य वर्णों से पूर्ण तथा शृङ्गार, हास्य, करुण आदि रसों से युक्त रहता है, वैसे ही यह सभाभवन ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णों से युक्त है तथा अभिलाषा को व्यजित करने वाला है। जैसे सरोवर की शोभा राजहंस और कमलों से होती है वैसे ही आपके सभाभवन की शोभा राजा और पद्मा–लक्ष्मी से है। इन्द्र की नगरी अमरावती में कोई भी मिथ्याभाषी नहीं हैं तथा उसमें सदैव देवताओं की भीड़ बनी रहती है, वैसे ही इस सभा में सब सत्यवक्ता हैं और इसमें विद्वानों की भीड़ सदैव लगी रहती है। आकाश में जिस प्रकार मंगल और शुक्र नाम के ग्रह शोभा वृद्धि करते हैं वैसे ही आपकी सभा में गानादि मांगलिक कार्य तथा कवि लोग शोभा बढ़ाने के हेतु हैं। कान्ता के मुख की शोभा अच्छे–अच्छे अलङ्कारों से है, तथैव इस सभा–मंडप की शोभा भी सुन्दर सजावट से है। विविध प्रकार के चित्रों से यह चित्रित है।]

महाराज वर्णन कर ही रहे थे कि बीच में ही राज पंडित बोले, 'आचार्य ! पकते हुए अनाज के एक दाने की तरह हमने आपकी साहित्य–विषयक योग्यता पहचान ली। अब आप कृपया इस वर्णन को अन्तिम क्रिया पद देकर समाप्त कीजिये। महाराज ने अपने सभा वर्णनात्मक निबन्ध का उपसंहार करते हुए कहा—'महाराज पृथ्वीराज के ऐसे सभा मंडप को देखकर किस पुरुष का चित्र आश्चर्य–मग्न नहीं होता।'

पंडित लोगों ने विद्वत्तापूर्ण सभा वर्णन सम्बन्धी निबन्ध को सुनकर, आश्चर्य मग्न हो सिर हिलाया। पद्मप्रभाचार्य ने कहा—'पंडित महानुभावो ! यह रचना कादम्बरी, वासवदत्ता आदि काव्यों से ली हुई जान पड़ती है।' पंडितों ने जवाब दिया—'मूर्ख ! कादम्बरी आदि की कथायें हमारी अच्छी तरह से देखी हुई हैं। इसलिये आप चुप रहिए, अधिक टीका–टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे हाथों अपने मुँह पर धूल गिरवाने की कोशिश क्यों करते हो।'

५०. पंडितों ने श्रीपूज्यजी को लक्ष्य करके कहा, 'अब आप प्राकृत भाषा में द्व्यर्थक (दो अर्थ वाली) गाथा की रचना करके पृथ्वीराज महाराज के अन्तपुर और वीर योद्धाओं का वर्णन करें।' श्रीपूज्यजी ने मन ही मन मुहूर्त भर में गाथा की रचना करके इस प्रकार कह सुनाई :—

वरकरवाला कुवलयपसाहणा उल्लसंतसत्तिलया ।
सुंदरिबिंदु व्व नरिंद ! मंदिरे तुह सहंति भडा ॥

[हे राजन् ! आपके महल में सुन्दर हाथों वाली कमल के फूलों से भृङ्गारित, ललाट तट पर केशर कस्तूरी के तिलक धारण करने वाली सुन्दरियाँ विराजमान हैं और अच्छे-अच्छे खड्गधारी, भूमण्डल के अलंकार, जिनकी शक्तिरूपलता दिनों दिन बढ़ रही है ऐसे शूरवीर योद्धा आपके महल में सुन्दरियों के ललाट बिन्दु की तरह शोभायमान है ।] यह श्लोक द्व्यर्थक है ।

इस गाथा की व्याख्या आचार्यश्री बड़े ने विस्तार से की । श्रीपूज्यजी का पाँडित्य पूर्ण प्रवचन सुनकर बड़ी श्रद्धा भक्ति से उनके मुख की तरफ देखते हुए लोगों को देखकर निर्लज्ज पद्मप्रभाचार्य बोला—'आचार्य ! मेरे साथ वाद शुरु करके अब दूसरों के आगे अपने आप को भला दर्शाते हो ?' श्रीपूज्यजी ने उसी समय नन्दिनी नामक छन्द मे एक श्लोक बनाकर कहा :—

'पृथिवीनरेन्द्र ! समुपाददे रिपोरवरोधनेन सह सिन्धुरावली ।
भवतां समीपमनुतिष्ठता स्वयं न हि फल्गुचेष्टितमहो ! महात्मनाम् ॥

[हे पृथ्वीराज ! आपने शत्रुओं के पास जाकर उनको कैद करके हाथियों की कतार छीन ली । महापुरुषों का पुरुषार्थ कभी व्यर्थ नहीं जाता ।]

आचार्यश्री ने सभा के समक्ष इस नूतन श्लोक को सुनाकर पद्मप्रभाचार्य से पूछा कि यह कौन से छन्द का श्लोक है । राज पंडित बोले—इस अज्ञानी के साथ बोलने से आपको कायक्लेश के सिवा और कोई भी लाभ नहीं है । इसके बाद पंडित लोग बोले—अब खड्गबन्ध नाम के चित्र-काव्य की रचना करके दिखलावें । आचार्य ने तत्क्षण ही जमीन पर रेखाकार तलवार बनाकर दो श्लोकों से उसकी पूर्ति की :—

'ललयशःसिताम्भोज ! पूर्णसम्पूर्णविष्टप ! ।
पयोधिसमगाम्भीर्य ! धीरिमाधरिताचल ! ॥१॥

ललामविक्रमाक्रांत—परक्ष्मापालमंडल ।
लब्धप्रतिष्ठ ! भूपालावनीमव कलामल ! ॥२॥

[आपके निर्मल यशः सरोज से सारा जगत् भरा हुआ है। आप गम्भीरता में समुद्र के समान हैं और आपने धीरता में अचल (पहाड़ों) को मात कर दिया है। आपने अपने प्रशंसनीय पराक्रम से अन्य नरपतियों के समुदाय को दबा दिया है। हे राजन् ! आप सारे जगत में प्रतिष्ठा पाये हुए हैं, चतुःषष्ठिकलाओं के जानकार हैं। ऐसे आप चिरकाल तक पृथ्वी का शासन करते रहें।]

आचार्यश्री से निर्माण किये गये इस चित्र-काव्य को पढ़कर पंडित लोग बड़े प्रसन्न हुए। श्रीपूज्यजी की प्रशंसा सुनकर पद्मप्रभाचार्य मन ही मन जलभुन गया और बोला, 'पंडितवर्ग ! रिश्वत में एक हजार मुद्रा मैं भी दे सकता हूं, आप लोग मेरी भी प्रशंसा करें।' इस असत्य आक्षेप को सुनकर प्रधान मंत्री कैमास ने कहा—'रे मुंडिक ! महाराज पृथ्वीराज के सामने भी जो कुछ यद्वा तद्वा बोलता है; मालूम पड़ता है तुम कंठ पकड़वाने की फिक्र में हो।'

यह सारा दृश्य देखकर राजा बोला—'आप सभ्यों को समदृष्टि रखनी चाहिए।' कैमास आदि बोले—'राजन् ! ये महाशय गोरूप के समान हैं, यदि गाय को कुछ ज्ञान होता है, तो इन्हें भी है।' राजा ने कहा—'इस बात का परिचय तो इसकी सूरत-शकल से ही मिल रहा है। और यह भी हम जान गये हैं कि आचार्यजी विद्वान हैं। परन्तु न्यायमयी हमारी सभा में किसी को पक्षपात आदि के विषय में कुछ कहने का अवसर न मिले, इस कारण सब विषयों में पद्मप्रभाचार्य की भी परीक्षा करनी योग्य है।।' पंडितों ने कहा—'कृपानाथ ! पद्मप्रभाचार्य को कविता करने का ज्ञान नहीं है। आचार्यरचित श्लोकों में यह छन्द ही नहीं पहचानता। आचार्यश्री ने तर्क और दलीलों से (वामावर्त्त आरात्रिक अवतारण) को सिद्ध कर दिया। उसके मुकाबले में यह कोई जवाब ही नहीं दे सका। अतः यह तर्कशास्त्र को बिलकुल ही नहीं जानता है। इसे तो केवल विरुद्ध बोलना आता है। खैर, जो कुछ भी हो, आप श्रीमान् की आज्ञा से विशेष रूप से समान बर्ताव करेंगे।' राजपंडित बोले—'आचार्यजी ! और पं० पद्मप्रभाचार्यजी आप दोनों निम्नलिखित समस्याओं की पूर्त्ति करो :—

"चकर्त दन्तद्वयमर्जुनः शरैः, क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः," श्रीपूज्यजीने क्षण भर में सोच कर कहा :—

'चकर्त दन्तद्वयमर्जुनः शरैः, क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः।
भूपालसन्दोहनिषेवितक्रम ! क्षोणीपते ! केन किमत्र संगतम् ॥

[अर्जुन ने बाणों से दोनों दन्तों को काट डाला। उसने क्रम से इसको यह नारद है ऐसा जाना। नरेन्द्र मंडल से सेवित चरण वाले पृथ्वीराज ! इन दोनों समस्याओं में किसके साथ किसका सम्बन्ध है।]

इसके उत्तर में सभ्य लोगों ने कहा-'आचार्यजी ! ऐसी समस्याओं की पूर्ति से कोई फायदा नहीं। इसकी परस्पर में कोई संगति नहीं है, यह उत्तर पाने के लिए ही हमने आप से पूछा था, और आपने वैसा ही जवाब दिया है। सरल काव्य रचना की अपेक्षा समस्या-पूर्ति में यही तो कठिनता है कि उसके असंगति दोष को हटाकर उसे संगत बनाना पड़ता है।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'पंडित महानुभावो ! इस प्रकार भी तो समस्या पूर्ति होती है। देखिये, एक समय राजा भोज की सभा में किसी बाहर से आये हुए पंडित ने समस्या पूर्ति के लिये निम्नलिखित तीन चरण कहे—"सा ते भवतु सुप्रीताऽवद्य चित्रकनागरैः। आकाशे न बका यान्ति" । उसी समय सभा में स्थित राजकीय पंडित ने "देव किं केन संगतम्" यह चतुर्थ चरण कह कर पूर्ति कर दी।' आचार्य का यह कथन सुनकर राजपंडितों ने कहा—'हाँ इस तरह भी समस्या पूरी हो जाती है। यदि समस्या-पूरक पद्मप्रभाचार्य सदृश कोई हो तो। परन्तु काव्य-रचना की शक्ति रखने वाले आप सरीखों के लिये इस प्रकार की सामान्य समस्यापूर्ति शोभाजनक नहीं है। तत्पश्चात् पूज्यश्री ने क्षण भर गम्भीरतापूर्वक विचार कर इस प्रकार पदों की योजना की:—

चकर्त दन्तद्वयमर्जुनः शरैः, कीर्त्या भवान् यः करिणो रणाङ्गणे।
दिदृक्षया यान्तमिलास्थितो हरिः, क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः ॥

[रणाङ्गण में अर्जुन ने अपने तीखे बाणों से हाथी के दोनों दन्त काटे। हे राजन् ! आपने अपनी धवल कीर्ति से रणाङ्गण में हाथी के दन्तों को मात कर दिया। अर्थात्—शत्रुओं को हराने से होने वाली आपकी कीर्ति हाथी दन्त से भी अधिक उज्ज्वल है। पृथ्वी पर स्थित श्रीकृष्ण ने आकाशमार्ग होकर आने वाले देवर्षि नारद को एकाएक नहीं, क्रम-क्रम से जाना कि ये नारद हैं।]

इसकी व्याख्या सुनकर आश्चर्यरस में सराबोर हुए राजपंडितों ने कहा—'आचार्य ! भगवती सरस्वती की आप पर बड़ी भारी कृपा है। आप जिस विषय को लेते हैं, उसी में भगवती आपकी सहायता करती है।' पास में बैठे हुए जिनमतोपाध्याय ने कहा—'पंडित महोदय ! आचार्यजी के

विषय में आप लोगों का यह कथन अवश्य: सत्य है। इन पर यदि वागूदेवी प्रसन्न न होती, तो सरस्वती के पुत्र स्वरूप आप विद्वानों से इनकी मुलाकात कैसे होती ?'

पंडितों ने पद्मप्रभाचार्य से कहा—'महाशय ! आपभी कुछ कहिए।' वह बोला,आप एक क्षण ठहरिये मैं कुछ सोच रहा हूँ। उन्होंने मखौल उड़ाते हुए कहा—"छः मास तक सोचते रहिये।" सर्व पंडितों ने एक राय होकर कहा—'सर्वप्रधान मंडलेश्वर कैमासजी ! आपने आज तक श्रीजिनपति-सूरि आचार्य के समान कोई विद्वान् देखा !' वह बोला, 'आज तक नहीं देखा।' इसी समय राजा ने अपने सामने तबेले में बँधे हुए घोड़ों की तरफ अंगुली निर्देश करते हुए कहा—आचार्यश्री इधर देखिये, 'ये हमारे घोड़े किस प्रकार उछल रहे हैं; इनका वर्णन करिये।'

आचार्य ने कुछ देर सोचकर कहा–राजन् ! सुनिये—

'ऊध्दूर्वस्थितश्रोत्रवरोत्तमाङ्गा जेतुं हरेरश्वमिवोद्धुराङ्गाः।
समुत्प्लवन्ते जवनास्तुरङ्गास्तवावनीनाथ ! यथा कुरङ्गाः ॥१॥

[हे पृथ्वीपते ! आपके ये तेज घोड़े हरिणों की तरह आकाश की ओर उछल रहे हैं। इनके कान खड़े हैं और मस्तक ऊँचे हैं। मालूम होता है ये ऊँचे होकर सूरज के घोड़ों को जीतना चाहते हैं।]

इस अर्थ के सुनने से प्रसन्न हुए राजा को देखकर पंडित लोग बोले, 'आचार्य ! उदयगिरि नाम के हाथी पर चढ़े हुए महाराज पृथ्वीराज किस प्रकार शोभते हैं ? इसका वर्णन करो।' पूज्यश्री ने मन ही मन कल्पना करके इस तरह वर्णन किया :—

विस्फूर्जद्दन्तकान्तं लसदुरुकटकं विस्फुरद्धातुचित्रं
पादैर्विभ्राजमानं गरिमभृतमलं शोभितं पुष्करेण।
पृथ्वीराजक्षितीशोदयगिरिमभिविन्यस्तपादो विभासि,
त्वं भास्वान् ध्वस्तदोषः प्रबलतरकराक्रान्तपृथ्वीभृदुच्चैः॥

[हे पृथ्वीराज भूपति ! आप जब अपने उदयगिरि नाम के हाथी पर आरूढ़ होते हैं, तब आपकी शोभा उदयाचल पर स्थित सूर्य के समान हो जाती है। आपके हाथी के दन्त आपके आरोहण हेतु चमकते हैं, उदयाचल के शिखर भी सूर्य की किरणों से चमकीले हैं। हाथी के दन्तों में सुवर्णमय कड़े सोहते हैं और पर्वत का मध्यभाग सुहावना है। हाथी–उसके शरीर पर की हुई चित्रों की सजावट से सुन्दर है और उदयगिरि मेरू आदि रंग–बिरंगे खनिज पदार्थों से मनोहर लगता है।

यह चार चरणों से अच्छा लगता है और वह आस पास के छोटे पहाड़ों से। दोनों ही गुरुता (भारीपन) को लिये हुए हैं। पर्वत कमल और जलाशयों से सुन्दर है और गजेन्द्र शुण्डादण्ड से। हे राजन्! आप देदीप्यमान और निर्दोष हैं। सूर्य चमकीला और रात्रि को मिटाने वाला है। आपने अपने प्रबल भुज-दंडों से बड़े-बड़े राजाओं को दबा दिया हैं, और सूर्य ने अपनी किरणें बड़े ऊँचे-ऊँचे पर्वतों पर पहुँचा दी हैं। (यह श्लोक दो अर्थ वाला है। सूर्य, राजा और पर्वत, हाथी इनकी समता इसमें समान विशेषणों से बतलाई गयी है।)]

इस श्लोक के अर्थ को सुनकर राजा साहब अत्यन्त प्रसन्न हुए। राजपंडितों ने कहा—'नृपते! चारों दिशाओं में, सैकड़ों कोश के मंडल में अपने विद्याबल से राजाओं से स्वर्ण पट्ट पाये हुए जो विद्वान हैं उन सबसे व्याकरण, धर्मशास्त्र, साहित्य, तर्क, सिद्धान्त और लोकव्यवहार को जानने में यह आचार्य अधिक हैं। अधिक क्या कहें, ऐसी कोई विद्या बाकी रही हुई नहीं है, जो इनके मुखकमल में आकर न विराज गयी हो।'

असहनशील, निर्लज्ज पद्मप्रभाचार्य अपने करने की समस्या पूर्ति को बिना किये ही मौका देकर श्रीपूज्यजी की समालोचना करनी शुरू की, 'राजन्! कलहशील, झगड़ालू कई एक मनुष्यों के पास विद्या का न होना ही भला है, क्योंकि ऐसे लोग विद्याबल से निरन्तर लोगों के साथ कलह किया करते हैं, और लोगों के आगे बुरा आदर्श खड़ा करते है। देखिये लिखा है:—

'विद्या विवादाय धनं मदाय, प्रज्ञाप्रकर्षापरवञ्चनाय।
अभ्युन्नतिर्लोकपराभवाय, येषां प्रकाशे तिमिराय तेषाम्॥

[जिन पुरुषों की विद्या विवाद (झगड़ा) करने के लिये है और धन गर्व (घमंड) पैदा करने के लिये है। बुद्धि की अधिकता दूसरों को ठगने के लिये है और उन्नति लोगों का तिरस्कार करने के वास्ते है। उनके लिये प्रकाश भी अन्धकार के समान है। ऐसा कहना कोई अत्युक्ति नही है।]

श्रीपूज्यजी ने कहा—'भद्र पद्मप्रभ! यदि आप नाराज न हों तो हम एक हित की बात कहें।' उसने कहा, कहिये। आचार्य बोले—इस प्रकार अशुद्ध श्लोक का उच्चारण करते हुए आप जैसे एक भी पंचमहाव्रतधारी साधु को देखकर मिथ्यात्वी लोग समझेंगे कि इन श्वेताम्बर साधुओं को शुद्ध श्लोक तक बोलना नहीं आता और तो क्या जान सकेंगे। इसलिये लोकोपहास से बचने के लिये आज पीछे 'प्रज्ञाप्रकर्षः परवञ्चनाय येषां प्रकाशस्तिमिराय तेषाम्' इस प्रकार बोला कीजिये।

इस प्रसंग में आपने जो (विद्या विवादाय) श्लोक कहा वह सर्वथा प्रसङ्ग विरुद्ध है, क्योंकि हमने तुमसे नहीं कहा था कि तुम हमारे साथ वाद—शास्त्रार्थ करो। तुम ने ही फलौदी में हमारे भक्त श्रावकों के आगे कहा था कि, 'तुम्हारे गुरु को यहाँ ले आओ, मैं उनको हराने में समर्थ हूं।' अपना कन्धा हिलाता हुआ पद्मप्रभाचार्य बोला—'हां, मैंने कहा था। श्रीपूज्यजी—'किसकी शक्ति के भरोसे पर?' पद्मप्रभ—'मेरी अपनी निजी शक्ति के भरोसे पर।' श्रीपूज्यजी,—'अब वह तुम्हारी शक्ति कहां चली गई, क्या कौओं ने चरली?' पद्मप्रभ—'मेरी भुजाओं के बीच विद्यमान है, परन्तु बिना अवसर प्रकाशित नहीं की जाती।' श्रीपूज्यजी–'उसके प्रकाशित करने का अवसर कब आयगा।' पद्मप्रभ—'अभी ही है' श्रीपूज्यजी–'तो फिर देरी क्यों करते हो।' पद्मप्रभ–'राजा साहब की आज्ञा लेकर अपनी शक्ति का परिचय दूंगा।' श्रीपूज्यजी—'शीघ्रता कीजिये।' इसके बाद पद्मप्रभाचार्य अपने मन में सोचने लगा–'इस आचार्य ने शारीरिक प्रभाव से, वचन चातुरी से, विद्या बल से, और वशीकरण मंत्र के प्रयोग से यहाँ पर उपस्थित सभी राजा और राजपुरुषों को अपने अनुरागी भक्त बना लिये हैं। व्यवहार की अनभिज्ञता से मैंने अपने भक्तों के मुख पर भी कालिमा लगादी। क्या करें? कोई भी उपाय फल नहीं देता। अस्तु, तथापि "पुरुषेण सता पुरुषाकारो न मोक्तव्यः" अर्थात्—कुछ भी हो किन्तु पुरुष को पुरुषार्थ नहीं छोड़ना चाहिये। इस कहावत के अनुसार अब भी जैसे तैसे हिम्मत करके इस आचार्य के साथ समता-बराबरी प्राप्त करना योग्य है। तभी इस देश में रहना हो सकेगा। अन्यथा लोगों से होने वाले उपहास एवं अनादर को हम नहीं सह सकेंगे। इस दुःख से हमें और हमारे श्रावकों को यह देश ही त्यागना पड़ेगा।' इस प्रकार गहराई के साथ खूब सोचकर वह राजा से कहने लगा–'महाराज! मैंने छत्तीस प्रकार की शस्त्र विद्या और मल्लविद्या में परिश्रम तथा अभ्यास किया है। इसलिये इस आचार्य को मेरे साथ कुस्ती लड़ाइये?' राजा पृथ्वीराज जैन–साधुओं के आचार व्यवहार से अनभिज्ञ था और कुस्ती का कौतुक देखने की इच्छा थी, इसलिये श्रीपूज्यजी की ओर इस अभिप्राय से देखने लगा कि ये भी कुस्ती के लिये तैयार हो जायें। श्रीपूज्यजी ने आकृति और चेष्टाओं से राजा का अभिप्राय जानकर कहा—'राजन्! बाहुयुद्ध आदि क्रीडायें हाथियों की है। वे अपने शुण्डा–दण्ड से बल की आजमाईश किया करते हैं। एक दूसरे के गले चिपट कर झगड़ना बालकों के लिये शोभादायक है, बड़ों के लिये नहीं। शस्त्र लेकर परस्पर में लड़ते हुए राजपूत ही अच्छे लगा करते हैं। इस कार्य को यदि बनिये करें तो उनकी शोभा नहीं होती। दन्त–कलह करना वेस्याओं का काम है न कि राजरानियों का। तब आप ही बतलाइये, पद्मप्रभाचार्य का यह युद्ध निमन्त्रण कैसे स्वीकार करें? यह हमारा काम ही नहीं है। पंडित लोग तो अपने-अपने शास्त्रज्ञान के अनुसार उत्तर-प्रत्युत्तर देते हुए ही अच्छे लगा करते हैं।'

आचार्यश्री के इस कथन के मध्य में ही राजपंडितों ने भी राजा से कहा कि—'महाराजाधिराज ! हम लोग पंडिताई के गुण से ही आपश्री के पास से जीविका पाते है। मल्लविद्या से हमें कुछ नहीं मिलता है। कदाचित् आप हमें मल्लयुद्ध में प्रवृत्त होने की आज्ञा दें तो हम उस आज्ञा का पालन करने में असमर्थ हैं।' श्रीपूज्य बोले—'पद्मप्रभ ! इस सभा में अपने मुँह ऐसी बात करते हुए तुम्हे जरा भी शर्म नहीं आती।' वे फिर राजा से बोले—

'राजन् ! यदि इसकी शक्ति हो तो यह हमारे साथ प्राकृतभाषा, संस्कृतभाषा, मागधीभाषा, पिशाचभाषा, शूरसेनीभाषा, अपभ्रंशभाषा, आदि भाषाओं में गद्य-पद्य रचना करे। अथवा व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, रस, नाटक, तर्क, ज्योतिष और सिद्धान्त ग्रन्थों में विचार करे। यदि हम पीछे हटें तो, यह जैसा कहे वैसा करने को तैयार हैं। परन्तु यह हमारे हाथ से लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्ध मल्लयुद्धादि कार्य करवाना चाहता है। इस कार्य को हम किसी भी तरह करने को तैयार नहीं है और इसके न करने से हमारा कोई हलकापन भी न समझा जायगा। इसी तरह कल कोई किसान कहे कि—अगर आप पंडित है, तो हमारे साथ हल चलाइये। क्या हम उसका कहना मान लेंगे ? और यदि हम उसके कथनानुसार उस कार्य को नहीं करें तो, क्या हमारी पंडिताई चली जायगी ? यदि यह हमको जीतना चाहता है तो कूटश्लोक, प्रश्नोत्तर, गुप्तक्रिया और कारक आदि जो इसके मन में आवे सो पूछे। अथवा यह अपनी मर्जी के अनुसार किसी भी सांकेतिक लिपि में कोई श्लोक लिखे, यदि हम इसके हृदय में स्थितछन्द को न बतादें तो हमें हारा हुआ समझो। किन्तु शर्त यह रहे कि यह उस छन्द को पहले ही सभ्य पुरुष को बतलादे, जिससे कि फिर यह अपनी बातों को बदल न सके। अथवा यह किसी छन्द के केवल स्वर या केवल व्यञ्जनों को ही लिखदे; हम यदि इसके हृदय में स्थित श्लोक को न बतादें तो हम हार गये। एक बार सुने हुए श्लोक या श्लोकाक्षरों को आनुपूर्विक यह लिखकर बतावे, या हम बताते हैं और वर्तमान समय में प्रचलित बाँसुरी से गाई जाने वाली राग-रागिनियों का नाम परिचय देते हुये तात्कालिक गायन स्वरूप कविता द्वारा अन्य किसी से बनाये हुए कोष्ठक की पूर्ति यह करके दिखलावे या हम करके दिखलाते हैं।

आचार्य के इस कथन को सुनकर राजा ने कहा—'आचार्यजी ! आप सब राग-रागिनियों को पहचानते हैं ?' पूज्यजी ने कहा—'महाराजाधिराज ! यदि किसी पंडित के साथ शास्त्रार्थ हो तो बात करें। इस अज्ञानी मनुष्य के साथ विवाद करने से तो केवल अपना कंठशोषण करना है।' इसके उत्तर में राजा ने कहा—'आचार्य ! आपको चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं। आपकी बताई हुई कोष्ठक पूर्ति सम्बन्धी कला को आप दिखलावें जिससे हमारी उत्कंठा पूरी हो।' पूज्यश्री बोले—'हाँ, मल्लयुद्धादिक बिना इस प्रकार की आज्ञा से हमें भी हार्दिक संतोष मिलता

है। राजाज्ञा से सभा में उसी समय तत्काल बनाई हुई नई बांसुरी बजाई गई; उस में से निकलती हुई नई-नई राग-रागिनियों का आचार्य ने परिचय दिया और तत्काल ही राजा पृथ्वीराज के न्याय-प्रियता आदि गुण वर्णन स्वरूप श्लोकों की रचना करके सर्वाधिकारी कैमास से निर्दिष्ट कोठों की पूर्ति की। सूरिजी महाराज की सर्व तंत्रों में स्वतंत्र प्रतिभा को देखकर उस सभा में ऐसा कौन मनुष्य था जिसके मन रूपी कमल पर आश्चर्य लक्ष्मी ने अधिकार न जमा लिया हो? अतीव प्रसन्न होकर राजा पृथ्वीराज ने कहा—'आचार्य! आप जीत गये हैं। हम आप के विजय की मुक्त-कंठ से घोषणा करते हैं। अब आपके जीतने के बारे में किसी के भी मन में किसी भी प्रकार का संकल्प-विकल्प नहीं रह गया है। मैंने अपने धर्म के प्रभाव से हजारों प्रदेशों पर प्रभुता प्राप्त की है और सत्तर हजार घोड़ों पर मेरा आधिपत्य है। मैं समझता हूं कोई भी प्रतिपक्षी मेरे समान दर्जे को अभी तक प्राप्त नहीं कर सका है। परन्तु इसी देश में-जिसमें मैं हूं-आपको मैं समान श्रेणी का मानता हूं। क्योंकि आपने भी समस्त देशों के धर्माचार्यों को जीतकर उन पर आधिपत्य-प्रभुता प्राप्त की है। आचार्य महोदय! आज तक हमें ऐसा मालूम नहीं था कि आप इस प्रकार के रत्न हैं। इसलिये जानमें या अनजान में जो हमने आपके प्रति अनुचित व्यवहार किया हो, उसे आप क्षमा करें।' इस प्रकार कहते हुये नरपति ने आचार्यश्री के आगे क्षमा प्रार्थना के लिये दोनों हाथ जोड़े। बदले में श्रीपूज्यजी ने हर्षवश होकर निम्न श्लोक से आशीर्वाद दिया और राजा की भूरि-भूरि प्रशंसा की:—

> बम्भ्रम्यन्ते तवैतास्त्रिभुवनभवनाऽभ्यन्तरं कीर्तिकान्ताः,
> स्फूर्जत्सौन्दर्यवर्या जितसुरललना योषितः संघटन्ते।
> प्राज्यं राज्यं प्रधानप्रणमद्वनिपं प्राप्यते यत्प्रभावात्,
> पृथ्वीराज! क्षणेन क्षितिप! स तनुतां धर्मलाभः श्रियं ते॥

[हे पृथ्वीराज नृपते! जिस धर्मलाभ के प्रभाव से तेरी कीर्ति त्रिलोकी में फैल गई है और जिस धर्म के प्रभाव से ही सौन्दर्य गुण वाली, देवांगनाओं को मात करने वाली सुन्दरी स्त्रियाँ तुझे मिल रही हैं और जिस धर्म के ही प्रताप से प्रधान-प्रधान राजाओं को जीत कर तुझे यह विशाल राज्य मिला है, वह धर्मलाभ तेरी राज्य लक्ष्मी को दिनों दिन बढ़ावे।]

राजा और आचार्य दोनों में इस प्रकार का शिष्टाचार देखकर पद्मप्रभाचार्य डाह से कहने लगा, 'महाराज! इस सभा में अब तक केवल आप ही समदर्शी थे, अब आप भी अपने मंत्री आदि परिवार की देखा-देखी आचार्य की तरफदारी करने लग गये हैं।

राजा ने कहा—'पद्मप्रभाचार्य ! आप हमारे हाथ से क्या करवाना चाहते हैं ? अगर आपमें कोई पांडित्य कला है तो आप आचार्य के साथ बोलिए, हम न्याय करेंगे। अगर कुछ नहीं जानते हैं तो उठिये अपने घर जाइये।'

वह बोला—'राजन् ! न्यायाधीश पृथ्वीराज राजा की राजसभा में यदि कोई कला-कौशल का अभिमान रखता है तो वह मेरे साथ आवे। इस प्रकार रण-निमंत्रण देता हुआ मैं सब के ऊपर ऊँचा हाथ उठाऊंगा। इसी अभिप्राय से मैंने लाठी चलाने के छत्तीस भेद सीखे हैं। इसलिये मैं कहता हूँ कि बड़ी परिश्रम से सीखी हुई मेरी यह कला आपकी सभा में भी यदि सफल न होगी तो फिर कहाँ होगी।'

५१. इस अवसर पर महाराज पृथ्वीराज का कृपापात्र मंडलेश्वर कैमास का समकक्ष, और श्रीजिनपतिसूरिजी का अनन्यभक्त सेठ रामदेव बोला कि—'स्वामिन् ! कृपया मेरी एक बात सुनें—मेरे जन्म समय में पिताजी को ज्योतिषियों ने कहा था कि सेठ वीरपाल ! आपके पुत्र की जन्मपत्री से जाना जाता है कि तुम्हारा पुत्र राजमान्य और दानी होगा। ज्योतिषियों के इस वचन में विश्वास करके पिताजी ने एक विश्वासी पंडित के द्वारा बाल्यकाल से ही मुझे बहत्तर कलाओं का अभ्यास करवाया है। उनमें से ओर-ओर बहुत-सी कलाओं का परिणाम (नतीजा) मैंने देख लिया है। मेरे पिताजी का यह आशय था कि राजसभा में अनेक प्रकार के पुरुष आया करते हैं, कोई किसी बात में मेरे पुत्र का अनादर न कर सके ? आपकी कृपा से आज तक आपकी सभा में मेरी ओर किसी ने वक्र दृष्टि से नहीं देखा है। इसलिये बाहुयुद्ध कला का मौका कभी नहीं आया है। आज यह मानो मेरे पुण्य बल से खिंचा हुआ ही आपकी सभा में पद्मप्रभाचार्य आ गया है। इसलिये यदि आप की आज्ञा हो और पद्मप्रभाचार्य को यह बात स्वीकार हो तो, सीखी हुई बाहुयुद्ध कला का फल भी देख लिया जावे।' द्वन्द्व-युद्ध प्रिय राजा ने कहा—'इसमें क्या हर्ज है, सेठ आप शीघ्रता से तैयार हो जाओ। पद्मप्रभाचार्य जी ! आप भी उठें, अपनी अभ्यस्त कला का फल प्राप्त करें।' राजा के आदेश को पाकर दोनों ने लँगोट लगाये। गुत्थम-गुत्थी होकर अपने-अपने बल की जांच करने लगे। थोड़ी देर बाद सेठ रामदेव ने पद्मप्रभाचार्य को पछाड़ दिया। राजा पृथ्वीराज ने रामदेव सेठ को संबोधित करते हुये व्यङ्ग्यवचनों में कहा—'सेठ ! सेठ !! इसके कान लम्बे हैं, तोड़ना मत।' हास्य में कहे गये इस निषेध को एक प्रकार की आज्ञा मान कर सेठ रामदेव ने उसके कान को हाथ से पकड़ कर श्रीपूज्यजी की तरफ देखा। श्रीपूज्यजी ने कहा—'इस कार्य से जिन-शासन की निन्दा होती है, इसलिये ऐसा मत करो।' इस काण्ड को लेकर लोगों में काफी हलचल मच गई। कोई कहने लगा—'मैंने यह पहले ही कह दिया था कि सेठ जीतेगा।' दूसरा बोला, 'पद्मप्रभाचार्य ने छत्तीस दण्ड कलाओं का अभ्यास किया

है और सेठजी ने इस से दूनी कलायें सीखी है।' इस प्रकार इकट्ठी हुई भीड़ में से लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार बातें बनाने लगे।

राजा के हुक्म से रामदेव सेठ पद्मप्रभाचार्य को छोड़कर अलग हो गया, वह भी उठ खड़ा हुआ और अपने कपड़ों की धूल झाड़ने लगा। इस अवसर पर राजा का इशारा पाकर, राजकीय पुरुषों ने गला पकड़कर उसे धक्का दिया। उस बेचारे का एक पेड़ी से दुसरी पेड़ी पर गिरने से सिर फूट गया। पेड़ियों के पास जमीन पर गिरने से वह क्षण मात्र के लिये मूर्च्छित हो गया। वहाँ खड़े हुए किसी मनुष्य ने उसके लात मारी। महाराज श्रीजिनपतिसूरिजी से यह अनौचित्य नहीं देखा गया। इस कार्य को उन्होंने जिनशासन की निन्दा करवाने वाला समझा। महाराज ने दया के परिणाम से अपने निज के भक्त श्रावक कृष्णदेव से उसको प्रच्छादिका दिलाई और वहीं एकत्रित हुए जन-समूह में से किसी एक मनुष्य ने हाथ का सहारा देकर उसे बैठा किया। वही मनुष्य दूसरे हाथ से उसके शरीर पर यह कहता हुआ थपकियाँ देने लगा कि हमारा ठाकुर शास्त्रार्थ में जीत गया। वहां खड़े हुए हजारों आदमियों में से कतिपय धूर्तों ने बेचारे पद्मप्रभाचार्य के ठोकरें लगाकर धवलगृह नाम के राजमहल से उसे बाहर निकाल दिया।

श्रीपूज्यजी ने श्वेत-वस्त्र-खण्ड पर किसी सिद्धहस्त चित्रकार के हाथ से श्लोकाकार प्रधान छत्रबंध की रचना कर राजा को दिया। राजा ने बड़े चाव से उस छत्रबंध श्लोक को पढ़ा:—

पृथ्वीराय ! पृथुप्रतापतपन प्रत्यर्थिपृथ्वीभुजां,
का स्पर्धा भवताऽपराद्ध्य(र्च्य)महसा सार्धं प्रजारञ्जने।
येनाऽऽजौ हरिणेव खड्गलतिकासंपृक्तिमत्पाणिना,
दुर्वाराऽपि विदारिता करिघटा भादानकोर्वीपतेः॥

[हे पृथ्वीराज ! आपका प्रताप सूर्य के समान है। आपका पराक्रम प्रशंसनीय है। आप प्रजा का रंजन करने वाले हैं। शत्रु पक्ष के राजा क्या आपकी बराबरी कर सकते हैं। आपने हाथ में तलवार लेकर संग्राम में सिंह की तरह भादानक नाम के राजा के दुर्जय हाथियों की कतार को छिन्न-भिन्न कर दिया।]

यह छत्रबंध वृत्त पढ़ा, पंडितों ने दो प्रकार से उसका व्याख्यान किया। उसी चित्रपट में चित्रित दो राजहंसिओं के ऊपर लिखि हुई ये दो गाथायें भी राजा ने पढ़ी—

कयमलिणपक्खसंगहमसुद्धवयणं मलीमसकमं व।
माणसरहियं पिअवरं परिहरियं रायहंसकुलं॥

परिसुद्धोभयपक्खं रत्तपयं रायहंसमणुसरइ ।
तं पुहविरायरणसरसि जयसिरी रायहंसि व्व ॥

[हे राजन् पृथ्वीराज ! जिन्होंने मलिन-दुराचारी-पात्रों को एकत्रित कर रक्खा है (नृप)। पक्षान्तर में जिनकी पाँखें मलिन हैं (हंस), जिनका कार्यक्रम दोषपूर्ण है (नृप), जिसकी वाणी शुद्ध नहीं है (हंस), जो मानी-घमंडी है (नृप), कीचड़ से जिसके पंजे मैले हैं (हंस), गुमानी घमंडी मनुष्य ही जिनको प्रिय हैं। ऐसे राज समुदाय को तथा जिसको मानस नाम सरोवर प्रिय है। जिसके मातृ-पितृ पक्ष शुद्ध है (नृप) तथा राजपक्षियों के झुण्ड को छोड़कर जिसकी दोनों पांखें अच्छी हैं, जिसके चरण लाल हैं। ऐसे राजाओं में हंस के समान श्रेष्ठ आपका रण-रूपी सरोवर में राजहंसों की तरह जयलक्ष्मी अनुगमन करती है।]

इन दोनों गाथाओं की श्रीपूज्यजी ने बड़े विस्तार से व्याख्या की। गाथाओं के अर्थ को सुनकर प्रसन्न हो राजा मन ही मन विचारने लगा कि इन आचार्यश्री का कोई अभीष्ट सिद्ध करूँ। राजा ने कहा—'आचार्य महाराज ! आपको मेरी अथवा आपके गुरु की शपथ है, आप मेरे से कुछ वाञ्छित पदार्थ की याचना अवश्य करें। जिस देश अथवा नगर में आपका मन प्रसन्न रहता हो, उसी का पट्टा आप मुझसे ले लीजिये।' श्रीपूज्यश्री ने कहा कि, महाराज ! मेरा कथन सुनिये—जिसने अपनी ही कमाई से एक लाख रुपयों की पूँजी पैदा की है, सा माणदेव जिसका नाम है, ऐसा एक श्रावक विक्रमपुर में रहता है। वह गृहस्थावस्था के सम्बन्ध से मेरा चाचा होता है। मेरे दीक्षा लेने के समय उसने बड़े प्रेम से मुझसे कहा था कि, 'बेटा ! मैं मेरे बाल-बच्चों को अनेक प्रकार से आनन्द करते हुए देखूँगा। इस अभिप्राय से मैंने अनेक कष्टों को सहकर इतना धन कमाया है। बेटा ! तूने यह क्या मनमें सोचा ? जो तू गृहस्थावास से उद्विग्न हुआ सा दिखलाई देता है। तेरा मन हो तो दस-बीस हजार रुपये देकर तुझे विदेश भेज दूँ अथवा यहाँ ही कोई दुकान खुलवा दूँ या किसी सुयोग्य सुन्दरी कुलीन कन्या से तेरा विवाह करवा दूँ। और तेरे मनमें कोई मनोरथ हो तो बतला उसको भी पूर्ण करुँ ?' इत्यादि अनेक तरह से मुझे समझाया। परन्तु मैंने इन बातों की तरफ कुछ भी खयाल न देकर गुरु के उपदेश से उत्पन्न हुए गाढ वैराग्य से सर्वसंग परित्याग कर दिया। वह मैं आज आपके दिए हुए देश या नगरी की कैसे इच्छा कर सकता हूं। राजा ने कहा—'तो और कुछ कार्य फरमाइये; जिससे मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ।' राजा और आचार्य इन दोनों का सम्वाद सुनकर परम उत्कंठित हुए सेठ रामदेव ने कहा, 'कृपानाथ ! आप गुरु महाराज को विजय-पत्र भेंट करने की कृपा करें।' राजा ने कहा—'आज तो समय बहुत हो गया है, हमारे हाथ में अवकाश भी नहीं है। किन्तु मैं अपने महलवाड़े से दो दिन के बाद

अजमेर आऊँगा, वहाँ पर अवश्य ही जय-पत्र अर्पण कर दूंगा।' सेठ रामदेव ने कहा—'जैसी आपकी आज्ञा, परन्तु मेरी एक प्रार्थना है कि बड़े समारोह से हमारे गुरु का अजमेर में प्रवेश हो। ऐसी आज्ञा फरमा दीजिए।' राजा ने प्रधान मंत्री कैमास को कहा—'मंडलेश्वर! नगर सजाकर बड़े ठाठ-बाट और शान-शौकत के साथ सेठ रामदेव के गुरु का नगर प्रवेश करवा देना और इनके उपाश्रय में पहुंचा देना।'

५२. इसके बाद आचार्यश्री वहां से उठकर मंत्रीश्वर कैमास आदि राजकीय प्रधान-पुरुषों से वार्तालाप करते हुए नगर की ओर चले। उनके पीछे-पीछे राजपूतों की घुड़सवार पलटन चल रही थी। उस समय महाराज अपने कानों से अपनी मधुर कीर्ति सुन रहे थे। चारों ओर अनेक लोगों द्वारा की हुई 'जय हो-चिरंजीव हो' आदि का घोष ग्रहण कर रहे थे। यद्यपि सिद्धान्तानुसार जैनमुनियों को छत्र धारण नहीं करना चाहिये, परन्तु जैन धर्म के उद्योत एवं प्रभावना के लिये वे महाराज पृथ्वीराज द्वारा दिए गये मेघाडम्बर नाम के छत्र को धारण किये हुए थे।

नगर में स्थान-स्थान पर रङ्ग उछाला जा रहा था। श्रावक लोग उस खुशी के अवसर पर गरीब लोगों को दान देते थे। सुन्दरियाँ नृत्य करती थीं, मनोहर गाने गाये जाते थे। भाँट लोग गौतम गणधर आदि प्रधान-प्रधान पूर्वजों के गुण वर्णन के साथ बिरुदावली पढ़ रहे थे। महाराज पृथ्वीराज की सभा में इन आचार्यश्री ने पद्मप्रभाचार्य को जीत लिया, इस अर्थ को लेकर तत्काल बनाई हुई चौपाइयां पढ़ी जा रही थीं। जगह-जगह शंख आदि पांचों प्रकार के बाजे बज रहे थे। उस समय राजाज्ञा से अलंकृत अजमेर शहर में पहुँच कर क्रमशः चैत्यवंदन करके महाराज पौषधशाला में पहुँचे।

५३. दो दिन के बाद अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये दलबल सहित राजा पृथ्वीराज अजमेर अपने महलों में आये। वहां से जय-पत्र को हाथी के हौदे में रख कर नगर के बीचों-बीच होकर पौषधशाला में आये और श्रीपूज्यजी के हाथों में जयपत्र अर्पित किया। बदले में श्रीपूज्यजी ने आशीर्वाद दिया और श्रावक लोगों ने नजरें देकर राजा साहब का स्वागत किया। इस महोत्सव में सेठ रामदेव ने अपने घर से सोलह हजार रुपये खर्च किये थे। इसके बाद आचार्य महाराज अजमेर से विहार करके वि० सं० १२४० में विक्रमपुर आये, वहाँ पर अपने साथ के १४ मुनियों सहित श्रीपूज्यजी ने छः मास तक गणि योग तप किया। वहाँ से चलकर वि० सं० १२४१ में फलोदी आकर जिननाग, अजित, पद्मदेव, गणदेव, यमचन्द्र और धर्मश्री, धर्मदेवी नाम के साधु साध्वियों को दीक्षा दी। वहीं पर वि० सं० १२४२ माघ सुदि पूर्णिमा के दिन पं० श्रीजिनमतोपाध्यायजी का स्वर्गवास हुआ। इसके बाद वि० सं० १२४३ में खेड़ा नगर में महाराज ने चातुर्मास किया, वहाँ से ग्रामानुग्राम विचरते हुये पुनः अजमेर की ओर पधार गये। वि० सं० १२४४ में अणहिलपाटण नगर

में स्थानीय जैन बन्धुओं की ओर से किसी निमित्त को लेकर कोई इष्ट गोष्ठी की गई थी। वहां पर भंडशाली गोत्रीय किसी श्रावक ने किसी वश्याय (?) अभयकुमार नाम के श्रावक को बातों-बातों में कहा कि, 'अभयकुमार! तेरी सज्जनता, धनाढ्यता और राजमान्यता से हम लोगों को क्या फायदा हुआ, जब तूने समर्थ होकर भी हमारे गुरु श्रीजिनपतिसूरिजी को उज्जयन्त, शत्रुञ्जय आदि तीर्थों की यात्रा भी नहीं कराई।' इस कथन को सुनकर वह भंडशाली से बोला—'आप खिन्न न होइये। (तुम्हारे कथनानुसार) तीर्थ-यात्रा सम्बन्धी कार्य करवा दिया जायगा।' इस प्रकार कहकर वह नगर के अधिपति राजा भीमसिंह और उनके प्रधान मंत्री जगदेव के पास गया। प्रार्थना करके खुद राजा के हाथ से अजमेर निवासी खरतर संघ के नाम एक आज्ञापत्र लिखवाकर अपने घर आया। भंडशाली को अपने घर बुलाकर उसकी राय से खरतरगच्छ संघ के नाम पत्र लिखे गये। उस राजकीय आदेश को तथा अपनी ओर से श्रीजिनपतिसूरिजी की सेवा में लिखे गये प्रार्थना-पत्र को देकर श्रीसंघ के पास अजमेर भेजा। श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज राजा के हुक्म नामे को तथा अभयकुमार के प्रार्थना-पत्र को पढ़कर एवं अजमेरवासी श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार करके संघ के साथ तीर्थ-वन्दना के लिये चले।

५४. श्रीपूज्यजी के दो शिष्य, जिनपालगणि और धर्मशीलगणि, त्रिभुवनगिरि में यशोभद्राचार्य के पास अनेकान्तजयपताका, न्यायावतार, तर्क, साहित्य, अलंकार आदि ग्रन्थों का अभ्यास करते थे। वे दोनों अपने गुरुजी की आज्ञा पाकर त्रिभुवनगिरिवासी श्री संघ के साथ तथा न्याय पढ़ने में सहायता देने वाले शीलसागर एवं सोमदेव यति को साथ लेकर तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान करने वाले श्री गुरुजी की सेवा में आ सम्मिलित हुए और यह समाचार भी कहा कि—"आपकी सेवा में आते हुए हम लोगों को यशोभद्राचार्य ने कहा है कि—यदि श्रीपूज्यजी की आज्ञा हो तो मैं भी यात्रार्थ आकर सम्मिलित हो जाऊँ। महाराज जब गुजरात देश में पधारेंगे तब मैं आगे-आगे चलूंगा। ताकि कोई भी प्रतिवादी महाराज के साथ शास्त्रार्थ करने की हिम्मत न कर सके। इस प्रकार अपने गुरुओं का मान करने से मेरे भी कर्मों का संचय अवश्य ही कुछ हलका होगा। परन्तु उन्हें साथ लाने की आपकी आज्ञा न होने से यशोभद्राचार्य को हमने आने से निषेध कर दिया।"—इसके जवाब में श्रीपूज्यजी ने कहा—"जैसा तुम लोगों को अच्छा लगे वैसा करो। यदि उस आचार्य को लाने की इच्छा हो, तो ले आओ। क्या अब भी वे किसी प्रकार लाये जा सकते हैं?' वे बोले—"हे प्रभो! वह यहां से बहुत दूर है, इसलिये अब उनका आना बड़ा कठिन है।"

जिस प्रकार चातुर्मास में हजारों नदियों के प्रवाह—गंगा प्रवाह में आकर मिलते हैं, वैसे ही विक्रमपुर, उच्चा, मरुकोट, जैसलमेर, फलौदी, दिल्ली, वागड़ और मांडव्यपुर आदि नगरों के

निवासी भव्यजनों के संग आ आकर अजमेर वाले संघ में मिलने लगे। श्रीपूज्यजी अपने विद्या गुण से, तपोगुण से, आचार्य मंत्र की शक्ति से, श्रावक लोगों की भक्ति से, संसार से होने वाली विरक्ति से, और बृहस्पति के समान सुयोग्य मनुष्यों के संसर्ग से स्थान स्थान पर जिनधर्म का उद्योत करते हुए श्री संघ के साथ चन्द्रावती नगरी पहुँचे।

५५. वहां पर संघ के मध्य में स्थित रथारूढ़ प्रतिमा के वन्दन के लिये पन्द्रह साधु और पांच आचार्यों के साथ पूर्णिमा गच्छ के प्रामाणिक श्री अकलंकदेवसूरिजी आये। परन्तु रथ-प्रतिमा-स्नान महोत्सव के लिये आए हुए लोगों का मेला लगा हुआ देखकर वे लौट गये और कुछ दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। जब श्रीपूज्यजी को ज्ञात हुआ, तो उन्होंने अपनी ओर से आदमी भेजकर पुछवाया कि, 'आचार्य महानुभाव ! क्या कारण हुआ कि चैत्यवंदन बिना किये ही आप वापस लौट गये।' उन्होंने जवाब दिया कि,'यदि हमारे साथ वंदना-नमस्कार सम्बन्धी शिष्टाचार का यथावत् पालन किया जाय तो हम आ सकते हैं।' श्रीपूज्यजी ने कहलवा भेजा कि, 'आप खुशी से आइये। व्यवहार पालन में कोई भी त्रुटि नहीं की जायगी।' इस आश्वासन को पाकर वे आगये और छोटे-बड़े के हिसाब से जिस प्रकार वन्दना की रस्म होनी चाहिये थी अदा की गई।

तत्पश्चात् आगन्तुक अकलंकदेवसूरि ने लोगों से पूछा—'श्रीमान् आचार्यजी का शुभ नाम क्या है ?' पास में बैठे किसी मुनि ने कहा कि, 'श्रीपूज्यजी का नाम श्रीजिनपतिसूरि है।' अकलङ्क०—'आपका यह अयोग्य नाम किस कारण से रक्खा गया ?' श्रीपूज्य०—'कैसे जाना कि यह नाम अयुक्त है ?' अकलङ्क०—'यह तो अच्छी तरह से जाना जाता है कि "जिन" शब्द से सभी केवलियों का बोध होता है। उनका "पति" तीर्थंकर ही हो सकता है। अपने आपको जिनपति (तीर्थंकर) संज्ञा रखते हुए आप परम ईश्वर तीर्थंकरों की बड़ी भारी आशातना कर रहे हैं। इसलिये जिनपति-सूरि नाम ठीक नहीं है।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'आचार्यजी ! यदि विद्वान् लोग इसको प्रमाणभूत मानलें, तो किसी प्रकार आपका कथन ठीक हो सकता है। परन्तु विद्वान् लोग आगा-पीछा बहुत विचारते हैं। अगर ऐसा नहीं विचारें, तो उनके द्वारा जगत् की बहुत कुछ हानि हो सकती है। आपके इस कथन को सुनकर हम ऐसा समझते हैं कि आपने केवल लोक-रंजन के लिये व्याख्यान देना सीख लिया है और ग्रंथों का अभ्यास छोड़ दिया है। नहीं तो इस 'जिनपति' शब्द में आपको इस प्रकार भ्रम क्यों होता ? आपको मालूम है कि व्याकरण शास्त्र में केवल एक तत्पुरुष समास ही नहीं है, किन्तु और भी पांच समास वर्णित किये गये हैं। जैसे कि लिखा है:—

'षट् समासा बहुव्रीहिर्द्विगुर्द्वन्द्वस्तथाऽपरः ।
तत्पुरुषोऽव्ययीभावः कर्मधारय इत्यमी ॥

व्याकरण में बहुव्रीहि, द्विगु, द्वन्द्व, तत्पुरुष, अव्ययीभाव तथा कर्मधारय यह छः समास कहे गये हैं। समास उसे कहते हैं, जिसके द्वारा अनेक पदार्थों का एक पद बनाया जाय। इसी प्रकार अर्थ की विचित्रता दिखलाने के लिये किसी एक अन्य पंडित ने भी इन समासों के नाम से एक आर्याछन्द की रचना की है। जैसे—

द्विगुरपि सद्वन्द्वोऽहं गृहे च मे सततमव्ययीभावः।
तत्पुरुष! कर्म धारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः॥

[कोई पंडित किसी धनी-मानी पुरुष के पास जाकर अपनी घरेलू स्थिति का वर्णन करता हुआ आर्थिक सहायता की याचना करता हुआ कहता है कि धनाढ्य पुरुष! मेरे दो गाये हैं, मैं सपत्नीक हूं, मेरे पास घर में खर्च करने के लिये कुछ भी नहीं है। आप कृपया उस कार्य को धारण करें; जिससे मेरे पास खाने के लिये बहुत से चावल हो जायँ। अन्न की त्रुटि न रहें।] इस श्लोक में वक्ता की चातुरी से छः प्रकार के समासों के नाम का परिचय भी दे दिया गया है।

अकलङ्कदेव०—'आपके इस कथन से प्रकृत विषय में क्या सिद्ध हुआ।' श्रीपूज्य०—'इसके कहने का अभिप्राय यह है कि जो अर्थ किसी एक समास से ठीक न बैठता हो, उसकी संगति दूसरे समास से ठीक बैठ जायगी। आपने उतावले होकर कैसे कह दिया कि नाम अयुक्त है।' अकलङ्कदेव—'अच्छा आप ही बतलाइये कि कौन से समास से जिनपति नाम सुसंगत होता है।' श्रीपूज्य—"जिनः पतिर्यस्यासौ जिनपतिः" अर्थात् जिन है पति जिसका वह पुरुष जिनपति कहा जाता है। बतलाइये इस प्रकार बहुव्रीहि समास करने से कौन गुण अथवा दोष होता है?' अकलङ्कदेव०—'आचार्यजी! बहुव्रीहि समास करने पर दोष कोई नहीं होता, बल्कि अपने आपके लिये जैनत्व सूचक गुण होता है। परन्तु इस प्रकार की कष्ट कल्पना करके लोगों को क्यों चक्कर में डाला जाय? सीधा "जिनपतिसूरि" नाम क्यों न रख लिया जाय?' श्रीपूज्य०—जिन को व्याकरण शास्त्र का अच्छी तरह से ज्ञान है, उनके लिये ऐसे शब्द का अर्थ लगाने में कोई कठिनाइ नहीं होती है। व्याकरण के जानकार लोग संदिग्ध एवं कठिन शब्दों का अर्थ भी भली-भाँति निकाल लेते हैं। फिर ऐसे-ऐसे साधारण शब्दों की तो बात ही क्या!' अकलङ्कदेव०—'अस्तु, नाम के बारे में हम कुछ नहीं कहते, यह यों ही सही। परन्तु हम पूछते है कि सिद्धान्तों में संघ के साथ यात्रा करना साधुओं के लिये उचित बताया है क्या? अथवा आप सिद्धान्त-विरुद्ध संघ के साथ चल पड़े।' श्रीपूज्य०—'उत्सूत्रभाषी अन्यों को छोड़कर ऐसा कौन विद्वान होगा, जो थोड़ा-बहुत सिद्धान्त का आश्रय लिये बिना ही किसी धर्म कार्य में प्रवर्तित होता हो।' अकलङ्कदेव०—'आचार्यजी! आप बड़े धृष्ठ (उदण्ड) हैं। सिद्धान्त-विरुद्ध कार्य करते हुए भी सिद्धान्तों

की दुहाई दे रहे हैं।' श्रीपूज्य०—'इसका पता तो अब लग जायगा कि कौन उद्दण्ड है और कौन नहीं है।' अकलङ्कदेव०—'आपही अकेलों ने सिद्धान्त देखा है, औरों ने थोड़े ही देखा है?' श्रीपूज्य०-'यदि दूसरे भी सिद्धान्तों को देखे हुए होते, तो अवश्य ही इस प्रकार नहीं बोलते।' अकलङ्कदेव०-'आचार्यजी! पंच महाव्रतधारी साधु को तीर्थ-यात्रा में संघ के साथ ही नहीं जाना चाहिए—इत्यादि निषेधक वाक्य हम सिद्धान्तों में दिखलावें, या आप संघ के साथ जाने के सम्बन्ध में प्रमाण दिखलाइये। अथवा सिद्धान्तों को दूर रखिये आप अपने गुरुजी के वचनों को तो न भूलिये। देखिये, उन्होंने क्या कहा है:—

विहिसमहिगयसुयत्थो संविग्गो विहियसुविहियविहारो।
कइयाऽहं वंदिस्सामि सामि तं थंभणयनयरे॥

[मैं विधिपूर्वक सूत्रार्थ को प्राप्त करके वैराग्य के साथ विधिपूर्वक विहार किया हुआ स्तम्भनक नगर (खम्भात) में पहुँचकर श्री स्वामी पार्श्वनाथ भगवान् को वन्दना कब करूँगा?]

इस गाथा में वैराग्य के साथ विधिपूर्वक विहार कहा गया है। जिसका यह आशय है कि संघ में आसक्त न होकर आरम्भ-समारम्भ के बिना विहार करें। संघ के साथ में रहने से अनेक प्रकार के आरम्भ-समारम्भ हुए बिना नहीं रह सकते। अतः साधु को तीर्थयात्रा में संघ को साथ नहीं लेना चाहिये।' श्रीपूज्य०—'आप इस बात पर व्यर्थ ही इतना जोर क्यों लगा रहे हैं कि हम सिद्धान्ताक्षरों को दिखला दें। अपने आपकी शक्ति का तभी प्रदर्शन करना चाहिये, जबकि सिद्धान्तों में न होते हुए भी किन्हीं असत्य अक्षरों को आप दिखला दें और यदि दिखला भी दें तो विद्वान् लोग उन्हें मानेंगे नहीं। अतः आपका यह जोर लगाना व्यर्थ है। जो अक्षर सिद्धान्त ग्रन्थों में लिखा है, आप विश्वास रखिये वे तो औरों ने भी जरूर देखे ही होंगे। उन को दिखाने के लिये इतना प्रयत्न करना कोई अर्थ नहीं रखता।' अकलङ्कदेव०—'परन्तु सिद्धान्त के कथन का आश्रय लेकर ही हम संघ के साथ यात्रा में चले है, आपका यह कहना युक्त नहीं है।' श्रीपूज्य—'हां, आपका कथन युक्त है। हम यदि सिद्धान्तानुसार किसी भी तरह आपको सन्तोष न भी कर सकें तो भी आपको चाहिये कि मत्सर को त्यागकर सावधान होकर हमारा कथन सुनें। यदि हमारी कही हुई युक्ति सिद्धान्तानुसारिणी हो, तब तो उसे मानें, अन्यथा नहीं। मरे मनुष्य की मुट्ठी की तरह किसी बात को पकड़कर बैठ जाना प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता।' अकलङ्कदेव—'हाँ, आपके इस कथन को हम मानते हैं, आप उस युक्ति का प्रतिपादन करें।' श्रीपूज्य०—'आचार्य महानुभाव! आचार्य उस पुरुष को जानना चाहिये, जिसने अनेक देश देखे हों तथा अनेक देशों की भाषायें जानी हों, यह बात तो सिद्धान्त में है, आप मानते हैं?' अकलङ्कदेव०—'हाँ, है।'

श्रीपूज्य०—'कारणवश हमको छोटी उम्र में ही आचार्य पद पर बैठाया गया है। इसलिये अब कतिपय देशों का देशाटन और भिन्न-भिन्न भाषाओं से परिचय हो जाय, अतः इस संघ के साथ तीर्थयात्रा को चले हैं। इसे यों कहना चाहिये कि शंख और क्षीर युक्त, कस्तूरी और कपूर से मिल गई, आपकी तरफ से किये गये आक्षेप का एक यह पहला उत्तर। श्रीसंघ ने हमसे बड़ी प्रार्थना की कि महाराज गुजरात में अनेक चार्वाक (नास्तिक) रहते हैं। वहीं हम लोग तीर्थयात्रा करने जा रहे हैं। यदि कोई हमारे सामने तीर्थयात्रा के निषेध के प्रमाण उपस्थित करेगा तो, हम उसे कोई भी उत्तर नहीं दे सकेंगे क्योंकि हम सिद्धान्तों के रहस्य से अनभिज्ञ हैं। इससे जिन-शासन की क्षुद्रता जानी जायगी। इसलिये आप हमारे साथ तीर्थ-वन्दन के लिये चलें। इस प्रकार संघ की अभ्यर्थना से हम आये हैं। यह दूसरा उत्तर। संघ के साथ यात्रा करने से साधुओं के नित्य-नियम में व्याघात होने की सम्भावना से सिद्धान्त-ग्रन्थों में संघ के साथ यात्रा करने का निषेध लिखा है। हम भी मानते हैं कि यदि नित्य कर्म में बाधा पहुँचे तो संघ के साथ यात्रा नहीं करनी चाहिये। इस संघ में सायं प्रातः दोनों वक्त प्रतिक्रमण, ब्रह्मचर्य पालन और एक वक्त भोजन आदि अभिग्रह धारण करके श्रावक लोग तीर्थ-वन्दन के लिये चले हैं। अब आप ही बतलाइये कि हमारे आवश्यक नित्य नियम में बाधा पहुँचाना कैसे सम्भव है?'

इस प्रकार की अनेक उक्तियों को सुनकर प्रसन्न हुए श्री अकलङ्कदेवसूरिजी बोले—'आचार्य महोदय! "खरतराचार्य", शब्द को सुनने से ही हमने जान लिया था कि आप किसी प्रबल अवलम्बन के बिना इस लोकापवाद को अपने ऊपर नहीं लेते? परन्तु ऐसा सुनते हैं कि मारवाड़ के लोग बड़ी बोली बोलने वाले होते हैं। आज हमने सुना कि संघ के साथ आचार्य भी आये हैं। देखें, ये आचार्य किस प्रकार बोलते हैं, इनका आचार-व्यवहार, वेष, भाषा आदि किस प्रकार के हैं। इन बातों को देखने के लिये हम लोग कौतुकवश यहां आये हैं। आपके साथ जो हमने तर्क-वितर्क किया, यह केवल शैली जानने के लिये ही किया गया है। किसी अन्य अभिप्राय से नहीं। इस प्रसंग में हमारी ओर से यदि कुछ अनुचित कहा गया हो तो हमें क्षमा करें।'
श्रीपूज्य०—'आचार्यजी! इष्ट-पुरुषों की गोष्ठी में कुछ का कुछ कहने में आजाता है और विवाद छिड़ने पर तो उचितानुचित का ध्यान ही नहीं रहता। इसलिये हमारी ओर से भी आपके प्रति कोई अनुचित व्यवहार किया गया हो तो उसके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं।' अकलङ्कदेवसूरिजी बोले—'आचार्यजी महाराज! हम इस देश में सुना करते थे कि खरतरगच्छ के आचार्य वादलब्धि से सम्पन्न हैं। यह सुनी हुई बात कहां तक सत्य है, इसका निश्चय करने के लिये हम यहां आये थे। परन्तु आज यहां पर आपके भाषण की रीति देखकर हमारे चित्त से संशय चला गया। हम यह जानते हैं कि प्रसिद्धि निर्मूल नहीं हुआ करती। आचार्यजी! हमारे साधुओं के विहार में अतिविलम्ब हो रहा है। इसलिये हम इन्हें विदा करते हैं।' श्रीपूज्य ने कहा—'क्या आज आप हमारे

अतिथि नहीं होंगे ?' अकलङ्कदेवजी बोले—'अतिथि वे ही हुआ करते हैं, जो देशान्तर में आये हों ? हम तो यहां के ही रहने वाले हैं। इसलिए आपके पाहुणे (अतिथि) कैसे हो सकते हैं ? बल्कि आप हमारे अथिति हो सकते हैं।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'आपका कहना सही है।' इस प्रकार प्रेम-पूर्ण बातें करके वे लोग हर्षित चित्त से अपने उपाश्रय को चले गये।

५६. इसके दूसरे दिन वहाँ के श्रावक द्वादशावर्त वन्दनक देने के लिये श्रीपूज्यजी के पास आये और प्रार्थना की कि, 'भगवन् ! आप हमारी वन्दना स्वीकार कर लीजिये।' श्रीपूज्य---'जैसे तुम्हें सुख उपजे वैसे करो।' यह कहकर शान्त मुद्रा धारण करके वे विराज गये। तत्पश्चात् वे श्रावक लोग श्री जि न व ल्ल भ सू रि जी से दर्शाये हुए विधि मार्ग के अनुसार वन्दना करने लगे। हर्षित होकर श्रीपूज्यजी ने कहा—'हे महाभागशाली श्रावकों ! गु ज रा त में आठ पट वाली मुख-वस्त्रिका से वन्दना दी जाती है। आप लोगों ने चार पुट वाली से क्यों दी ?' उन श्रावकों ने जवाब दिया कि-'स्वर्गीय भगवान् श्री अभयदेवसूरिजी महाराज ने हमें ऐसे ही करने की शिक्षा दी थी।' इस प्रकार अपने पूर्वजों की बात सुनकर महाराज को अतीव हर्ष हुआ।

इस प्रकार च न्द्रा व ती न ग री में दो-चार दिन विश्राम करके महाराज संघ को साथ लिये हुए कासहृद (कासिंदरा) पहुँचे। वहां पर उस समय चैत्यवन्दन के लिये संघ के साथ महाप्रामाणिक, पौर्णमासिक गच्छावलम्बी श्रीतिलकसूरि अनेक साधु-परिवार सहित आये। परस्पर में सुख साता सम्बन्धी प्रश्न किया गया। अपने गुरु की चरण-सेवा करने से जिसकी कीर्ति चारों ओर फैल रही थी, जिसने हीरों से जड़ी हुई सुन्दर रेशमी पोशाक पहन रक्खी है, स्वर्ण के आभरणों से अलंकृत-कामदेव के समान जिसका सुन्दर शरीर है, ऐसे माँ ड वी निवासी श्री सेठ लक्ष्मीधर श्रावक की ओर अंगुली निर्देश करते हुए तिलकप्रभसूरि ने श्रीपूज्यजी से पूछा कि 'क्या आपके संघ के संघपति ये ही हैं ?' इसके उत्तर स्वरूप श्रीपूज्यजी बोले—'आचार्य ! श्रावक मात्र को संघपति नाम देना ठीक है ?' तिलकप्रभ०—'लोक में ऐसी ही भाषा बोली जाती है।' श्रीपूज्यजी उपहास पूर्वक बोले—'ग्रामीणजन सुलभ भाषा का सहारा लेकर जवाब देते हैं। इसमें कोई शास्त्रीय युक्ति दो।' तिलकप्रभ० —'आप भी तो कोई प्रमाण नहीं दे रहे हैं, लोक-प्रसिद्ध भाषा को केवल अपने कथन मात्र से ही छुड़वाने का आदेश देते हैं।' श्रीपूज्य० —'वाक्य-शुद्धि जान लेने पर अध्ययनेच्छु साधु लोग बहुत से लोक-प्रसिद्ध शब्दों को छोड़ देते हैं। आचार्य ! लोगों के साथ हमारा किसी प्रकार का मत्सर नहीं है, जिससे कि हम उनकी भाषा को प्रमाणभूत न मानें। परन्तु कहने का सारांश यह है कि व्रतधारी को ऐसी भाषा बोलनी चाहिये, जिसके बोलने से माननीय पुरुषों की लघुता न होती हो।' तिलकप्रभ०—'इस भाषा में बड़ों की लघुता होती है ?' श्रीपूज्य०—'इस बात को सभी कोई जानते हैं।' तिलकप्रभ०—'कैसे ?' श्रीपूज्य०—'संघ शब्द से साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं का समुदाय

ग्रहण किया जाता है। लिखा है—"साहूण, साहुणीणय सावय—साविय चउव्विहो संघो।" इस चतुर्विध संघ के पति तीर्थंकर या आचार्य हुआ करते हैं।' तिलकप्रभ०—'अकेले श्रावक समुदाय के लिये भी संघ शब्द का प्रयोग देखा जाता है।' श्रीपूज्य०—कारण में कार्य का उपचार होने से ऐसा लगता है, जैसे—"अष्टतमायुः"—अर्थात् आठ वर्ष की आयु है। "आयुर्घृतम्" घी आयु बढ़ाने वाला है। यह सब ही है, परन्तु इस प्रकार सब जगह उपचार के भरोसे शब्दों का प्रयोग करने से मिथ्या—दृष्टि लोगों में कहीं उपहास भी हो सकता है। "वह लक्ष्मीधर श्रावक गृहस्थ है।" इसके किसी कुत्सित कार्य को देखकर लोग कहेंगे—जैनियों में यह सर्व प्रधान है। क्योंकि संघ का यह पति है। इसके कुत्सित कर्तव्य को "स्थाली पुलाक" न्याय से देखकर समझ लेना कि जैनियों के कर्त्तव्य कैसे हुआ करते हैं—हमारे कथन का यह सारांश निकलता है। इसलिये आचार्यजी! भविष्य में इस उपचार के भरोसे शब्दों का प्रयोग करना छोड़ दें। हाँ, श्रावक के लिये संघपति शब्द का प्रयोग अन्य रीति से हो सकता है। देखिये, मैं दिखलाता हूं।' तिलकप्रभ०—'कैसे?' श्रीपूज्य—'बहुव्रीहि समास का आश्रय लेने से "संघः पतिर्यस्यासौ संघपतिः, श्रावकमात्रः" अर्थात् संघ है पति जिसका वह संघपति प्रत्येक श्रावक हो सकता है।' तिलकप्रभ०—'मैंने जहाँ—तहाँ महर्द्धिक श्रावक के लिये संघपति शब्द का प्रयोग देखा है।' श्रीपूज्य०—'हाँ, भ्रान्तिवश अनेक जगह लोग ऐसे शब्दों के प्रयोग करते हैं।' इस प्रकार अनेक तरह से बड़े विस्तार के साथ सैद्धान्तिक—युक्तियों का प्रकाशन करते हुए महाराजश्री ने श्रावक के लिये प्रयोग किये जाने वाले संघपति शब्द का खंडन किया। महाराज की इन युक्ति-प्रत्युक्तियों के सामने तिलकप्रभसूरि निरुत्तर हो गये। उनको चुप हुआ देखकर सुख—वार्ता पूछने के बहाने महाराज ने फिर बोल—चाल शुरू की, "साम्प्रतं यूयमत्रैव स्थास्यथ:" अर्थात् अब आप क्या यहाँ ही ठहरेंगे?' तिलकप्रभाचार्य ने हंसते हुए कहा—'आचार्य! 'अत्रैव' इस पद को कहते हुए आपने वाक्य—शुद्धि नाम के अध्ययन की निपुणता दर्शा दी। कहा है कि "तहेव सावज्जणु मोइणी गिरा, ओहारिणी जा उ परोवघायणी" अर्थात् सावद्य का अनुमोदन करने वाली तथा दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाली, निश्चयात्मक वाणी साधु के बोलने योग्य नहीं है। इत्यादि ग्रन्थ—वाक्यों से जाना जाता है कि मुनि एकान्त निश्चय रूप भाषा न बोले। आप शास्त्राज्ञा के विरुद्ध "यहाँ ही ठहरोगे क्या?" ऐसा निश्चयात्मक वचन बोलते हैं।' सरल प्रकृति वाले श्रीपूज्यजी बोले—'आपने बहुत अच्छी बात सुझाई। आपका अभिप्राय शायद यही है कि कहा हुआ निश्चयात्मक वचन यदि व्यर्थ चला जाय तो साधु पर मिथ्या—भाषण का दोष आता है और ऐसा होने से व्रतभंग होता है। इसलिये साधु को एकान्त वचन बोलना कल्पता नहीं है। और आचार्यजी! आपने हमारा अभिप्राय नहीं जाना, इसलिये अब हम न्यायशास्त्र की रीति से अभिप्राय प्रकाशित करेंगे। तर्क पढ़ने का यही फल है कि अभिमान और क्रोध को छोड़कर जैसा—तैसा भी वाक्य हो उसका समर्थन किया जाय। आज "काकतालीय न्याय" से गंगा—यमुना के प्रवाहों की तरह अपनी मुलाकात भाग्यवश हो गई है।

इसलिये अगर क्रोध और अभिमान को छोड़कर तर्करीति से इष्टगोष्ठी की जाय तो अपने समागम की सफलता है।' तिलकप्रभाचार्य ने कहा—'हाँ, आपके कथन को मैं अक्षरशः मानता हूं।' श्रीपूज्यजी—'आचार्य! हम पूछते हैं कि साधु निश्चयात्मक वचन बिलकुल बोले ही नहीं या कभी बोल भी सकता है?' तिलकप्रभ०—'साधु को एकान्त वाणी कभी नहीं बोलनी चाहिये।' श्रीपूज्य—"निश्चयात्मक वचन कभी नहीं बोलना चाहिये।" इस पक्ष को यदि लें तो हमारे कथन का खण्डन होता है और—

अइयम्मि य कालम्मि य पच्चुप्पन्नमणागए।
निस्संकिय भवे जंतु एवमेयं तु निद्दिसे॥

[भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में संशय रहित एक बात साधु को बोलनी उचित है।] इस सिद्धान्त-वाक्य के साथ विरोध पड़ता है। "कभी-कभी साधु निश्चय-भाषा बोल सकता है।" यदि इस दूसरे पक्ष को ग्रहण किया जाय तो फिर कोई उपालंभ नहीं मिल सकता है। क्योंकि हमने इसके अनुसार ही निश्चयात्मक भाषा का उच्चारण किया है। आचार्य! जिस वाक्य में निश्चय सूचक पद का साक्षात् निर्देश न किया गया हो, वहां पर अपनी बुद्धि से ऐसे शब्द की कल्पना कर लेनी चाहिये। "सर्वं वाक्यं सावधारणम्" यह न्याय है। अर्थात् सब वाक्यों के साथ निश्चय रहा हुआ है। बिना निश्चय के कोई वाक्य नहीं होता। न मानने से कहीं भी व्यवस्था नहीं रहेगी। जैसे "पटमानय" अर्थात् कपड़ा लाओ। इस निश्चय अर्थ के न रहने से कपड़े की जगह और कोई चीज क्यों नहीं लानी चाहिये? और "पटं नयेत्" इसके सुनने से कपड़े के सिवा और किसी वस्तु को ले जानी चाहिये? और "अर्हन् देवः, सुसाधु गुरुः" इत्यादि वाक्यों में परमपद प्राप्ति के कारण अर्हन् ही देव हैं। अर्हत् देव ही हैं, अदेव नहीं हैं। इसी प्रकार एक मात्र मोक्ष-मार्ग का अभिलाषी होने से सुसाधु ही गुरु है। इन वाक्यों को सावधारण माने बिना उपर्युक्त पदों में व्यवस्था नहीं हो सकेगी। इसी प्रकार सिद्धान्त ग्रंथों के वाक्य भी सावधारण होने से ही मनोहर हैं; अन्यथा नहीं। यथा "धम्मो मंगलमुक्किट्ठं" इत्यादि वाक्यों से यह निश्चय होता है कि धर्म ही सर्वोत्कृष्ट मंगल रूप है। धर्म उत्कृष्ट ही मंगल है, न की दही-दूध आदि। यह सब सुनकर तिलकप्रभसूरि ने कहा—'अयोगव्यवच्छेदपरिहार, अन्ययोगव्यवच्छेद अथवा अत्यन्तायोगव्यवच्छेद के लिये ही बुद्धिमान लोग एवकार का प्रयोग करते हैं। और आपके कहे हुये "साम्प्रतं यूयमत्रैव स्थास्यथ:" अर्थात् अब आप यहाँ ही ठहरेंगे। इस वाक्य में प्रयुक्त एवकार शब्द से उपर्युक्त तीनों में से किसका व्यवच्छेद किया गया है। यदि आप कहेंगे कि यहां अयोग-व्यवच्छेद है, सो ठीक नहीं; क्योंकि विशेषण से आगे कहा हुआ एवकार अयोग-व्यवच्छेद के लिए समर्थ हुआ करता है। और यहां विशेषण का ही अभाव है। यहां अन्ययोगव्यवच्छेद

के लिये यदि एवकार को माना जाय तो भी ठीक नहीं। क्योंकि हम लोग हवा की तरह सदैव उद्यत विहारी रहते हैं। अतः हमारे लिये स्थानान्तर-योग का निषेध अशक्य है। और यदि कहें कि अत्यन्तायोगव्यवच्छेद के लिये एवकार है सो भी युक्ति-युक्त नहीं। क्योंकि क्रिया के साथ पड़ा हुआ एव शब्द ही अत्यन्तायोग निवारण में समर्थ है, किन्तु केवल नहीं। यहां क्रिया का सर्वथा अभाव है; इसलिये विचार मर्यादा की कसौटी पर कसने से यह आपका शब्द अयोग्य ठहरता है।'

तिलकप्रभसूरि की ओर से कहे गये निष्कर्ष को सुनकर श्रीपूज्यजी ने जरा आवेश में तेजी से कहा—'हां, आपके कथनानुसार हमारा यह "एव" शब्द अयुक्त हो सकता है, यदि हम इसका किसी प्रकार समर्थन न कर सकें तो। इसके समर्थन के लिये पहले हमने अनेकों युक्तियां दर्शायी थीं। अब फिर हम आपके प्रश्न का उत्तर देने के लिये बहुत-सी युक्तियें दिखलायेंगे। देखिये—वर्णनीय वस्तु में सन्देह अथवा विरोध उपस्थित होने से उसे हटाने के लिये विचक्षण लोग अवधारण अर्थ वाले एवकार शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे कई लोग अपने युक्ति बल से आत्मा के अस्तित्व का समर्थन करते हैं, वैसे ही दूसरे लोग युक्तियों द्वारा आत्मा की सत्ता का का खंडन करते हैं। और आत्मा से साक्षात्कार अन्य घट-पटादि पदार्थों की तरह किसी को होता नहीं। इसलिये आत्मा है या नहीं, इस संशय में पड़े हुए शिष्य के प्रति तथा जिसके साथ किसी दूसरी चीज का स्थिर सम्बन्ध न बताया जा सके; ऐसी वस्तु आकाश-कमल की तरह कोई चीज हो नहीं है। सुख-दुःखादिक के साथ आत्मा का सम्बन्ध है या नहीं? इस सम्बन्ध में एकान्त निश्चय देना कठिन है। क्योंकि आत्मा के साथ सुख-दुःखादिक का भेद या अभेद सिद्ध करने के लिये हेतु नहीं मिलता। यदि अभेद कहा जाय तो आत्मा द्वारा होने वाली सुख-दुःख-दायिनी क्रियाओं में विरोध आता है। क्योंकि नित्य सुख-दुःखादि के साथ अभिन्न रूप आत्मा में क्रिया का होना असम्भव है। यदि सुख-दुःख आदि के साथ आत्मा का भेद मानें तो भी ठीक नहीं घटता। क्योंकि विद्वान लोग बीजाङ्कुरादि क्रम से होने वाले भिन्न पदार्थों का समवाय सम्बन्ध (नित्य सम्बन्ध) नहीं मानते। परन्तु वास्तव में आत्मा के साथ सुख-दुखादिकों का नित्य सम्बन्ध है। इस विरोधात्मक असमंजस में खिन्न-मनस्क शिष्य के प्रति आत्मा सम्बन्धी निश्चय कराने के लिये गुरु को निश्चयात्मक वाक्य बोलना पड़ता है—"अस्ति एव आत्मा"—अर्थात् आत्मा अवश्य है। क्योंकि प्रत्येक प्राणी में जो चैतन्य और ज्ञान देखा जाता है, यह आत्मा के बिना हो नहीं सकता। किसी स्थान पर प्रयोग किया हुआ अवधारण रूप 'एव' शब्द चाहे जिस किसी चीज का निराकरण करता हो, किन्तु हमारे से प्रयुक्त यह 'एव' शब्द अयोग-अन्ययोग-अत्यन्तायोग तीनों का ही निराकरण (व्यवच्छेद) करता है।

'साम्प्रतं यूयमत्रैव स्थास्यथ:' अर्थात् अब आप यहाँ ही ठहरेंगे। इस वाक्य में कहे गये सप्तम्य-न्त एतत् शब्द से निष्पन्न 'अत्र' पद से मासकल्पादि योग्य इतर क्षेत्रों से इस क्षेत्र का कुछ व्यवच्छेद होता है या नहीं? यदि नहीं होता है तब तो इस पद का प्रयोग ही व्यर्थ है और यदि होता है तो 'अत्र' पद विशेषण है और प्रकरणवश नगर विशेष्य होता है। विशेषण के आगे कहा हुआ 'एव' शब्द वर्त्तमान काल के लिहाज से इस नगर के साथ आपको अयोग सुतरां सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार अत्यन्तायोग भी समझ लीजिये। इसी अभिप्राय से हमने उक्त वाक्य में 'साम्प्रतम्' पद का प्रयोग किया है। इन युक्तियों से हमारे कथित वाक्यों में 'एवकार' का प्रयोग सर्वथा युक्तियुक्त है।

हाँ, एक बात और है कामचार-यथेच्छा विचरने वाले गुरु आदि के विषय में यदि एव शब्द का कहीं प्रयोग किया जाय तो व्याकरण के नियम के अनुसार पूर्व अवर्ण का लोप होता है। जैसे "हे गुरो! इहेव तिष्ठ, अन्यत्रेव वा तिष्ठ" अर्थात् हे गुरुजी! यहाँ ठहरो, अन्यत्र ठहरो, जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो। गुरु आदि के सिवा अन्य लोगों के प्रति, "इहैव तिष्ठ, मा यासीः क्वापि" अर्थात् यहाँ ही ठहरो, अन्य जगह कहीं भी मत जाओ! ऐसा आज्ञा द्योतक वाक्य कहा जाता है। इन दोनों वाक्यों में एक जगह अवर्ण का लोप हुआ है और दूसरी जगह नहीं हुआ है, इस रहस्य को व्याकरण-शास्त्र के जानकार अच्छी तरह से समझ सकेंगे।

पुनः श्रीपूज्यजी ने हँसकर कहा—'हमारे वाक्य में आने वाले "अत्रैव" नियोग सूचक पद से तो प्रतीत होता है कि आप हमारे ही नियोग से इतने बड़े परिवार के साथ यहां ठहरे हुए हैं।' तिलक-प्रभाचार्य ने कहा—'हम यहां आपके नियोग से नहीं ठहरे हैं, फिर भी आपने नियोगसूचक पद का प्रयोग किया है। इसलिए आपका 'अत्रैव' शब्द अपशब्द है।' उत्तर में श्रीपूज्यजी ने कहा—'प्रयोगों के अर्थ को बिना जाने ही अपशब्द कहना उचित नहीं है।' तिलकप्रभ०—'आपके कथन-मात्र से ही मेरे में अज्ञानता का आरोप नहीं हो सकता।' श्रीपूज्यजी बोले—'यह बात यों ही है।' तिलकप्रभाचार्य ने कहा—'तो फिर आप बतलाइये, आपका यह 'एव' शब्द किस अर्थ में है।' श्रीपूज्यजी बोले—'वैसे तो 'एव' शब्द के अनेक अर्थ हैं, परन्तु पहले हम इसको एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ बतलाते हैं। आप जरा सावधान होकर सुनिये, जैसे "वचनमेव वचनमात्रम्" इत्यादि प्रयोग में स्वार्थ में ही 'एव' शब्द प्रयुक्त है। इसी प्रकार हमारे वाक्य में भी समझिये। अब दूसरा अर्थ सुनिये, जहां तहां संभावना अर्थ में 'अपि' शब्द का प्रयोग किया हुआ देखा जाता है, वैसे ही यह 'एव' शब्द भी संभावना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैसे हरिभद्रसूरि के वाक्यों में "वपुरेव तवाचष्टे भगवन्! वीतरागताम्।" अर्थात् भगवन्! आपका शरीर ही वीतरागता का परिचय दे रहा है। और भी—

यत्र तत्रैव गत्वाहं भरिष्ये स्वोदरं बुधाः।
मां विना यूयमत्रैव भविष्यथ तृणोपमाः॥

[हे पंडितों ! मैं जहां कहीं जाकर अपना पेट भर लूँगा। परन्तु आप लोग मेरे बिना तृण तुल्य समझे जाओगे।] इसी प्रकार एवकार में आप किसी प्रकार अर्थ-सम्बन्धी आपत्ति खड़ी नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त प्रश्न करते समय प्रश्नकर्ता सावधारण वाक्य बोले या निरवधारण वाक्य बोले, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। उसके वचन में कोई ऊहापोह नहीं किया जाता, यह लौकिक मर्यादा है। प्रश्नकर्ता अनजान है इसलिये पूछता है। हाँ, वही मनुष्य परिचय प्राप्त करने के बाद यदि अन्य समय में सावधारण (निश्चयात्मक) वचन बोले, तो उसके वचन में शक्ति भर दोष दर्शाने की कोशिश करनी चाहिये। ऐसा करने से समालोचक की बड़ी शोभा होगी। परन्तु इस शिष्टजनों की रीति को भूल कर आपने अपनी पंडिताई का उत्कर्ष दिखाने के लिये प्रयत्न किया है। इस बात को हम भली भांति समझ गये।'

इस प्रकार श्रीजिनपतिसूरिजी के मुख से 'एवकार' शब्द के विषय में सैंकड़ों उत्तर सुनकर गुणग्राही तिलकप्रभाचार्यजी प्रमुदित मन से कहने लगे—'आचार्यजी ! आप समस्त गुजरात में सिंह की तरह निडर होकर विचरें। आपके सम्मुख प्रतिमल्ल रूप से कोई नहीं ठहर सकेगा। मैंने आपके प्रभाव को अच्छी तरह से जान लिया है।' इस शुभ वचन को सुनकर महाराज के पास में बैठे हुए एक मुनि ने अपने कपड़े की खूँट में शकुन ग्रन्थी बाँधी। अपने या अपने प्यारे के सम्बन्ध में कोई शुभ सम्वाद सुनकर कपड़े में गाँठ लगाने की प्रथा अब भी मारवाड़ में प्रचलित है।

इस पंडितगोष्ठी से तिलकप्रभसूरि को अभूतपूर्व आनन्द हुआ। अतएव श्रीपूज्यजी की अधिकाधिक प्रशंसा करते हुये वे अपने उपाश्रय को चले गये।

५७. इसके बाद संघ वहां से चलकर आशापल्ली पहुंचा। वहां पर सेठ क्षेमंधर साधु वेष में स्थित अपने पुत्र प्रद्युम्नाचार्य को बन्दना करने के लिये वादी देवाचार्य की पौषधशाला में गये। बन्दना व्यवहार के बाद प्रद्युम्नाचार्य ने कुशलवार्ता के बहाने सेठ के साथ वार्तालाप करते हुये कहा—'सेठजी ! वादलब्धि द्वारा जगत्त्रय विख्यात श्रीदेवाचार्य प्रदर्शित, पितृपरम्परागत मार्ग को छोड़कर आप कुमार्ग में लग गये; इसका क्या कारण है ?' उत्तर में सेठ क्षेमंधर ने कहा—'मैं आपको मस्तक से वन्दन करता हुआ निवेदन करता हूं कि मैंने जो अपनी ओर से किया वह अच्छा किया है। खरतरगच्छ में सब विद्याओं के पारंगत सिद्धान्तानुयायी श्रीजिनपतिसूरिजी को मैंने अपना गुरु माना है, यह कोई बुरी बात नहीं है।' जरा गुस्से में आकर प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'मारवाड़ के रूखे मुल्क में जड़ लोगों को पाकर आपके गुरु सर्वज्ञ बन बैठे हैं सो ठीक है; जहां और वृक्ष नहीं होता, वहाँ अरण्ड को भी वृक्ष मान लिया जाता है। लेकिन हमारा मन तो इस बात को सोचकर दुःख पाता है कि परम गुरु श्रीदेवसूरि के वचनामृत से पूर्ण आप लोगों की कर्णपुटी रूप नहर से सींचे गये हृदयक्षेत्र में जो विवेकांकुर पैदा हुआ था, उस पर जिनप्रवचन के विरुद्ध प्ररूपणा

करने में प्रवीण धूर्त लोगों के उपदेश का पाला पड़ गया, यह महान् अनर्थ हुआ। खैर 'बीती ताहि बिसारिये' के अनुसार अब भी आप हमसे मिल लिये यह अच्छा ही हुआ।' सेठ क्षेमंधर ने कहा—'आचार्य! हमारे गुरु मारवाड़ को छोड़कर इस समय गुजरात में आपके पास नगारे के धौंसे के साथ आ पहुँचे हैं। यदि आप उनके सम्मुख हों तो आपको उनकी असलियत का पता लग जाय।' नकली हँसी हँसते हुये प्रद्युम्नाचार्य ने कहा, 'सेठ शास्त्रार्थ में अपनी प्ररूपणा को स्थिर करने के लिये आप अपने गुरु को शीघ्र तैयार करें, हम तैयार हैं।' अपने पुत्र प्रद्युम्नाचार्य को महाराज से प्रतिबोध मिल जाय तो अच्छा है, इस अभिप्राय से महाराज के पास आकर सेठ क्षेमंधर कहने लगा—'महाराज! आप मेरे पुत्र प्रद्युम्नाचार्य को आयतन-अनायतन सम्बन्धी विषय को समझाकर अपना शिष्य बनालें। मैं अभी पौषधशाला में उसको वन्दना करने के लिये गया था, वह इस विषय में परामर्श करने के लिये तैयार-सा दीखता है।' सुनकर पूज्यजी ने कहा—'सेठ! बहुत अच्छा, ऐसा करने को हम तैयार हैं।' इस शास्त्रार्थ की तैयारी को देखकर भंडशाली गोत्रीय संभव, वाहित्र गोत्रीय उद्धरण आदि संघ के प्रधान पुरुषों ने परस्पर में सलाह करके महाराज से कहा—'महाराज! जिस प्रयोजन को लेकर आये हैं, पहले उसे करना चाहिये और वाद-विवाद आदि पश्चात करने योग्य है।' सेठ क्षेमंधर ने भी इसे ठीक समझा। श्रीपूज्यजी ने कहा—'जैसा आप लोग उचित समझें, हम वैसा करने को तैयार हैं।' क्षेमंधर सेठ ने प्रद्युम्नाचार्य के पास जाकर कह दिया, 'आचार्य! इस समय सारा संघ उत्कंठावश तीर्थ-वन्दना के लिये उतावला है; अतः जाने की जल्दी है। लौटते समय हमारे आचार्यश्री आपके साथ आयतन-अनायतन सम्बन्धी विचार अवश्य करेंगे।' प्रद्युम्नाचार्य ने इस बात को स्वीकार करते हुए कहा कि, 'देखो, लौटती वक्त इस स्थान से बचकर मत निकल जाना।'

वहाँ से प्रस्थान करके सारा संघ स्तम्भनक (खम्भात) उज्जयन्त (गिरिनार) आदि तीर्थों में आकर ठहरा, वहां पर महाद्रव्यस्तव एवं महाभावस्तव से तीर्थ-वन्दना तथा पूजा की गई। इससे आगे मार्ग को गड़बड़ी के कारण संघ शत्रुंजय तीर्थ में नहीं जा सका।

५८. जब संघ लौटकर आने लगा, तब संघ के कई एक मनुष्य कौतुकवश संघ के पहुँचने के पहले ही आसापल्ली नगरी में आ पहुँचे। वहां पर श्रीपूज्यजी के अनन्य-भक्त लोग किसी एक स्थानीय बनिये की दूकान पर बैठ गये। उन लोगों से दुकानदार बनिये ने पूछा, 'संघ के साथ कोई आचार्य भी हैं?' उन लोगों ने कहा—'हां हैं।' पुनः दुकानदार कहने लगा, 'हां धरा-मंडल पर आचार्य अनेक हैं, परन्तु भरतक्षेत्र में प्रद्युम्नाचार्य के समान तो कोई नहीं है।' इस बात को सुनकर उन लोगों को बड़ी हँसी आई और वे बोले कि, 'सेठजी! यह आपने बहुत सच कहा। मालूम होता है, आपके समान भी संसार में कोई नहीं है। आचार्य के समान तो भला

होता ही कहां से। हाँ, इस बात को हम भी मानते हैं कि जो प्रद्युम्नाचार्य से गुणों में अधिक हैं, वे भला प्रद्युम्नाचार्य के समान कैसे हो सकते हैं।'

जब आशापल्ली वासियों को सूचना मिली कि श्रीसंघ नगर के समीप पहुँच गया, तब अभयदंड नाम के नगर कोतवाल के तत्त्वावधान में स्थानीय लोगों का एक बड़ा समुदाय संघ को लिवा लाने के लिये संमुख पहुँचा। बड़े समारोह के साथ नगर-प्रवेश कराकर संघ को योग्य-योग्य स्थानों में ठहराया गया। श्रीपूज्यजी को स्वच्छ सुन्दर स्थान रहने के लिये दिया गया। वहां आचार्यश्री अपने मुनि मंडल के साथ ठहरे।

सेठ क्षेमंधर श्रीपूज्यजी की आज्ञा लेकर प्रद्युम्नाचार्य को वन्दना करने के लिये उपाश्रय में गया। आचार्य ने सेठजी से तीर्थ-वन्दन सम्बन्धी बातें पूछीं और उनके प्रति आदर दर्शाया और पूर्व प्रतिज्ञा को याद दिलाते हुए कहा कि, 'सेठजी आप अपना वचन भूल गये।' उत्तर में क्षेमंधर ने कहा—'मैं भला उस बात को कैसे भूल सकता हूं। उस प्रयोजन से तो यहां आना ही हुआ है।' प्रद्युम्नाचार्य ने अपने मन में सोचा कि, 'इस अवसर से हमें लाभ उठाना चाहिये। संघ में हमारे कई एक सांसारिक बन्धु आये हुये हैं, शास्त्रार्थ के बहाने उन सब को हम प्रतिबोध दे सकेंगे।' मनमें इस प्रकार निश्चय करके वे सेठ क्षेमंधर से कहने लगे—'सेठजी! तो अब विलम्ब किस बात का है?' सेठ ने कहा—'उठिये, अभी चलिये; देरी का क्या काम?' इस प्रकार सेठ क्षेमंधर के साथ प्रद्युम्नाचार्य श्रीजिनपतिसूरिजी के पास आया। साधु संप्रदाय के नियमानुसार बड़े-छोटे के हिसाब से दोनों ओर से वन्दनानुवंदन का व्यवहार प्रदर्शित किया गया।

तत्पश्चात् श्रीपूज्यजी ने प्रद्युम्नाचार्य से पूछा कि—'आपने कौन-कौनसे ग्रन्थ देखे हैं?' नई उम्र में स्वभावतः पैदा होने वाले अहंकार के अधीन होकर प्रद्युम्नाचार्य बोला कि—'वर्तमान काल में वर्तमान सभी ग्रन्थ हमने देखे हैं।' इस अहंकार भरे वाक्य को सुनकर भी श्रीपूज्यजी ने विचारा कि, 'यदि हम इसके वाक्यों में पहले ही पहले नुकताचीनी करेंगे तो, यह आकुल-व्याकुल होकर कुछ का कुछ बोलने लग जायगा। ऐसा होने से इसके शास्त्रीय ज्ञान का स्वरूप नहीं जाना जायगा। अतः श्रीपूज्यजी ने कहा—'आप अपने अभ्यस्त शास्त्रों का नाम तो बतलाइये?' उसने कहा, 'हम व्याकरण आदि लक्षण शास्त्र, माघकाव्य आदि महाकाव्य, कादम्बरी आदि कथा, महाकवि मुरारी प्रणीत नाटकादि, जयदेवसूरि रचित छन्दःशास्त्र, कन्दली, किरणावली, अभयदेवीय न्याय आदि तर्क, काव्यप्रकाशादि अलङ्कार और सभी सिद्धान्त ग्रन्थ हमने आनुपूर्विक देखे हैं।'

श्रीपूज्यजी मन ही मन कहने लगे—'इसने तो खूब गाल बजाये। इसका शास्त्रीय ज्ञान इतना है कि नहीं? जरा जांच तो करें।' श्रीपूज्यजी ने पूछा—'आचार्य! लक्षण का क्या स्वरूप है और

कितने भेद हैं।' प्रद्युम्नाचार्य काव्यप्रकाश के अनुसार लक्षण के स्वरूप और भेदों का विवेचन करने लगा। तब श्रीपूज्यजी ने विचारा कि यदि हम बीच में ही इसे रोकें-टोकेंगे, तो यह इसी पर अड़ जायगा। आयतन-अनायतन विषयक चर्चा नहीं हो सकेगी। इसलिये इसे बेरोक-टोक बोलने दिया जाय; जिससे यह अहंकार की चरम सीमा तक पहुंच जाय। इसलिए श्रीपूज्यजी ने ऐसा कोई वचन नहीं कहा, जिससे उसका मन म्लान हो।

प्रद्युम्नाचार्य ने काफी देर तक अपनी गल-गर्जना करके श्रीपूज्यजी से प्रश्न किया कि, 'आचार्य! अनायतन किस सिद्धान्त-ग्रन्थ में कहा है? आप व्यर्थ ही भोले-भाले लोगों को इस प्रकार बहका रहे हैं।' श्रीपूज्यजी ने जवाब दिया, 'दशवैकालिक, ओघनिर्युक्ति, पंचकल्प, व्यवहार आदि सिद्धान्त ग्रन्थों में अनायतन विषयक विवेचन ठीक तौर से किया गया है।' प्रद्युम्नाचार्य बोले कि, 'भगवन्! गाढ़ अभ्यास के कारण सम्पूर्ण ओघनिर्युक्ति मुझे अपने नाम की तरह अनुभूत है। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि उसमें अनायतन सम्बन्धी कोई चर्चा नहीं है।' जवाब में श्रीपूज्य जी ने कहा, 'आचार्य! दूर रहने दीजिये अन्य सिद्धान्तों को, यदि हम किसी तरह 'ओघनिर्युक्ति' से आपको यह सिद्ध करादें कि देवगृह और जिनप्रतिमा आयतन नहीं है, तब तो आप हमारी जीत हुई मानोगे?' उत्तर में उन्होंने कहा, 'हां, यह बात हमें मंजूर है। परन्तु आज तो देर बहुत हो गई है, वार्तालाप का समय कल प्रातःकाल का निश्चित रखिये। श्रीपूज्यजी ने कहा—'क्या हर्ज है, ऐसा सही।' प्रद्युम्नाचार्य क्षेमंधर को साथ लेकर अपनी पौषधशाला में चले गये। वहां पर सेठ रासल के पिता सेठ धरणेश्वर ने जिनपतिसूरिजी के पैर में फोड़े पर बँधी हुई पाटी को लक्ष्य कर व्यङ्ग वचन कहा कि, 'आपके गुरुजी के पैर में बँधे हुए चीरकटक का प्रमाण कल सुबह मालूम होगा।' इस बात को सुनकर क्रोधवश लाल नेत्र होकर सेठ क्षेमंधर ने कहा, 'रे लम्पट! समाज में प्रतिष्ठित बने बैठे तुझ जैसे से तो श्रीपूज्य के पैर में बँधे हुए चीरकटक की कहीं अधिक इज्जत है।'

इस तू-तू मैं-मैं को शान्त करते हुए प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'तुच्छ कारण को लेकर आप लोगों का कलह करना अच्छा नहीं है। प्रातःकाल सबके लिये अच्छा होगा और सभी के मान-प्रमाण जाने जायंगे।' वंदना करके इसके बाद क्षेमंधर सेठ श्रीपूज्यजी के पास आ गया। वहाँ पर—

यदपसरति मेषः कारणं तत् प्रहर्तुं, मृगपतिरपि कोपात् संकुचत्युत्पतिष्णुः।
हृदयनिहितवैरा गूढमन्त्रोपचाराः, किमपि विगणयन्तो बुद्धिमन्तः सहन्ते॥

[जिसके हृदय-मंदिर में विद्वेषाग्नि धधक रही हो, जिनकी गुप्त मंत्रणा दुर्ज्ञेय हो, ऐसे बुद्धिमान लोग भी अनुकूल समय की प्रतीक्षा में किसी शत्रुओं से किये जाने वाले दुर्व्यवहार को

भी चुपचाप सह लेते हैं। लड़ाई में मेढ़े का पीछे की ओर हटना हार का चिन्ह नहीं है, किन्तु जोर से टक्कर देने के लिये है। सिंह का सिकुड़ना-कमजोरी एवं भीरुता का चिन्ह नहीं है, किन्तु वह अपने शिकार पर ऊँची छलांग मारने के लिये सिकुड़ता है।]

धीर पुरुषों की भी यही नीति है। वे प्रथम ही प्रथम दुश्मन के साथ नम्रता से पेश आयेंगे। बाद में अपने पराक्रम का परिचय देगें। प्रद्युम्नाचार्य के साथ चर्चा को प्रारम्भ करते हुए, श्री-पूज्यजी ने भी इसी आदर्श को अपनाया था। परन्तु स्थूल बुद्धि के श्रावक लोग श्रीपूज्यजी के इस अभिप्राय को न जानते हुए कहने लगे, 'महाराज! प्रद्युम्नाचार्य ने अपने गाल फुला-फुलाकर बहुत कुछ कहा और उसके विरुद्ध आप कुछ भी नहीं बोले, यह कहां तक उचित है। जरा आप ही सोचें।' इसके उत्तर में महाराज कहने लगे, 'श्रावक लोगों! शान्त रहो, धैर्य धारण करो, उतावले मत बनों। कहावत है "एक ही सपने में रात खत्म नहीं हुआ करती है।" इधर ये बातें हो रही थीं, उधर प्रद्युम्नाचार्य की तरफ का हाल सुनिये—प्रद्युम्नाचार्य ने शास्त्रार्थ का रण-निमंत्रण स्वीकार तो कर लिया, परन्तु अब मानहानि का भय हुआ। प्रद्युम्नाचार्य ने अपने पक्ष के पंडितों को साथ लेकर 'ओघनिर्युक्ति' और उसके व्याख्या ग्रन्थों को देख देने के लिये रातों-रात दीपक जलाया, परन्तु घोर परिश्रम करने पर भी 'अनायतन के स्वरूप' को बतलाने वाला स्थल-प्रकरण उन्हें नहीं मिला। बड़ी निराशा हुई। आखिर उपायान्तर न देखकर पूछने के लिये श्रीपूज्यजी के पास अपने आदमी को भेजा। श्रीपूज्यजी ने उनके प्रश्न के अनुसार स्थल बतला दिया। बतलाये हुए उद्देश के अनुसार अनायतन सम्बन्धी प्रसंग मिल गया। उस प्रकरण की व्याख्या और गाथाओं के भावार्थ को हृदयङ्गम करके प्रद्युम्नाचार्य शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हो गये। प्रातःकाल होते ही हजारों नागरिक लोगों के साथ, अभयदंड नामक शहर कोतवाल की देख रेख में दूर-दूर से बुलाये हुये अनेक आचार्यों को लिए हुए प्रद्युम्नाचार्य श्रीपूज्यजी के निवास स्थान पर पहुंचे। श्रीपूज्यजी उस समय मकान के ऊपरी भाग में थे। ये लोग वन्दनादि शिष्टाचार का परिपालन बिना किये हुए मकान के नीचे भाग में ही जाकर बैठ गये। श्रीजिनपतिसूरिजी भी इनके आगमन की सूचना मिलने पर अपने परिवार के साथ नीचे आये। महाराज की वैयावच्च (सेवा) करने वाले जिनागरगणि ने उन लोगों की कपटक्रिया देखकर कहा, 'भगवन्! आपका आसन कहाँ बिछाऊँ? तीन तरफ का हिस्सा इन लोगों ने रोक लिया है।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'यदि और कोई बैठने के योग्य जगह नहीं है तो यहीं बिछा दो।' शिष्य ने कहा—'महाराज! यहां बैठने से योगिनी सन्मुख पड़ती है।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज सब भला करेंगे।' ऐसा कहकर महाराज उसी स्थान पर विराज गये।

उस समय भरी सभा में सेठ खेमंधर, और वाहित्र गोत्रीय उद्धरण आदि ने खड़े हो, हाथ जोड़कर आचार्यजी से विनती की कि, 'यह बड़े-बड़े आचार्यों का सम्मेलन आज अनेक दिनों में हमें देखने

को मिला है, इसलिये यदि आप लोग संस्कृत भाषा में बोलें तो, हमारे कानों को बड़ा सुहावना लगेगा।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'हाँ, इसमें क्या बुरा है? परन्तु यह बात आप प्रद्युम्नाचार्य से भी स्वीकार करवा लें।' श्रावकों ने प्रद्युम्नाचार्य से प्रार्थना की—'भगवन्! सुनते हैं कि देवता लोग परस्पर में सदैव संस्कृत भाषा ही बोलते हैं। परन्तु देवदर्शन हमें दुर्लभ हैं और संस्कृत सुनने का हम लोगों को बड़ा चाव है। इसलिये आप लोग हमारे ऊपर परम अनुग्रह करके संस्कृत भाषा बोलेंगे तो हमारी देवदर्शनेच्छा पूर्ण हो जायगी। वैसे भी आप दोनों आचार्यों ने अपनी सुन्दराकृति से देवताओं को मात कर दिया है।' हंसकर प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'श्रावक लोगों! आप लोग संस्कृत भाषा समझ जायेंगे?' वे बोले—'हाँ, महाराज! आपका कहना युक्त ही है। मारवाड़ में पैदा होने वाले इतना भी नहीं जानते कि बेर की गोलाई ऊपर है, नीचे है या बाँई ओर है। महाराज! कहाँ श्रीपूज्यजी, कहाँ आप और कहाँ हम लोग। आज यह आप लोगों का शुभ संयोग हमारे भाग्य से ही हो गया है। आप लोगों के शुभ संभाषण से यदि हम लोगों के कानों को सुख मिले तो यह बड़े सन्तोष की बात होगी। इस तरह के दुर्लभ समागम के होने की आगे बहुत कम सम्भावना है।' श्रावकों का इस प्रकार अत्यधिक अनुरोध देखकर प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'बहुत अच्छा, आप लोग कहते हैं, वैसा ही करेंगे।'

प्रद्युम्नाचार्य अपने साथ दवात, कलम, पुट्ठा आदि लिखने का साधन लाये थे। उसे देखकर श्रीपूज्यजी ने कहा—'इनका क्या बनेगा?' प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'संस्कृत भाषा बोलते समय यदि कोई अपशब्द निकल जाय तो उसको सिद्ध करने के लिये इन साधनों की आवश्यकता पड़ेगी।' श्रीपूज्य०—'जो पुरुष जबानी शब्द-सिद्धि करने में असमर्थ है और जो बिना लिखे सुने हुए अपशब्दों को हृदय में याद नहीं रख सकता, उसे संस्कृत भाषा में बोलने का क्या अधिकार है? वह पुरुष अपने प्रतिवादियों को जीतने की इच्छा कैसे रख सकता है? इसलिये कृपया आप अपने इस उपकरण को अलग फेंकिये।' महाराज के कहने से प्रद्युम्नाचार्य ने वे चीजें अलग रखदीं। अब नैयायिक पद्धति से 'अनायतन' विषय को लेकर दोनों आचार्य संस्कृत भाषा में खंडन-मंडनात्मक भाषण करने लगे। उस समय जैन-शास्त्रों में वर्णित भरतेश्वर और बाहुबलि के युद्ध की तरह उन दोनों आचार्यों का वाग्युद्ध देखने योग्य था। प्रद्युम्नाचार्य के तात्कालिक शास्त्रार्थ की शैली, युक्ति, प्रमाण देखने की जिन्हें इच्छा हो वे सज्जन प्रद्युम्नाचार्य कृत "वादस्थल" नामक ग्रन्थ को देखें। इसी तरह जिनको श्रीजिनपतिसूरि के अगाध पांडित्य का रसास्वाद लेना हो वे महानुभाव आचार्यश्री की रची हुई "वादस्थल" पुस्तक का अवलोकन करें। उससे विदित होगा कि महाराज ने किस प्रकार प्रद्युम्नाचार्य के वचनों का निराकरण करके सब लोगों के सामने खरतरगच्छ के मन्तव्यों की पुष्टि की है। इन दोनों ग्रन्थों के देखने से विद्वान् पाठकों को अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। शास्त्रार्थ के तमाम विषय को हमने इसलिये नहीं लिखा है कि लिखने से पुस्तक का आकार-प्रकार

बहुत बढ़ जायगा तथापि श्रावकों के मनोरंजन के लिये शास्त्रार्थ सम्बन्धी कुछ परिमित बातें लिखदी जाती हैं और ये बातें पाठकों के लिये उपयोगी भी सिद्ध होंगी; ऐसी आशा है। यदि सारा वादस्थल लिखा जाता तो हम समझते हैं उस जटिल एवं कठिन विषय का सारांश साधारण पाठकों के समझ में आना ही कठिन था।

प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'जिस देवगृह में मोक्षार्थी साधु निवास करते हैं, आपके कथनानुसार वह अनायतन ही सही, परन्तु बाहर रहते हुए साधु लोग जिस देवगृह की "सार" (सँभाल) करते हैं, उसे आप क्या कहेंगे।' श्रीपूज्यजी उनका यह कथन सुनकर खूब हँसे और बोले, 'आचार्य! आपने अपने वक्तव्य में "सारा" शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द का संस्कृत भाषा में प्रयोग करते हुये आपने वर्तमान-कालवर्ती शास्त्र ज्ञान का परिचय अच्छी तरह दे दिया।' उसने कहा—'क्या 'सारा' शब्द नहीं है।' श्रीपूज्य०—'हाँ, नहीं है।' प्रद्युम्नाचार्य—'सब लोगों में प्रसिद्ध 'सारा' शब्द को आप केवल अपने कथन मात्र से ही अपलापित नहीं कर सकते।' श्रीपूज्य०—'लोगों से आपका मतलब हल चलाने वाले, गोपालन करने वाले लोगों से है अथवा व्याकरणादि विद्याओं के पारङ्गत पंडित-गणों से? यदि आप कहें कि मेरा अभिप्राय हलवाहकादि से है, तो कहना पड़ेगा कि संस्कृत भाषा के बीच में हलवाहकादि की भाषा बोलते हुए आप पंडितों की सभा में अपने आपका गौरव घटाते हैं और यदि आप कहें कि 'सारा' शब्द के उच्चारण से मैं पंडितों का अनुकरण कर रहा हूं, तो आप कृपया इसकी पुष्टि-समर्थन के लिये किसी पंडित को साक्षी रूप से उपस्थित करिये या किसी पंडित ने किसी पुस्तक में कहीं 'सारा' शब्द का प्रयोग किया हो तो हमें दिखलाइये।'

इस फटकार को सुनकर प्रद्युम्नाचार्य आकुल-व्याकुल हो गया और बोला—'जैसे मारण-वारण इत्यादि शब्दों का प्रयोग है वैसे ही सारा शब्द का प्रयोग हमने किया है।' श्रीपूज्यजी हँसकर बोले, 'आचार्यजी! आपने वर्तमान कालवर्ती शास्त्रों की जानकारी का बड़ा श्रेष्ठ परिचय दिया है। धन्य हैं आप और धन्य है आपका शास्त्रज्ञान।' प्रद्युम्नाचार्य—'अपनी कमजोरी का अनुभव करके कुछ-कुछ खिन्न होकर बोला, 'सिद्धान्त-ग्रन्थों का विचार प्रारम्भ करके बीच में यह शब्दापशब्दों की विचारणा क्यों शुरु करदी। आयतन-अनायतन विषयक निर्णय करने के लिये प्रस्तुत सिद्धान्त ग्रंथों को वाचना चाहिये।' श्रीपूज्यजी ने कहा, 'हाँ, ऐसा करिये।' उसी समय प्रद्युम्नाचार्य ने स्थापनिका रखदी और उसके ऊपर ओघनिर्युक्ति सूत्र-वृत्ति पुस्तक और सब प्रकार के पानों पत्रों से भरी हुई कपलिका (बस्ता) रख दी। श्रीपूज्यजी ने कहा, 'ग्रन्थों को पढ़कर कौन सुनायेगा।' छल-छिद्र से भरे हुए प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'मैं पढ़कर सुनाऊँगा।' सरल हृदय वाले श्रीपूज्यजी ने विचारा कि, 'क्या लोभवश इसकी बुद्धि विचलित हो गई, जो यह हमारे सामने वाचक पद को स्वीकार करता हुआ अपने आपकी लघुता को भी ध्यान में नहीं लाता। खैर, इसकी मर्जी।' प्रद्युम्नाचार्य निम्नलिखित गाथाओं को वांचने लगे—

नाणस्स दंसणस्स य, चरणस्स तत्थ होइ वाघाओ ।
वज्जिज्ज वज्जभीरु, अणाययणवज्जउ खिप्पं ॥
जत्थ साहम्मिया बहवे, भिन्नचित्ता अणारिया ।
मूलगुणप्पडिसेवी, अणाययणं तं विजाणाहि ॥
जत्थ साहम्मिया बहवे, भिन्नचित्ता अणारिया ।
उत्तरगुणपडिसेवी, अणाययणं तं विजाणाहि ॥
जत्थ साहम्मिया बहवे, भिन्नचित्ता अणारिया ।
लिंगवेसपडिच्छन्ना, अणाययणं तं वियाणाहि ॥
आययणं पि य दुविहं, दव्वे भावे य होइ नायव्वं ।
दव्वम्मि जिणहराई, भावे मूलुत्तरगुणेसु ॥
जत्थ साहम्मिया बहवे, भिन्नचित्ता बहुस्सुया ।
चरित्तायारसंपन्ना आययणं तं वियाणाहि ॥
सुंदरजणसंसग्गी, सीलदरिद्दं कुणइ य सीलड्ढं ।
जह मेरुगिरिलग्गं, तणं पि कणयत्तणमुवेइ ॥

[जहाँ पर रहने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का व्याघात होता हो, उसे अनायतन कहते हैं, पापभीरु साधु उस स्थान को बहुत जल्दी छोड़ दे ।

जहाँ पर भिन्न चित्त वाले, अनार्य मूलगुणों के विरोधी अनेक साधर्मी रहते हों, उसे अनायतन जानों ।

जहां भिन्न-भिन्न चित्त वाले उत्तरगुणों के विरोधी बहुत से समान धर्म वाले रहते हैं, उसे भी अनायतन समझो ।

जहाँ पर भिन्न चित वाले, अनाचारी केवल साधु के चिह्न और वेश को धारण करने वाले बहुत से समानधर्मा पुरुष रहते हैं, उसे अनायतन कहना चाहिये ।

द्रव्यायतन और भावायतन भेद से आयतन दो प्रकार का होता है । द्रव्य में जिनगृहों की गणना है, मूलगुणों और उत्तरगुणों सहित भिन्न चित्त वाले बहुश्रुत और चैत्याचार सम्पन्न बहुत से सहधर्मी जहां रहते हों उसे आयतन कहते हैं । इसी का नाम भावायतन भी है ।

अच्छे सदाचार सम्पन्न मनुष्यों का संसर्ग शील रहित मनुष्यों को भी शीलवान् बना देता है। जैसे स्वर्णाचल मेरु नाम के पहाड़ में ऊगा हुआ घास भी सुवर्ण बन जाता है।]

श्रीपूज्य द्वारा बताई हुई इन गाथाओं को प्रद्युम्नाचार्य बांचने लगे और पूज्यजी महाराज अस्खलित वाणी से इनकी हाथों-हाथ व्याख्या करने लगे। इसके बाद अपने बात की स्थापना के लिये जिसकी बुद्धि में कपट भरा हुआ है, ऐसे प्रद्युम्नाचार्य ने सबकी आंखों में धूल झोंकते हुये उस प्रकरण को टालने के लिये एक साथ ही दो पन्नों को उलट दिया और अन्य गाथा-वृत्ति को बांचने लगे।

श्रीपूज्यजी के पास बैठ हुए जिनहितोपाध्याय ने इस चालाकी को देखकर प्रद्युम्नाचार्य का हाथ पकड़कर कहा—'आचार्य! इन छोड़े हुए पिछले दो पन्नों को बांचकर आगे बांचिये।' चालाकी के पकड़े जाने से प्रद्युम्नाचार्य आकुल-व्याकुल हो गये और योंही आगे पीछे के पन्नों को उलटने लगे।

इस अवसर पर 'हेड़ावाहक' उपाधि के धारण करने वाले श्रीमाल वंशोत्पन्न वीरनाग नामक श्रावक ने मामा पदवी धारी अभयड़ नामक शहर के कोतवाल से कहा—'मामा! आपके नगर में क्या उसी पुरुष को कैद किया जाता है, जो रात्रि में चोरी करे और दिन दहाड़े चोरी करने वाला यों ही छोड़ दिया जाता है?' इस बात को सुनकर कोतवाल चौंका और इधर-उधर देखता हुआ बोला, 'हेड़ावाहक आप क्या कहते हैं?' वीरनाग बोला—'मामा साहब देखिये, तुम्हारे गुरु प्रद्युम्नाचार्य ने चालाकी से दो पन्नों को छिपा दिया।' इस बात को सुनकर चिढ़े हुए अभयड़ नायक ने चमड़े की बेंत द्वारा वीरनाग की पीठ पर आघात किया। इधर प्रद्युम्नाचार्य चालू प्रकरण को बाँचने लगे और पूर्ववत् पूज्यश्रीजी उसकी व्याख्या करने लगे। मानों श्रीपूज्यजी के भाग्य-बल से प्रेरित प्रद्युम्नाचार्य ने कहा, आचार्य! इस रीति से तो देवगृह ही अनायतन होता है, प्रतिमा अनायतन नहीं समझी जाती और आप तो प्रतिमा को भी अनायतन बतलाते हैं।' श्रीपूज्यजी—'हँसकर बोले, आप स्थिरता रखिये। इस सभा के बीच आपने देवगृह अनायतन होता है, यह तो स्वीकार कर लिया। इससे हमारे सभी मनोरथ सिद्ध हो गये। देवगृह और प्रतिमा दोनों को ही आप अनायतन समझिये।' प्रद्युम्नाचार्य बोले—'आपके कहने से समझें या इसमें कोई युक्ति भी है?' श्रीपूज्यजी बोले—'युक्ति और प्रमाण रहित वचन हलवाहकादि गँवार लोग ही बोला करते हैं, हम नहीं बोलते।' उन्होंने कहा—'तो वह कौन-सी युक्ति है?' श्रीपूज्यजी ने विचार कर कहा, 'सुनिये—

एवमिणं उवगरणं धारेमाणो विहीइ परिसुद्धं।
होइ गुणाणाययणं अविहि असुद्धे अणायणं॥

[देवगृह में जो जिन प्रतिमा विधि परिशुद्ध उपकरण को धारण करती है, वह गुणों का आयतन समझी जाती है और जो प्रतिमा अविधिपूर्वक अशुद्ध उपकरण को धारण करती है, उसे अनायतन कहते हैं।]

श्रीपूज्यजी के मुख से इस गाथा की व्याख्या सुनकर प्रद्युम्नाचार्य उदास हो मौन धारण करके चुपचाप बैठ गये। इसके बाद सेठ क्षेमंधर ने हाथ जोड़कर प्रद्युम्नाचार्य से पूछा कि, 'जिन प्रतिमा अनायतन है या नहीं।' प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'सेठजी इस गाथा के अर्थ से तो यही जाना जाता है कि जिनप्रतिमा भी अनायतन होती है।'

तत्पश्चात् नेत्रों में आनन्दाश्रु-धारण करते हुए सेठ क्षेमंधर ने अपने मस्तक के केशों से प्रद्युम्नाचार्य के चरण पोंछे और पुत्र-स्नेह से बोला—'वत्स! श्रीजिनदत्तसूरिजी के मार्ग में लगे हुए मुझे इतने दिन हो गये, परन्तु मेरे मन में यह बात नहीं जमी थी कि लाखों रुपये लगाकर ऊँचे तोरण वाला जो देवगृह बनाया जाता है, अविधि के कारण वह भी अनायतन हो सकता है? आज तुम्हारे मुंह से ऐसा देवगृह भी अनायतन हो सकता है, यह बात सुनकर मुझको बड़ी खुशी हुई।' प्रद्युम्नाचार्य ने कहा, 'सेठ क्षेमंधर! दूसरे सिद्धान्तों के प्रमाण दिखलाकर मैं यह सिद्ध करूँगा कि देवगृह अनायतन नहीं होता।'

प्रद्युम्नाचार्य ने श्रीपूज्यजी से कहा कि—'आचार्यजी! हमारे नाम से अंकित पराजय सम्बन्धी रासकाव्य और चौपाई वगैरह मत बनवाना और न किसी से पढ़वाना।' इसके बाद श्रीपूज्यजी ने सेठ क्षेमंधर की जबानी अपने संघ में यह घोषणा करवादी कि, 'जो हमारी आज्ञा मानता है, उसे चाहिये कि प्रद्युम्नाचार्य के पराजय सम्बन्धी अर्थ से पूर्ण रासकाव्य और चौपाई वगैरह न बनावें और न दूसरों को पढ़ावें। प्रेमार्द्र-हृदय से आंखों में अश्रु लाकर सेठ क्षेमंधर ने कहा—'वत्स! मैंने तुम्हें बदनाम करने के लिये यह वाद आरम्भ नहीं कराया है। मेरा अभिप्राय तो यह था कि विद्यापात्र, आचार्य पद प्राप्त मेरे पुत्र को प्रतिबोध दिलवाकर युगप्रधान श्रीजिनपतिसूरिजी का शिष्य बना दूं। पिता पुत्र में जबकि इस प्रकार की बातें हो रही थीं उसी समय अति प्रमुदित हुए श्रावकों के साथ अभयड दंडनायक का हाथ पकड़कर श्रीपूज्यजी वहां से उठकर मकान के ऊपर वाले तल्ले में चले गये। अन्यान्य नागरिक लोगों के साथ अभयड दण्डनायक वन्दना करके नीचे आ गया। प्रद्युम्नाचार्य मानसिक परिताप के कारण म्लान मुख हुए, लज्जावश पृथ्वी की ओर देखते हुए सेठ क्षेमंधर के साथ अपनी पौषधशाला में चले गये। वहां एकत्रित हुए अन्य तमाम कौतुहल-प्रेमी लोग भी अपने-अपने घरों को गये।

५६. अपने गुरु प्रद्युम्नाचार्य के मानसिक कष्ट को देखकर दंडनायक अभयड को बड़ा दुःख हुआ, इसी कारण सारे नगर में शून्यता आ गई, और इसके विपरीत संघ में अति आनन्द

हुआ। भां० संभव, वैद्य सहदेव ठ० हरिपाल, सेठ क्षेमंधर, वाहित्रिक उद्धरण और सेठ सोमदेव आदि प्रमुख लोगों की ओर से विजय के उपलक्ष में बड़े विस्तार के साथ एक महोत्सव मनाया गया।

अभयड़ दंडनायक ने सोचा कि, 'ये लोग आगे जाकर मेरे गुरु की निन्दा करेंगे, इसलिये इन लोगों को किसी तरह यहाँ शिक्षा दे दी जाय तो बड़ा अच्छा हो।' ऐसा विचार कर अभयड़ दंडनायक ने मालव देश में स्थित गुर्जर-कटक के प्रतीहार जगदेव के पास विज्ञप्ति पत्र सहित एक मनुष्य को भेजा। दूसरे दिन संघ को राजाज्ञा सुना दी गई कि—"महाराजाधिराज श्रीभीमदेव का हुक्म है कि आप लोग हमारी आज्ञा के बिना यहाँ से नहीं जा सकेगें।" इतना ही नहीं संघ की चौकसी के लिये गुप्त रूप से एक सौ सैनिकों की गारद भी वहाँ डाल दी। संघ के लोग डर कर अपने-अपने मन में नाना प्रकार की संभावना करने लग गये।

अपने पक्ष की विजय देखकर हिलोरे लेते हुए परम आनन्द के वश होकर भंडशाली सेठ संभव श्रीपूज्यजी के पास आकर हर्ष पूर्ण गद्‌गद् वाणी से कहने लगा, "प्रभो! हम आपके पराक्रम को जानते हैं। सिंह के बच्चे भी सिंह ही होते हैं न कि शृगाल। गुजरातियों में प्रायः कपट बाहुल्य है, इसलिये इन कपटियों के साथ शास्त्रार्थ करने में सफलता को भी विरला ही पाता है। मैंने आप को प्रद्युम्नाचार्य के साथ वाद करने की अनुमति इसलिये ही तो नहीं दी थी कि-यदि इन कपटियों के कूट प्रयोग से कदाचित् कोई निन्दा हो जायगी तो फिर लोगों के सामने ऊँचा मस्तक करके बोल नहीं सकेंगें। परन्तु महाराज! आपने तो बड़ा ही अच्छा किया कि गुजरात प्रान्त में समस्त आचार्यों के मुकुटभूत प्रद्युम्नाचार्य को सब लोगों के सामने हराकर, उसकी बोलती बन्द करके दन्त खट्टे कर दिये। महाराज! आपके इस चरित्र से खरतरगच्छ को अपार हर्ष हुआ। और आपके सुधास्यन्दी भाषण को सुनकर श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज के भाषण से मिलने वाले अमृतपान की अभिलाषा को हम लोग भूल गये। प्रभो! आपके धैर्य को देखकर भगवती शासनदेवता आज भी आपकी सहायता के लिये तैयार हैं। भगवन्! आपकी इस प्रकार की वादलब्धि को देखकर भगवती सरस्वती कहती है कि आज मेरी कृपावल्ली फलवती हो गई। पूज्यवर! आपका अपूर्व साहस देखकर इन्द्र आदि देव भी आपको मुँह माँगा वर देने को तैयार हैं।" इस प्रकार भंडशाली ने महाराज की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इसके बाद श्रीमालवंश भूषण वैद्य सहदेव, सेठ लक्ष्मीधर, ठाकुर हरिपाल, सेठ क्षेमंधर, वाहित्रिक उद्धरण आदि संघ-प्रधान पुरुषों ने महाराजश्री के पास आकर अभयड़ दंडनायक का दुष्ट अभिप्राय कहा। महाराज ने खूब सोचकर जवाब दिया कि, 'श्रावक महानुभावों! आप लोग किसी

प्रकार से मन में परिताप न करें; श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज की चरण कृपा से सब भला होगा।' अब आप लोगों के प्रति मेरा आदेश यह है कि, 'श्रीपार्श्वनाथ भगवान की आराधना करने के लिये स्नात्र, कायोत्सर्ग आदि धार्मिक कृत्य करने के लिये उद्यत हो जावें।' श्रीपूज्यजी के उपदेश से सारा ही संघ धर्म कर्म में उद्यत हो गया। पूजा, धर्म-ध्यान करते-करते चौदह दिन बीत गये। परन्तु फिर भी वहाँ से संघ के निकलने का कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। तब संघ के लोगों ने यह मंत्रणा की कि अपने साथ की दो सौ ऊँठनी अपने को तैयार कर लेनी चाहिये। प्रातःकाल होते ही इनको लेकर ऐसा साहस करेंगे; जिससे लोग अपने-अपने स्थानों पर पहुँच जायें।

अभयड़ दंडनायक के भेजे हुए मनुष्य ने वहाँ पहुँच कर सेनापति जगदेव परिहार की सेवा में हाजिर हुआ और अपने भेजने वाले मालिक का संदेश कहते हुए वह पत्र उनके चरणों में भेंट किया। जगदेव की आज्ञा से उनके कर्मचारी ने पत्र को पढ़कर सुनाया। उसमें लिखा था कि—'अपने देश में इस समय बड़े-बड़े धन संपन्न, सपादलक्ष देश का एक संघ आया हुआ है। यदि आपकी आज्ञा हो तो, सरकारी घोड़ों के लिये दाने का बन्दोबस्त कर दूं।' इस समाचार को सुनकर जगदेव आग बबूला हो गया और उसी क्षण अपने आज्ञाकारी के हाथ से एक आज्ञा पत्र लिखवाया। उस पत्र का आशय यह था कि—'मैंने बड़े कष्ट से अजमेर के अधिपति श्री पृथ्वीराज के साथ संधि की है। यह संघ अजमेर सपादलक्ष देश का है। इसलिये इस संघ के साथ छेड़-छाड़ बिलकुल भूल कर भी मत करना। यदि करोगे तो, याद रखना, जीते जी तुमको गधे की खाल में सिला दूँगा।' राजाज्ञा से जवाब भेजा गया। उस मनुष्य ने भी शीघ्र गति से पहुंचकर दंडनायक को पत्र दिया।

आये हुए इस जवाब को पाकर अभयड़ की आशालताओं पर पाला पड़ गया। वह ठंडा होगया और उसकी नानी मर गई। फलस्वरूप अभयड़ ने शीघ्र जाकर उन लोगों से क्षमा माँगते हुए बड़े आदर सम्मान के साथ संघ को वहां से विदा किया। संघ वहां से चलकर अनहिलपाटन नगर पहुंचा। वहां पर श्रीपूज्यजी ने अपने गच्छ के चालीस आचार्यों को इकट्ठा करके नाना प्रकार के वस्त्र देकर उनका सम्मान किया।

६०. इसके बाद आचार्यश्री संघ के साथ लवणखेटक नाम के नगर में गये। वहां पर पूर्णदेवगणि, मानचन्द्रगणि, गुणभद्रगणि आदि को क्रम से वाचनाचार्य की पदवी दी। इसके बाद पुष्करणी नाम की नगरी में जाकर सं० १२४५ के फाल्गुन मास में धर्मदेव, कुलचन्द्र, सहदेव, सोमप्रभ, सूरप्रभ, कीर्तिचन्द्र, श्रीप्रभ, सिद्धसेन, रामदेव और चन्द्रप्रभ आदि मुनियों को तथा संयमश्री, शान्तमति, रत्नमति आदि साध्वियों को दीक्षा दी। सं० १२४६ में श्रीपत्तन में श्रीमहावीर

प्रतिमा की स्थापना की। सं० १२४७ और १२४८ में लवणखेड़ा में रहकर मुनि जिनहित को उपाध्याय पद दिया। सं० १२४९ में पुनः पुष्करिणी आकर मलयचंद्र को दीक्षा दी। सं० १२५० में विक्रमपुर में आकर साधु पद्मप्रभ को आचार्य पद दिया और सर्वदेवसूरि नाम से उनका नाम परिवर्तन किया। सं० १२५१ में वहां से मांडव्यपुर में आकर सेठ लक्ष्मीधर आदि अनेक श्रावकों को बड़े ठाठ-बाट से माला पहनाई।

६१. वहां से अजमेर के लिये विहार किया। वहां पर मुसलमानों के उपद्रव के कारण दो मास बड़े कष्ट से बिताये। तदनन्तर पाटण आये और पाटण से भीमपल्ली आकर चातुर्मास किया। कुहियप ग्राम में जिनपालगणि को वाचनाचार्य पद दिया। राणा श्रीकेल्हण की ओर से विशेष आग्रह होने के कारण पुनः लवणखेड़ा जाकर 'दक्षिणावर्त आरात्रिकावतारणत्व' बड़ी धूमधाम से मनाया। सं० १२५२ में पाटण आकर विनयानन्दगणि को दीक्षित किया। सं० १२५३ में प्रसिद्ध भंडारी नेमिचंद्र श्रावक को प्रतिबोध दिया। इसके बाद मुसलमानों द्वारा पाटण नगर का विध्वंस होने पर महाराज ने घाटी गांव में आकर चातुर्मास किया। सं० १२५४ में श्री धारा नगरी में जाकर श्रीशान्तिनाथदेव के मंदिर में विधिमार्ग को प्रचलित किया। अपने तर्क सम्बन्धी परिष्कारों से महावीर नाम के दिगम्बर को अतिरंजित किया और वहीं पर रत्नश्री को दीक्षित किया। आगे चलकर यही महासती प्रवर्तिनी पद को आरूढ़ हुई। तत्पश्चात् महाराज ने नागद्रह नामक गाँव में चौमासा किया। सं०१२५६ की चैत्र वदि पंचमी के दिन नेमिचंद्र, देवचंद्र, धर्मकीर्ति और देवेन्द्र नाम के पुरुषों को लवणखेट में व्रती बनाया। सं० १२५७ में श्री शान्तिनाथदेव के विशाल मन्दिर की प्रतिष्ठा करनी थी, परन्तु प्रशस्तशकुन के अभाव में विलम्ब हो गया। इसलिये वही प्रतिष्ठा सं० १२५८ की चैत्र वदि ५ को की गई और विधिपूर्वक मूर्ति स्थापना तथा शिखर-प्रतिष्ठा भी की गई। वहां पर चैत्र वदि २ के रोज वीरप्रभ तथा देवकीर्ति नामक दो श्रावकों को साधु बनाया। सं० १२६० में आषाढ़ वदि ६ के दिवस वीरप्रभगणि और देवकीर्तिगणि को बड़ी दीक्षा दी गई और उनके साथ ही सुमतिगणि एवं पूर्णभद्रगणि को व्रत दिया गया तथा आनन्दश्री नाम की आर्या को 'महत्तरा' का पद दिया।

तदनन्तर जेसलमेर के देवमंदिर में फाल्गुन सुदि द्वितीया को श्री पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा की स्थापना की। इस का उत्सव सेठ जगद्धर ने बड़े विस्तार के साथ किया। सं० १२६३ फाल्गुन वदि चतुर्थी को लवणखेड़ा में महं० कुलधर कारित महावीर प्रतिमा की स्थापना की। उक्त स्थान में ही नरचन्द्र, रामचन्द्र, पूर्णचन्द्र और विवेकश्री, मंगलमति, कल्याणश्री, जिनश्री आदि साधु-साध्वियों को दीक्षा देकर धर्मदेवी को प्रवर्तिनी पद से भूषित किया। उसी अवसर पर वहां ठा० आल्हण आदि वागडीय श्रावक समुदाय श्रीपूज्यजी की चरण वन्दना करने के लिये आ गया

था। लवणखेड़ा में ही सं० १२६५ में मुनिचन्द्र, मानचन्द्र, सुन्दरमति, और आसमति इन चार स्त्री-पुरुषों को मुनिव्रत में दीक्षित किया। सं० १२६६ में विक्रमपुर में भावदेव, जिनभद्र तथा विजयचन्द्र को व्रती बनाया। गुणशील को वाचनाचार्य का पद दिया और ज्ञानश्री को दीक्षा देकर साध्वी बनाया। सं० १२६६ में जाबालीपुर में महं० कुलंधर के द्वारा कारित श्रीमहावीर प्रतिमा को विधिचैत्यालय में बड़े समारोह से स्थापित की। श्रीजिनपालगणि को उपाध्याय पद दिया। धर्मदेवी प्रवर्तिनी को महत्तरा पद देकर प्रभावती नामान्तर किया। इसके अतिरिक्त महेन्द्र, गुणकीर्ति, मानदेव, चन्द्रश्री तथा केवलश्री इन पाँचो को दीक्षा देकर 'विक्रमपुर' की ओर विहार कर गये।

६२. सं० १२७० में बागड़ी लोगों की प्रार्थना स्वीकार करके 'वागड़' देश में गये। वहाँ जाकर दारिद्रेरक नाम के नगर में सैंकड़ों श्रावक-श्राविकाओं को सम्यक्त्व, मालारोपण, परिग्रह परिमाण, दान, उपधान, उद्यापन आदि धार्मिक कार्यों में लगाया और बड़े विस्तार के साथ सात नन्दियां की। सं० १२७१ में बृहद्वार में संमुखागत श्री आसराज राणक आदि समाज के मुख्य-मुख्य लोगों के साथ ठाकुर विजयसिंह से विस्तार पूर्वक किये जाने वाले उद्यापन में सामिल हुये और पूर्ववत् नन्दियों की रचना करके उत्सव को सफल बनाया। वहां पर मिथ्यादृष्टियों की मिथ्या क्रिया को बंद कराया। इससे वहां के रहने वाले श्रावक वर्ग के हृदयों में अत्यधिक प्रमोद का संचार हुआ।

सं० १२७३ में बृहद्वार में लोकप्रसिद्ध 'गंगादशहरा' पर्व पर गंगा-स्नान करने के लिये बहुत से राणाओं के साथ नगरकोट के महाराजाधिराज श्री पृथ्वीचन्द्र भी आये हुये थे। उनके साथ में मनोदानन्द नाम का एक काश्मीरी पंडित रहता था। उस पंडित को जिनप्रियोपाध्याय के शिष्य श्रीजिनभद्रसूरि (जिनदास) ने जिनपतिसूरिजी के साथ शास्त्रार्थ करने को उकसाया। पंडित मनोदानन्द ने कावे में दिन के दूसरे पहर पौषधशाला के द्वार पर शास्त्रार्थ का पत्र चिपकाने के लिये अपने एक विद्यार्थी को भेजा। दिन के दूसरे पहर के समय उपाश्रय में आकर वह पत्र चिपकाने को तैयार हुआ। श्रीपूज्यजी के शिष्य धर्मरुचिगणि ने विस्मय वश होकर अलग ले जाकर उससे पूछा—'यहां तुम क्या कर रहे थे।' ब्राह्मण बालक ने निर्भय होकर उत्तर दिया कि, 'राजपंडित मनोदानन्दजी ने आपके गुरु श्री जिनपतिसूरिजी को लक्ष्य करके यह पत्र चिपकाने को दिया है।' उस विद्यार्थी की बात सुनकर हँसते हुए धर्मरुचिगणिजी ने कहा—'रे ब्राह्मण बालक! हमारा एक सन्देश पंडितजी को कह देना कि—'पं० श्रीजिनपतिसूरिजी के शिष्य धर्मरुचिगणि ने मेरी जबानी कहलवाया है कि पं० मनोदानन्दजी! यदि आप मेरा कहना मानें तो आप पीछे हट जायँ तथा अपना पत्र वापिस ले लें, अन्यथा आपके दाँत तोड़ दिये जायँगे। अभी न सही किन्तु बाद में आप

अवश्य ही मेरी सलाह का मूल्य समझेंगे।' उसी विद्यार्थी से पं० मनोदानन्द के विषय में जानने योग्य सारी बातें पूछकर उसे छोड़ दिया। धर्मरुचिगणि ने यह समस्त वृतान्त श्रीपूज्यजी के आगे निवेदन किया। वहाँ पर उपस्थित ठ० विजय नामक श्रावक ने शास्त्रार्थ-पत्र सम्बन्धी बात सुनकर अपने नौकर को उस पत्र चिपकाने वाले विद्यार्थी के पीछे भेजा और कहा कि—'तुम इस लड़के के पीछे-पीछे जाकर जांच करो कि यह लड़का किस किस स्थान पर जाता है। हम तुम्हारे पीछे ही आरहे हैं।' इस प्रकार आदेश पाकर वह नौकर उक्त कार्य का अनुसंधान करने के लिये लड़के के चरण चिन्हों को देखता हुआ चला गया।

अनेक पंडित प्रकांडों को शास्त्रार्थ में पछाड़ने वाले प्रगाढ़ विद्वान् यशस्वी श्रीजिनपतिसूरिजी ने अपने आसन से उठकर अपने अनुयायी मुनिवरों को कहा कि, 'शीघ्र वस्त्र धारण करो और तैयार हो जाओ। स्वयं भी तैयार हो गये। शास्त्रार्थ करने को चलना है।' महाराज को जाने को तैयार हुए देखकर मुनि जिनपालोपाध्याय और ठा० विजय श्रावक कहने लगे, 'भगवन्! यह भोजन का समय है, साधु लोग दूर से विहार करके आये हैं। इसलिये आप पहले भोजन करें। बाद में वहाँ जायें।' उन लोगों के अनुरोध से महाराज भोजन करके उठे। श्रीजिनपालोपाध्यायजी ने महाराज के चरणों में वन्दना करके प्रार्थना की कि, 'प्रभो! मनोदानन्द पंडित को जीतने के लिये आप मुझे भेजें। आपकी कृपा से मैं उसे हरा दूंगा। भगवन्! प्रत्येक साधारण मनुष्य से आप यदि इस प्रकार वाद-प्रतिवाद करेंगे तो फिर हम लोगों को साथ लाने का क्या उपयोग है। उस मामूली पं० मनोदानन्द को हराने के लिये आप इतने व्यग्र क्यों हो गये हैं। कहा भी है:—

कोपादेकतलाघातनिपातमत्तदन्तिनः।
हरेर्हरिणयुद्धेषु कियान् व्याक्षेपविस्तरः॥

[अपने चरण की एक चपेट से मस्त हाथियों के मारने वाले सिंह को हरिणों के साथ युद्ध करने में कोई विशेष व्यग्र होने की जरूरत नहीं है।]

राजनीति में भी पहले पैदल सेना का युद्ध करती है और बाद रण-विद्या विशारद सेनापति लड़ा करते हैं।'

श्रीपूज्यजी ने कहा—'उपाध्यायजी! आप जो कहते हैं वह यथार्थ है, किन्तु पंडित की योग्यता कैसी है यह मालूम नहीं।' उपाध्यायजी ने कहा—'पंडित कैसा भी क्यों न हो, सब जगह आपकी कृपा से विजयसुलभ है।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'कोई हर्ज नहीं हम भी चलते हैं, किन्तु तुम्हीं बोलना।' उपाध्यायजी ने कहा—'महाराज! आपकी उपस्थिति में लज्जा वश मैं कुछ भी नहीं बोल सकूँगा। इसलिये आपका यहीं विराजना अच्छा है।'

श्रीजिनपालोपाध्याय का विशेष आग्रह देखकर महाराजश्री ने प्रसन्न मन से मन्त्रोच्चारण के साथ मस्तक पर हाथ रखकर धर्मरुचिगणि, वीरभद्रगणि, सुमतिगणि और ठाकुर विजयसिंह आदि श्रावकों के साथ उपाध्यायजी को मनोदानन्द पंडित को जीतने के लिये भेज दिया। पंडित जिनपालोपाध्याय न ग र को छोड़ य राजाधिराज श्री पृथ्वीचन्द्र के सभा-भवन में अपने परिवार के साथ पहुँचे।

६३. उस समय वहाँ पर पूर्व वर्णित गंगा–यात्री राणा लोग भी महाराजाधिराज का कुशल मंगल पूछने के लिये आये हुए थे। उपाध्यायजी ने सुन्दर श्लोकों द्वारा राजा पृथ्वीचन्द्र की समयानुकूल प्रशंसा करके वहां पर बैठे हुए पं० मनोदानन्द को सम्बोधन करके कहा, 'पंडितरत्न! आपने हमारी पौषधशाला के द्वार पर विज्ञापन–पत्र किसलिये चिपकाया था।' उसने कहा, 'आप लोगों को जीतने के लिये।' उपाध्यायजी ने कहा, 'बहुत अच्छा, किसी एक विषय को लेकर पूर्व पक्ष अङ्गीकार कीजिये।' पंडित—'आप लोग षड्दर्शनों से बहिर्भूत हैं। इस बात को मैं सिद्ध करूँगा, यही मेरा पक्ष है।' उपाध्याय—'इसे न्यायानुसार प्रमाण सिद्ध करने के लिये अनुमान स्वरूप बाँधिये।' पंडित—"विवादाध्यासिता दर्शनबाह्याः, प्रयुक्ताचारविकलत्वात् म्लेच्छवत्" अर्थात् वाद–प्रतिवाद करने वाले जैन–साधु छहों दर्शनों से बहिष्कृत हैं, प्रयुक्त आचार में विकल होने से म्लेच्छों की तरह। श्री उपाध्याय हँसकर बोले—'पंडितराज मनोदानन्द! आपके कहे हुये इस अनुमान में कई दूषण दिखला सकता हूँ।' पंडित—'हाँ, आप अपनी शक्ति के अनुसार दिखलावें। परन्तु इसका भी ध्यान रहे कि उन सबका आपको समर्थन करना पड़ेगा।' उपाध्याय, 'पंडितराज! सावधान होकर सुनिये—आपने कहा—"विवादाध्यासिता दर्शणबाह्याः, प्रयुक्ताचारविकलत्वात् म्लेच्छवत्।' आपके इस अनुमान में 'प्रयुक्ताचारविकलत्वात्' यह हेतु नहीं अनैकान्तिक हेतु है। आपका उद्देश्य हम लोगों में षड्दर्शन बाह्यता सिद्ध करने का है अर्थात् षड्दर्शनबाह्य साध्य है। परन्तु आपके दिये हुए हेतु से षड्दर्शनों के भीतर माने हुये बौद्ध, चार्वाक आदि भी विपक्ष सिद्ध होते हैं। उनमें भी आपका हेतु चला जाता है–लागू होता है, क्योंकि वे भी आपके अभिमत वेद प्रयुक्त आचार से पराङ्मुख है। इसलिये अतिव्याप्ति नामक दोष अनिवार्य है और आपका दिया हुआ "म्लेच्छवत्" यह दृष्टान्त भी साधनविकल है। आप म्लेच्छों में प्रयुक्त आचार की विकलता एक देश से मानते हैं या सर्वतोभावेन? यदि कहें एक देश से, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि म्लेच्छ भी अपनी जाति के अनुसार कुछ न कुछ लोकाचार का पालन करते हुये दिखलाई देते हैं। अन्य सभी लोकाचार वेदोक्त हैं, इसलिये आपका कहा हुआ हेतु दृष्टांत में नहीं घटता। यदि आप कहें कि म्लेच्छों में सम्पूर्ण वेदोक्त आचार नहीं पाया जाता, इसलिये वे दर्शन बाह्य हैं, तो ऐसा कथन भी ठीक नहीं, क्योंकि फिर तो आप भी दर्शन बाह्य हैं। वेदोक्त सम्पूर्ण आचार व्यवहार का पालन शायद आप भी नहीं करते।'

इस प्रकार तर्करीति से बोलते हुए उपाध्यायजी ने सभा में स्थित तमाम लोगों को अचम्भे में डाल दिया और अनेक दोष दर्शाकर मनोदानन्द के प्राथमिक कथन को अव्यवस्थित बतलाया।

इसके बाद मानी मनोदानन्द धृष्टता से अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये अन्यान्य प्रमाण उपस्थित करने लगा। परन्तु उपाध्यायजी ने अपनी प्रचुर प्रतिभा के प्रभाव से राजा आदि समस्त लोगों के सामने असिद्ध, विरुद्ध, अनेकान्तिक आदि दोष दिखलाकर तमाम अनुमानों का खंडन करके पं० मनोदानन्द को पराजित कर दिया। इतना ही नहीं, उपाध्यायजी ने प्रधान अनुमान के द्वारा अपने आपको षड्दर्शनाभ्यन्तरवर्ती भी सिद्ध कर दिया। ऐसे वाक्पटु जैन मुनि के समक्ष जब कोई उत्तर नहीं दे सके, तब अति लज्जित होकर पं० मनोदानन्द मन ही मन सोचने लगा कि—'यहाँ सभा में बैठने वाले राजा रईस लोगों को जैसा चाहिये वैसे शास्त्रीय ज्ञान का अभाव है। इसीलिये वे लोग अपने सामने अधिक बोलते हुए किसी व्यक्ति को देखकर समझ बैठते हैं कि यह पुरुष बहुत अच्छा विद्वान् है। अतः इस धारणा के अनुसार मुझे भी कुछ बोलते रहना चाहिये। लोग जान जायेंगे कि पं० मनोदानन्द भी एक अच्छा बोलने वाला वाक्पटु पुरुष है।' ऐसा सोचकर—

शब्दब्रह्म यदेकं यच्चैतन्यं च सर्वभूतानाम्।
यत्परिणामस्त्रिभुवनमखिलमिदं जयति सा वाणी॥

इत्यादि पुस्तकों से याद किया हुआ पाठ बोलने लगा। ऐसा देखकर श्रीमान् उपाध्यायजी ने जरा कोपावेश में आकर कहा—'अरे निर्लज्जों के सरदार! ऐसा यह असंबद्ध क्यों बोल रहा है? मैंने तुमको षड्दर्शनों से बहिर्भूत सिद्ध कर दिया है। प्रमाण और युक्तियों के बल से अगर तुम्हारी कोई शक्ति है तो पौषधशाला के द्वार पर चिपकाये गये अपने शास्त्रार्थ-पत्र के समर्थन के लिये कुछ सप्रमाण बोलो। पढ़ी हुई पुस्तकों के पाठ की आवृत्ति करने में तो हम भी समर्थ हैं। इसके बाद उपाध्यायजी की आज्ञा पाकर धर्मरुचिगणि, वीरप्रभगणि और सुमतिगणि ये तीनों मुनि श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज की बनाई हुई चित्रकूटीय प्रशस्ति, संघपट्टक, धर्मशिक्षा आदि संस्कृत प्रकरणों का पाठ ऊँचे स्वर में करने लगे। इनको धाराप्रवाह रूप धड़ाधड़ संस्कृत पाठ का उच्चारण करते हुए देखकर वहाँ पर उपस्थित सभी राजा रईस लोग कहने लगे—'ओ हो! ये तो सभी पंडित हैं।'

हार खाये हुए पंडित मनोदानन्द का मुख मलिन देखकर राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र ने विचारा कि, 'हमारे पंडित मनोदानन्दजी की मुखच्छाया फीकी है, अगर यह राजपंडित हार जायगा तो दुनिया में हमारी लघुता सिद्ध होगी। इसलिये उपस्थित जनता के आगे दोनों की समानता सिद्ध

हो जाय तो अच्छा है।' मन में ऐसा निश्चय कर उपाध्यायजी की ओर लक्ष्य करके राजाजी कहने लगे, 'आप बड़े अच्छे महर्षि—महात्मा हैं।' वैसे ही मनोदानन्दजी की ओर मुख करके 'आप भी बड़े अच्छे पंडित हैं।'

श्रीपृथ्वीराज राजा के मुँह से यह वचन सुनकर उपाध्यायजी ने विचारा कि, 'आज दिन से हम शास्त्रार्थ करने लगे थे, रात के तीन पहर बीत गये हैं। इस बीच हमने अनेक प्रमाण दिखलाये, अपनी दिमागी शक्ति खर्च की; लेकिन फल कुछ नहीं हुआ। हमने मनोदानन्द को परास्त करके उसकी जबान बन्द करदी, निरुत्तर बना दिया। फिर भी राजा साहब अपने पंडित के पक्षपात के कारण दोनों की समानता दर्शा रहे हैं। अस्तु, कुछ भी हो, हम जय—पत्र लिये बिना इस स्थान से नहीं उठेंगे।'

उपाध्यायजी—'महाराज आप यह क्या कहते हैं, मैं कन्धा एवं छाती ठोंककर कहता हूँ कि सारे भारत खण्ड में मेरे सामने टिकने वाला कोई पंडित नहीं है। यह पंडित मनोदानन्द मेरे साथ व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि किसी भी विषय में स्वतंत्रता से बोल सकता है। अगर इसकी शक्ति नहीं है, तो यह पौषधशाला वाले पत्र को अपने हाथ से फाड़ डाले। अरे यज्ञोपवीत को धारण करने वाले मनोदानन्द! श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज के ऊपर पत्र चिपकाता है, तुझे मालूम नहीं, उन्होंने सब विद्याओं में दखल रखने वाले श्रीप्रद्युम्नाचार्य जैसे पंडितराजों की सब लोगों के सामने धूल उड़वादी है।'

इस अवसर पर श्रीपृथ्वीराज महाराज ने उस शास्त्रार्थ—पत्र को लेकर फाड़ डाला। उपाध्यायजी ने कहा—'महाराज! इस पत्र को फाड़ने भर से ही मुझे सन्तोष नहीं होता।' राजा ने कहा—'आपको सन्तोष किस बात से हो सकता है?' उपाध्यायजी ने उत्तर दिया कि, 'हमें संतोष जयपत्र मिलने से होगा। और राजन्! हमारे सम्प्रदाय में ऐसी व्यवस्था है कि जो कोई हमारे उपाश्रय के द्वार पर पत्र चिपकाता है उसी पुरुष के हाथ से जयपत्र लिखवा कर उपाश्रय के द्वार पर जय पत्र लगवाया जाता है। इसलिये आपसे निवेदन है कि आप अपने न्यायाधीशों से सम्मति लेकर हमारी सम्प्रदायी व्यवस्था को सुरक्षित रखें।' पंडित मनोदानन्दजी की मुखच्छाया को मलिन हुई देखकर यद्यपि राजा को ऐसा करने में बड़ा मानसिक दुःख होता था, परन्तु सभा में बैठने वाले न्याय विचार में प्रवीण प्रधान बुद्धिमान् पुरुषों के अनुरोध से अपने सरिस्तेदार के हाथ से जयपत्र लिखवाकर जिनपालोपाध्याय के हाथों में देना पड़ा। उपाध्यायजी ने इसके बदले में धर्मलाभ आशीर्वाद आदि कहकर राजा की भूरि—भूरि प्रशंसा अनेक श्लोकों द्वारा की। रात भर शास्त्रार्थ होते रहने के कारण प्रातःकाल वहां से उठकर शंखध्वनि आदि द्वारा बधाई लेते हुए तथा जयपत्र को लिये हुए मुनि—मंडली को साथ लेकर उपाध्यायजी श्रीपूज्यजी के पास आये। श्रीपूज्यजी ने अपने

शिष्य के द्वारा होने वाली जिनशासन की प्रभावना से बड़े हर्ष का अनुभव किया और बड़े आदर सत्कार के साथ जिनपालोपाध्याय को अपने पास बिठलाकर शास्त्रार्थ सम्बन्धी सारी बातें ब्योरेवार पूछीं। सं० १२७३ जेठ वदि १३ के दिन श्री शान्तिनाथ भगवान के जन्म-कल्याणक के अवसर पर इस उपलक्ष में वहाँ के श्रावकों ने एक बृहत् जयोत्सव मनाया।

६४. वहाँ से सं० १२७४ में विहार करके आते हुए श्रीपूज्यजी ने मार्ग में भावदेव मुनि को दीक्षा दी। सेठ स्थिरदेव की प्रार्थना स्वीकार करके दारिद्रेरक गाँव में चातुर्मास किया। वहाँ भी पहले की तरह नन्दी स्थापना की। सं० १२७५ में जाबालिपुर आकर जेठ सुदि १२ के दिन भुवनश्रीगणिनी, जगमति तथा मंगलश्री इन तीन साध्वियों को और विमलचन्द्रगणि पद्मदेव गणि इन साधुओं को दीक्षा दी। सं० १२७७ में पालणपुर आकर अनेक प्रकार की धर्मप्रभावनायें की। वहाँ पर महाराज के नाभि के नीचे स्थान पर एक गांठ पैदा हुई। उसकी वेदना सताने लगी और साथ-साथ संग्रहणी रोग भी पैदा हो गया। महाराज ने अपनी आयु शेष हुई जानकर चतुर्विध-संघ को एकत्रित करके मिथ्या-दुष्कृत दिया और संघ को शिक्षा दी। 'आप लोग मनमें कोई तरह से खेद न करें और यह भी नहीं समझें कि जो आचार्य जीते जी अनेक लोगों से शास्त्रार्थ करके धर्म प्रभावना करते रहे हैं, अब उनके बिना काम कैसे चलेगा। हमारे पीछे सर्वदेवसूरि, जिनहितोपाध्याय और जिनपालोपाध्याय आदि सब यथोचित उत्तर देने में समर्थ हैं। ये आप लोगों के मनोरथों को पूराकर सकेंगें और इनके अतिरिक्त वाचनाचार्य सूरप्रभ, कीर्तिचन्द्र, वीरप्रभगणि तथा सुमतिगणि, ये चारों ही शिष्य महाप्रधान हैं। इनमें एक-एक का अपूर्व सामर्थ्य है, ये गिरते हुए आकाश को भी स्थिर रखने में समर्थ है। परन्तु जब हम अपने पाट के योग्य बैठाने में से किसी को छांटते हैं, तो हमारे ध्यान में वीरप्रभगणि आता है। हमारे शरीर में इस समय बड़ी व्याधि है। इसलिये यदि संघ कहे तो अभी हम उसे अपने पाट पर बैठा दें। शोक और हर्ष दोनों का द्वन्द्व जिसके चित्त में मचा हुआ है, ऐसे संघ ने श्रीपूज्यजी से निवेदन किया कि, 'महाराज! वैसे तो जो आपके समझ में आता है, वही हमें मान्य है। परन्तु इस वक्त जल्दी में की हुई आचार्य पद की स्थापना, जैसी चाहिये वैसी शोभा के साथ नहीं हो सकेगी। इसलिये यदि आप की आज्ञा हो तो यहां के श्रीसंघ की ओर से भेजी हुई आमंत्रण पत्रिकाओं को देखकर आये हुये समस्त देश वासी खरतरगच्छीय लोगों की उपस्थिति में बड़े आनन्द के साथ पाट महोत्सव मनाकर वीरप्रभगणि को बड़े ठाठ-बाट के साथ आचार्य पद पर स्थापित किया जाय।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'जो कुछ कर्तव्य समुदाय के ध्यान में आवे वही अच्छा है।' इसके बाद सब लोगों से क्षमत क्षामणा करके सब लोगों के चित्त में चमत्कार पैदा कर अनशन विधि के साथ श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज स्वर्ग को सिधार गये।

६५. तत्पश्चात् यद्यपि श्रीपूज्यजी के वियोग से होने वाले परम दुःख से संघ का अन्तःकरण किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया था; परन्तु उनके पीछे होने वाले देह-संस्कार आदि कार्य को अत्या-

वश्यक समझकर एक सुन्दर विमान में श्रीपूज्यजी के शव की स्थापना करके उनके दाह संस्कार के लिए तैयारी की गई। सं० १२७७ आषाढ़ शुक्ला दशमी को उस समय की प्रथा के अनुसार कर्ण को सुखदायक हृदय को द्रवित कर देने वाली मेघराग आदि रागिनियों को वाराङ्गनायें गारही थीं। उसी प्रकार प्राणहारी मृत्युदेव को उपालम्भ देने वाले और भी नाना प्रकार के गायन गाये जारहे थे। अनेक प्रकार के कमलगट्टा आदि वन फलों की उछाल हो रही थी। शंखादि पाँच प्रकार के तुमुल ध्वनि के बीच समस्त नागरिक लोगों के साथ चतुर्विध संघ के लोग महाराज की अर्थी को ले जा रहे थे।

इसी अवसर पर प्रधान साधुओं के साथ श्रीजिनहितोपाध्यायजी जाबालीपुर से वहां आ पहुँचे। उन्होंने कणपीठ नाम के गांव में ही महाराज की बीमारी के समाचार सुन लिये थे। इसीलिये वे बड़ी जल्दी से यहां आ पहुँचे। जिनहितोपाध्याजी ने श्रीपूज्यजी की यह अवस्था देखकर शोक से विह्वल हो, उनके गुण-गणों को याद करके निम्नलिखित १६ श्लोकों से इस प्रकार विलाप करने लगे—

श्रीजिनशासनकाननसंवर्द्धिविलासलालसे वसता।
हा श्रीजिनपतिसूरे!, किमेतदसमञ्जसमवेद्ये? ॥१॥
जिनपतिसूरे! भवता श्रीपृथ्वीराजनृपसदःसरसि।
पद्मप्रभासिवदने नाऽरमिव जयश्रिया सार्धम् ॥२॥
मथितप्रथितप्रतिवादिजातजलधेः प्रभो! समुद्धृत्य।
श्रीसंघमनःकुण्डे न्यधात् त्वमानन्दपीयूषम् ॥३॥
बुधबुद्धिचक्रवाकी षट्तर्कसरिति तर्कचक्रेण।
क्रीडति यथेच्छमुदिते जिनपतिसूरे! त्वयि दिनेशे ॥४॥
तव दिव्यकाव्यदृष्टावेकविधं सौमनस्यमुल्लसति।
द्राक् सुमनसां च तत्प्रतिपक्षाणां च प्रभो! चित्रम् ॥५॥
धातुविभक्त्यनपेक्षं क्रियाकलापं त्वनन्यसाध्यमपि।
यं साधयत् जिनपते! चमत्कृते कस्य नो जातः ॥६॥
मयि सति कीदृक् चासन्नयमत्र कविरिति नाम वहतीति।
रोषादसुराचार्यं जेतुं किं जिनपते! स्वरगाः? ॥७॥

भगवंस्त्वयि दिवि गच्छति हर्षाद्भिमुखमचलताः क्षिताः ।
सुररमणीभिर्मन्ये सारीभूतास्त एवाभ्रे ॥८॥
इन्द्रानुरोधवशतो मध्ये स्वर्गे ययौ भवानित्थम् ।
जिनपतिसूरे ! सन्तो दाक्षिण्यधना भवन्ति यतः ॥९॥
वामपद्घातलग्नेन्द्राण्यवतारितशरावपुटखण्डाः ।
स्वःश्रीविवाहकार्यं तव नूनं दिव्युडूभूताः ॥१०॥
जिनजननदिनस्नानाधानेच्छातः किमाकुलीभूय ।
त्वं पञ्चत्वं प्राप्तः सुरपतिवज्जिनपतिर्भगवान् ? ॥११॥
त्वदभिमुखमिव क्षितानाशानारीभिरक्षतान् नूनम् ।
उपभोक्तुं वियदजिरे विरचति चन्द्रो मराल इव ॥१२॥
नास्तिकमतकृदमरगुरुजयनायेवासि जिनपते ! स्वरगाः ।
परमेतज्जगदधुना विना भवन्तं कथं भावि ? ॥१३॥
हा ! हा ! श्रीमज्जिनपतिसूरे ! सूरे त्वयीत्थमस्तमिते ।
अहह कथं भविता नीतिचक्रवाकी वराकीयम् ॥१४॥
करतलधृतदीनास्ये श्रीशासनदेवि ! मा कृथाः कष्टम् ।
यन्मन्ये तव पुण्यैर्जिनपतिसूरिर्दिवमयासीत् ॥१५॥
रे दैव ! जगन्मातुः श्रीवाग्देव्या अपि त्वयात्रेपि ? ।
ना मन्ये यदमुष्याः सर्वस्वं जिनपतिरहारि ॥१६॥

इत्यादि श्लोकों से शोक-विलाप करते हुए उपाध्यायजी मूर्छित हो गये। मूर्छा टूटने पर धैर्य धारण करके श्रीपूज्यजी की चरणों में वन्दना करके और्ध्व-दैहिक अन्तिम संस्कार कृत्य करने के लिये परिवार सहित श्रीजिनहितोपाध्यायजी आये। अपने साधु नियम के अनुसार योग्य कार्य को करके उपाश्रय में आगये। वहां पर गणधर श्री गौतमस्वामी आदि महाराजों के चरित्रों का कीर्तन करके उपस्थित जनता को आह्लादित किया। इस स्थान पर यह भी समझ लेना चाहिये कि दाह संस्कार करके अन्य श्रावक लोग भी इस उपदेश में सम्मिलित हो गये थे।

द्वितीय आचार्य जिनेश्वरसूरि

६६. इसके बाद श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज के शिष्यों ने जाबालिपुर में जाकर चातुर्मास किया। चातुर्मास समाप्त होने के बाद वहीं पर सारे संघ की सम्मति से श्रीजिनहितोपाध्याय, श्रीजिनपालोपाध्याय आदि प्रधान-प्रधान साधुओं के साथ श्रीसर्वदेवसूरिजी ने श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज की बताई हुई रीति के अनुसार आचार्यपद के योग्य, छत्तीस गुणों से युक्त, सौभाग्य भाजन, मृदुभाषी, विनीत, क्षमा आदि दस प्रकार के यतिधर्मों का आधार स्थान श्रीवीरप्रभगणि को सं० १२७८ माघ सुदि ६ के दिन स्वर्गीय आचार्य श्रीजिनपतिसूरिजी के पाट पर स्थापित किया। अब इनका नाम परिवर्तन कर जिनेश्वरसूरि रखा गया। यह पाट महोत्सव अनेक दृष्टियों से अनुपम हुआ था। इस शुभ अवसर पर बड़े भक्तिभाव से देश-देशान्तरों से अनेक धनी-मानी भव्य लोग आये थे। उनकी ओर से स्थान-स्थान पर गरीबों के लिये सदावर्त खोले गये थे। जगह-जगह सुन्दरी ललनायें युगप्रधान गुरुओं की कीर्ति गान के साथ नृत्य कर रहीं थीं। उत्सव के दिनों में प्राणिवध के निषेध की घोषणा की गई थी। हजारों रूपये व्यय कर याचकों के मनोरथ पूरे किये जा रहे थे। आये हुये लोग वेश और आभूषणों की छटा से इन्द्र की भी स्पर्धा कर रहे थे। उस समय जैन शासन की प्रभावना देखकर अन्य दर्शनी लोग भी निःसंकोच होकर शासन की प्रशंसा करते थे। अन्यमतावलम्बी लोग अपने-अपने देवों को बार-बार धिक्कारते हुए जैनधर्म पर मुग्ध हुए जाते थे। भाट लोग खरतरगच्छ की बिरुदावली पढ़ रहे थे। चारो तरफ से अनेक प्रकार के आशीर्वादों की झड़ी लग रही थी। तीर्थ-प्रभावना के निमित्त तोरण वन्दरवाल आदि से भगवान् महावीर का मन्दिर बड़े अच्छे ढंग से सजाया गया था।

पाट महोत्सव के बाद ही माघ सुदि नवमी के दिन श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज ने यश-कलशगणि, विनयरुचिगणि, बुद्धिसागरगणि, रत्नकीर्तिगणि, तिलकप्रभगणि, रत्नप्रभगणि और अमरकीर्तिगणि इन सात साधुओं को दीक्षित किया। जाबालीपुर से सेठ यशोधवल के साथ विहार करके श्रीमालपुर गये। वहां पर जेठ सुदि १२ के दिन श्रीविजय, हेमप्रभ, तिलकप्रभ, विवेकप्रभ और चारित्रमाला गणिनी, ज्ञानमाला, सत्यमाला गणिनी इन साधु-साध्वियों को दीक्षा देकर निवृत्तिमार्ग के पथिक बनाये। इसके बाद वहां से विहार कर गये। फिर जगद्धर की प्रार्थना स्वीकार करके आषाढ़ सुदि दशमी के दिन पुनः श्री श्रीमाल आये। उन्हीं सेठजी के प्रयास से महाराज का नगर प्रवेश अभूत पूर्वरीति से हुआ। वहां पर श्री शान्तिनाथ भगवान् की स्थापना की गई। और जाबालीपुर में देव मंदिर रचना प्रारम्भ करवाई। जाबालीपुर में ही सं० १२७९ माघ सुदि ५ पंचमी के दिन अर्हद्दत्तगणि और विवेकश्रीगणिनी, शीलमाला-गणिनी, चन्द्रमाला गणिनी, विनयमाला गणिनी को संयम प्रदान किया।

वहां से पुनः श्रीमालपुर में आकर सं० १२८० माघ शुदि १२ को श्रीशान्तिनाथ भगवान के मंदिर पर ध्वजा का आरोपण किया और ऋषभदेव स्वामी, श्रीगौतमस्वामी, श्रीजिनपतिसूरि, मेघनाद क्षेत्रपाल और पद्मावती देवी इनकी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई। तत्पश्चात् फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा के दिन कुमुदचन्द, कनकचन्द्र और पूर्णश्री गणिनी, हेमश्री गणिनी को साधु–साध्वी बनाकर उनके त्रिविध सन्ताप का निवारण किया। वहाँ से वैशाख शुदि १४ के रोज प्रह्लादनपुर (पालनपुर) में आकर बड़ी धूम–धाम से पंचायती स्तूप में श्री जिनपतिसूरिजी की प्रतिमा की स्थापना की। इस स्तूप की विस्तार से प्रतिष्ठा श्रीजिनहितोपाध्याय ने की। सं० १२८१ वैशाख शुदि ६ के दिन जावालीपुर में विजयकीर्ति, उदयकीर्ति, गुणसागर, परमानन्द और कमलश्री, कुमुदश्री प्रभृति का दीक्षा कार्य सम्पन्न किया। उसी नगर में ज्येष्ठ शुदि ९ के दिन महावीर स्वामी के मन्दिर पर ध्वजारोपण किया। सं० १२८३ माह वदि २ के दिन बाड़मेर में श्रीऋषभदेवजी चैत्य पर ध्वजा फहराई। माह वदि ६ को श्रीसूरप्रभोपाध्याय को उपाध्याय पद देकर सम्मानित किया और उसी दिन मंगलमति गणिनी को प्रवर्तिनी पद तथा वीरकलशगणि, नन्दिवर्द्धनगणि और विजयवर्द्धन गणि को दीक्षा दी। तदनन्तर सं० १२८४ में बीजापुर जाकर श्रीवासुपूज्य स्वामी की स्थापना की एवं आषाढ़ शुदि २ को अमृतकीर्तिगणि, सिद्धिकीर्तिगणि और चारित्रसुन्दरी गणिनी, धर्मसुन्दरी गणिनी को दीक्षित किया। सं० १२८५ की ज्येष्ठ शुदि द्वितीया को कीर्तिकलशगणि, पूर्णकलश-गणि तथा उदयश्री गणिनी को उपदेश देकर निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थिनी बनाये। ज्येष्ठ सुदि ९ को बीजापुर में श्रीवासुपूज्य स्वामी के मन्दिर के शिखर पर बड़े समारोह के साथ ध्वजा का आरोपण किया। बीजापुर में ही जेठ सुदि नवमी के दिन विद्याचन्द्र, न्यायचन्द्र और अभयचन्द्र गणि को साधुधर्म में दीक्षित करके लोकमान्य मुनि बनाये। सं० १२८७ फाल्गुन शुदि पंचमी को पालनपुर में जयसेन, देवसेन, प्रबोधचन्द्र, अशोकचन्द्र गणि और कुलश्री गणिनी, प्रमोदश्री गणिनी को दीक्षा देकर असार संसार से मुक्त किया। सं० १२८८ भादवा सुदि १० को जावालिपुर में स्तूप–ध्वज की प्रतिष्ठा करवाई। इसी वर्ष आश्विन शुक्ला दशमी को पालनपुर में समुदाय सहित सेठ भुवनपाल ने राजकुमार श्री जगसिंह की उपस्थिति में ध्वजारोपण सम्बन्धी महा-महोत्सव किया; जो श्रीजिनपालोपाध्याय के हाथों से सम्पन्न हुआ। पौष शुक्ला एकादशी को जालोर में कल्याणकलश, प्रसन्नचन्द्र, लक्ष्मीतिलकगणि, वीरतिलक, रत्नतिलक और धर्ममति, विनयमति, विद्यामति, चारित्रमति इन स्त्री–पुरुषों को दीक्षित किया। चित्तौड़ में जेठ शुदि १२ को अजित-सेन, गुणसेन और अमृतमूर्ति, धर्ममूर्ति, राजीमति, हेमावली, कनकावली, रत्नावली गणिनी तथा मुक्तावली गणिनी की दीक्षा हुई। वहीं पर आषाढ़ वदि द्वितीया के दिन श्रीऋषभदेव, श्रीनेमिनाथ श्रीपार्श्वनाथ की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। इन देवों की मूर्तियां सेठ लक्ष्मीधर ने बनवाई

और मस्जिद में सेठ [illegible] । मुनियों के स्थान करने के लिये [illegible] के साथ [illegible] गया था।

सं० १२८९ में श्रीपूज्य जिनेश्वरसूरि ने ठा० [illegible] और सेठ [illegible] की प्रार्थना से उज्जयन्त, शत्रुंजय और स्तम्भनक प्रमुख तीर्थों की यात्रा की थी। स्तम्भनक (खम्भात में) वादी यमदंड नाम के दिगम्बर पंडित से पूज्यश्री का शास्त्रार्थ हुआ था। वहीं पर परिवार सहित प्रसिद्ध महामंत्री श्रीवस्तुपाल नगर प्रवेश के समय पूज्यश्री के सम्मुख आए थे। इससे उस समय जिन शासन की प्रभावना हुई थी। सं० १२९१ वैशाख सुदि दशमी के दिन जावालीपुर में आकर यतिकलश, क्षमाचन्द्र, शीलरत्न, धर्मरत्न, चारित्ररत्न, मेघकुमारगणि, अभयतिलकगणि, श्रीकुमार तथा शीलसुन्दरी, चन्दनसुन्दरी, इन साधु-साध्वियों को विधि-विधान से दीक्षा दी। जेठ सुदि द्वितीया के दिन शुभ मुहूर्त में मूलनक्षत्र पर श्रीविजयदेवसूरि को आचार्य पद से भूषित किया। सं० १२९४ में श्रीसंघहितमुनि को उपाध्याय पद दिया। सं० १२९६ फाल्गुन वदि पंचमी को पालनपुर में प्रमोदमूर्ति, प्रबोधमूर्ति, देवमूर्तिगणि इन तीनों की दीक्षा विपुल धन व्यय के साथ की गई। जेठ सुदि १० को उसी नगर में श्रीशान्तिनाथ भगवान् की प्रतिष्ठा करवाई; वही मूर्ति आजकल पाटण में वर्तमान है। सं० १२९७ चैत्र सुदि १४ के दिन देवतिलक और धर्मतिलक को पालनपुर में दीक्षा दी गई। सं० १२९८ वैसाख की एकादशी को जावालीपुर में समुदाय सहित महं० कुलधर ने सूत्रधार गुणचन्द्र से बनवाकर सुवर्णमयदंड और ध्वजा का आरोपण किया। सं० १२९९ के प्रथम आश्विन मास की द्वितीया के दिन प्रगाढ़ वैराग्य के वशीभूत होकर महामंत्री कुलधर ने दीक्षा धारण की। इनकी दीक्षा के समय जो महोत्सव किया गया; वह राजा लोग और नागरिक लोगों के आश्चर्य समुद्र को बढ़ाने में पूर्णिमा के चांद के समान हुआ अर्थात् इतने बड़े वैभवशाली राजनीतिपटु मंत्री को साधु होते हुए देखकर उन लोगों के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। दीक्षा के बाद मंत्रीजी का नाम कुलतिलकमुनि रक्खा गया था।

सं० १३०४ वैशाख सुदि १४ के दिन जिनेश्वरसूरिजी ने विजयवर्द्धनगणि को आचार्य पद दिया और इनका नाम बदल कर जिनरत्नाचार्य रक्खा। त्रिलोकहित, जीवहित, धर्माकर, हर्षोदय, संयमप्रमोद, विवेकसमुद्र, देवगुरुभक्त, चारित्रगिरि, सर्वज्ञभक्त और त्रिलोकानन्द को संयम प्रदान किया। सं० १३०५ में आषाढ़ सुदि १० को पालनपुर में श्रीमहावीर स्वामी, श्रीऋषभदेव स्वामी, श्रीनेमिनाथ स्वामी, श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमाओं की तथा नन्दीश्वर तीर्थ के भाव युक्त पट्ट की प्रतिष्ठा की।*

---

* इति श्रीजिनचन्द्रसूरि-श्रीजिनपतिसूरि-श्रीजिनेश्वरसूरिसत्कसज्जनमनश्च-
मत्कारिप्रभावनावार्तानामपरिमितत्वेऽपि तन्मध्यवर्तिन्यः काश्चित्

९८. इसके बाद श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने श्रीमालनगर में सं० १३०६ में जेठ सुदि १२ के दिन कुन्थुनाथ और अरनाथ भगवान् की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की और सेठ धीमाक की प्रार्थना स्वीकार करके दूसरीबार मालारोपण किया।

स्थूलाः स्थूलाः वार्ताः श्रीचतुर्विधसंघप्रमोदार्थम् ।
दिल्लीवास्तव्यसाधुसाहुलिसुत सा० हेमाभ्यर्थनया।
जिनपालोपाध्यायैरित्थं प्रथिताः स्वगुरुवार्ताः ॥

[वैसे तो मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनपतिसूरि और श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज के जीवन चरित्र में अनेक चमत्कार पैदा करने वाली अनेक बातें हैं। परन्तु दिल्ली निवासी साहुली सेठ के पुत्र श्रीहेमचन्द्र सेठ की प्रार्थना से श्रीजिनपालोपाध्याय ने चतुर्विध संघ के आमोद के लिये उनमें से मोटी-मोटी और सरल बातें उपर्युक्त रीति से लिखी हैं।]

वे स्वयं लिखते हैं—

लोकभाषानुसारिण्यः सुखबोध्या भवन्त्यतः ।
इत्येकवचनस्थाने काऽपि [च] बहूक्तिरपि ॥
बालावबोधनायैव सन्ध्यभावः क्वचित्कृतः ।
इति शुद्धिकृच्चेतोभिः सद्भिर्ज्ञेयं स्वचेतसि ॥
बुद्धये शुद्धये ज्ञानवृद्ध्यै जनसमृद्धये ।
चतुर्विधस्य संघस्य भण्यमाना भवन्त्वतः ॥

[हमने इन आचार्यों के जीवन की बातें संस्कृत में लोक भाषा के मुहावरे के अनुसार लिखी है। इनमें काठिन्य नाम मात्र को भी नहीं है। हर एक आदमी सुगमता से जान सकें, इसका ख्याल रखा गया है। कहीं-कहीं आचार्यादि के लिये एकवचन के स्थान में बहुवचन भी दे दिया गया है। साधारण संस्कृतज्ञों की जानकारी के लिये कहीं-कहीं सन्धि का अभाव भी किया गया है। शुद्धाशुद्ध का विचार करने वाले विद्वान् लोग हमारे इस अभिप्राय को जान लें। हमारी कही हुई अतः स्वर्गीय आचार्यों के जीवन चरित्र सम्बन्धी ये बातें चतुर्विध संघ के लिये बुद्धि, शुद्धि, ज्ञान-वृद्धि और जन-समृद्धि को देने वाली हो।]

पाठकवृन्द ! ऊपर के लेख से विदित होता है कि श्रीजिनपालोपाध्यायजी ने श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज का जीवन चरित्र यहीं तक लिखा है। उनका आगे का जीवन चरित्र किसी अन्य विद्वान् मुनि का लिखा हुआ है।

सं० १३०८ में मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को समाधिशेखर, गुणशेखर, देवशेखर, साधुभक्त, शीलरत्न मुनि तथा मुक्तिसुन्दरी साध्वी को दीक्षा दी और उसी वर्ष माघ सुदि १० को श्रीशान्तिनाथ, अजितनाथ, धर्मनाथ, वासुपूज्य, मुनिसुव्रत, सीमंधर स्वामी, पद्मनाभ आदि तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा सेठ विमलचन्द्र सा० हीरा आदि धनी-मानी श्रावक समुदाय ने धूमधाम से करवाई। यहाँ पर यह बतला देना भी अनुचित न होगा कि भिन्न-भिन्न श्रावक समुदाय के धन व्यय से कौन-कौन तीर्थंकर भगवान् की प्रतिमा स्थापित की गई थी। सेठ विमलचन्द्र ने नगरकोट में पहले से स्थापित श्रीशान्तिनाथजी की प्रतिष्ठा पर्याप्त धन व्यय करके करवाई। अजितनाथ महाराज की प्रतिष्ठा सा० साजारण श्रावक ने, धर्मनाथ स्वामी की विमलचन्द्र के पुत्र क्षेमसिंह ने, वासुपूज्य स्वामी की सब श्राविकाओं ने, मुनिसुव्रत स्वामी की देहड़ गोठी ने, सीमंधर स्वामी की गोठी हीरा ने, पद्मनाभ भगवान् की श्रावक मामसार डाखाक ने विपुल धनराशि खर्च करके विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करवाई। ध्यान रहे कि यह प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्य पालनपुर में हुआ था। उसी साल सहजाराम सेठ के सुपुत्र बच्छड़ ने बाड़मेर जाकर बड़े उत्सव के साथ दो स्वर्ण कलशों की प्रतिष्ठा करवा कर आदिनाथ मंदिर के शिखर पर चढ़ाये।

सं० १३१० में वैशाख सुदि ११ को जाबालीपुर (जालोर) में चारित्रवल्लभ, हेमपर्वत, अचलचित्त, लाभनिधि, मोदमंदिर, गजकीर्ति, रत्नाकर, गतमोह, देवप्रमोद, वीरानन्द, विगतदोष, राजललित, बहुचरित्र, विमलप्रज्ञ और रत्ननिधान इन पन्द्रह साधुओं को प्रव्रज्या धारण कराई। इन पन्द्रह में चारित्रवल्लभ और विमलप्रज्ञ पिता पुत्र थे। इन्होंने साथ ही दीक्षा धारण की। इसी वर्ष वैशाख की त्रयोदशी के दिन शनिवार स्वाति नक्षत्र में श्रीमहावीर भगवान के विधिचैत्य में राजा श्रीउदयसिंहजी आदि बहुत से राजा लोगों की उपस्थिति में राजमान्य महामंत्री श्री जैत्रसिंहजी के तत्वावधान में प्रह्लादनपुर (पालनपुर), वागड आदि स्थानों के मुख्य-मुख्य श्रावकों की सन्निधि में चौबीस जिनालय, एक सौ सत्तर तीर्थंकर, सम्मेत शिखर, नन्दीश्वर, तीर्थंकरों की माता हीरा श्रावक के पास में स्थित नेमिनाथ स्वामी, उज्जयिनी सत्क श्रीमहावीर स्वामी, श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी, श्रीशान्तिनाथ स्वामी एवं सेठ हरिपाल सत्क सुधर्मा स्वामी, श्रीजिनदत्तसूरि, सीमंधर स्वामी, युगमंधर स्वामी आदि की नाना प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा अभूत महामहोत्सव के साथ की और प्रमोदश्री गणिनी को महत्तरा की उपाधि देकर लक्ष्मीनिधि नाम दिया तथा ज्ञानमाला गणिनी को प्रवर्तिनी पद दिया।

सं० १३११ वैशाख सुदि ६ को पालनपुर में श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी के विधिचैत्य में श्रीमपल्ली नगरी के मन्दिर में स्थित श्रीमहावीर प्रतिमा की प्रतिष्ठा सेठ भुवनपाल ने अपने निजोपार्जित धन के व्यय से करवाई। पंचायत की ओर से युगादिदेव स्वामी की, बोहित्थ श्रावक की तरफ से अनन्तनाथ

स्वामी की, भीमराज नाम के श्रावक द्वारा अभिनन्दन स्वामी की, जालोर के [illegible] की ओर से [illegible] के लिये नेमिनाथ स्वामी की, सेठ हरिपाल के छोटे भाई सेठ कुलचन्द्र की तरफ से श्रीजिनदत्तसूरिजी की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा पूज्यश्री से करवाई गई।

इसके बाद पालनपुर में खरतरगच्छ की नौका के कर्णधार, संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ विद्वान् [illegible] श्रीजिनपालोपाध्यायजी ने अनशन करके इन्द्रादि देवों के गुरु बृहस्पति के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये ही स्वर्ग की ओर विहार किया।

तत्पश्चात् सं० १३१२ वैशाख सुदि पूर्णिमा के दिन चन्द्रकीर्तिगणि को उपाध्याय पद प्रदान किया गया और चन्द्रतिलकोपाध्याय नया नामकरण किया गया। उसी अवसर पर प्रबोधचन्द्र गणि और लक्ष्मीतिलकगणि को वाचनाचार्य के पद से सम्मानित किया गया। इसके बाद जेठ वदि १ को उपशमचित्र, पवित्रचित्र, आचारनिधि और त्रिलोकनिधि को प्रव्रज्या धारण करवाई गई।

सं० १३१३ फाल्गुन सुदि चतुर्थी को जालोर में स्वर्णगिरि के ऊपर वाले मंदिर में बाहित्रिक उद्धरण नाम के श्रावक से कारित श्रीशान्तिनाथ भगवान् की मूर्ति की स्थापना की। चैत्र सुदि चतुर्दशी को कनककीर्ति, विबुधराज, राजशेखर, गुणशेखर तथा जयलक्ष्मी, कल्याणनिधि, प्रमोदलक्ष्मी और गच्छवृद्धि की दीक्षा हुई। इसके बाद स्वर्णगिरि शिखर पर के दूसरे मंदिर में पद्म और मूलिग नाम के श्रावकों ने बहुत सा धन खर्च करके वैशाख वदि १ को श्रीअजितनाथ प्रतिमाकी स्थापना करवाई। पालनपुर में आषाढ़ सुदि १० के दिन भवनातिलक और भरतकीर्ति की दीक्षा दी गई और उसी दिन भीमपल्ली में श्रीमहावीर स्वामी की प्रतिमा की स्थापना हुई।

सं० १३१४ माह सुदि १३ को इस नगरी के ऊपर बनवाये हुए मुख्य मंदिर पर ध्वजा चढ़ाई गयी। यह कार्य श्री उदयसिंह राजा की देख-रेख में निर्विघ्नता पूर्वक सम्पन्न हुआ था। तदनन्तर पालनपुर में अग्रिम वर्ष की आषाढ़ सुदि १० को सकलहित तथा राजदर्शन को एवं बुद्धिसमृद्धि, ऋद्धिसुन्दरी, रत्नवृष्टि इन साध्वियों को दीक्षा दी गई।

सं० १३१६ माह सुदि १४ के दिन जालोर में धर्मसुन्दरीगणिनी को प्रवर्तिनी पद तथा माह सुदि ६ को पूर्णशेखर, कनककलश को प्रव्रज्या दी गई। माह सुदि १ के दिन श्रीचाचिगदेव के राज्य में पद्म और मूलिग नाम के श्रावकों ने स्वर्णगिरि में श्रीशान्तिनाथ स्वामी के मंदिर पर स्वर्ण कलश और स्वर्णमय ध्वजदंड का आरोपण कराया। इसी प्रकार [illegible] नाम के मंत्री ने बीजापुर में आषाढ़ सुदि ११ के दिन श्री[illegible] भगवान के मंदिर पर स्वर्णकलश और स्वर्ण के बनाये हुए ध्वजदंड चढ़ाये।

सं० १३१७ माह सुदि १२ को लक्ष्मीतिलकगणि को उपाध्याय पद प्रदान किया तथा अधिक धन व्यय के साथ पद्माकर नाम के व्यक्ति को दीक्षा दी गई। माह सुदि १४ के दिन श्री जा बा ली पु र के शोभावर्द्धक श्री महावीर जिनेन्द्र के मंदिर में स्थापित चौबीस देवकुलिकाओं पर पंचायत की तरफ से सुवर्ण कलश और सोने के ध्वजदंड चढ़ाये गये। फागुन सुदि १२ को श्री शा न्त न पु र में अजितनाथ स्वामी के मंदिर की प्रतिष्ठा और ध्वजारोहण किया गया। यह प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्य वाचनाचार्य पूर्णकलश गणिने करवाया था। इसी प्रकार भीमपल्ली में श्री मांडलिक राजा के राजत्व काल में वैशाख सुदि १० सोमवार के दिन राज्य के प्रधान दंडनायक श्रीमीलगण (? सीलण) की संनिधि में सेठ श्री खीमड़ के पुत्र सेठ जगद्धर और उनके पुत्र श्री सेठ भुवनराय ने कुटुम्बियों के साथ बड़ा धन खर्च कर श्री वर्द्धमान स्वामी के "मंदिरतिलक" नाम के मन्दिर पर स्वर्ण दंड और स्वर्ण कलश चढ़वाये और उनकी प्रतिष्ठा भी उसी दिन करवाई। उस समय वहाँ पर श्रीमहावीर स्वामी के केवलज्ञान महोत्सव का दिन होने से पा ल न पु र आदि अनेक नगरों के श्रावकों के आने से खासा मेला लग गया था। इसके अतिरिक्त वहाँ पर और भी बहुत से देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा करवाई गई थी। सेठ हरिपाल और उसके भाई कुमारपाल ने संसार की तमाम सर्वश्रेष्ठ विद्याओं की चक्रवर्ती, चन्द्रमा के समान धवलकान्ति वाली, सकल संघ को सुबुद्धि देने वाली तथा एकावन अंगुल प्रमाणवाली "सरस्वती" प्रतिमा की प्रतिष्ठा बड़े समारोह से करवाई। सेठ राजदेव ने तीस अंगुल प्रमाण की श्रीशान्तिनाथ स्वामी की प्रतिमा की स्थापना कराई। मूलदेव और क्षेमंधर ने ऋषभदेव प्रतिमा, सावदेव के पुत्र पूर्णसिंह ने श्रीमहावीर स्वामी की प्रतिमा, आजड़ पुत्र बोधा ने श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा, धारसिंह ने श्रीपार्श्वनाथ और भीमभुजबल पराक्रम युक्त क्षेत्रपाल प्रतिमा, श्रीऋषभदेव और महावीर स्वामी की प्रतिमा पूनाखी ऊदा ने, चौबीस तीर्थंकरों के पट्ट और पीतल की प्रतिमा सेठ बालचन्द्र ने, ऋषभदेव की प्रतिमा भावड़ सुत सेठ धांधल ने, शान्तिनाथ की प्रतिमा बोथरा शांतिग ने, ऋषभदेव की प्रतिमा आसना-ग ने, महावीरजी की तीन प्रतिमायें साढल पुत्र धणपाल ने, शान्तिनाथ की प्रतिमा सेठ भोजाक ने, जिनदत्तसूरि और चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा सेठ हरिपाल तथा कुमारपाल ने, श्रीनेमिनाथ की प्रतिमा रूपचन्द्र के पुत्र नरपति ने, स्तम्भनक पार्श्वनाथ प्रतिमा सेठ धनपाल ने, चपदे० (?) की प्रतिमा सेठ बीजाने और अम्बिकादेवी की प्रतिमा श्रीसंघ ने स्थापित करवाई। द्वादशी के दिन सौम्यमूर्ति और न्यायलक्ष्मी नामक साध्वियों की दीक्षा धूम-धाम से करवाई गई।

सं० १३१८ पौष सुदि तृतीया के दिन संयमक को दीक्षा और धर्ममूर्तिगणि को वाचना-चार्य पद दिया गया।

सं० १३१६ मिगसिर सुदि ७ के दिन अभयतिलकगणि को उपाध्याय पद दिया गया। उसी वर्ष पं० देवमूर्ति आदि साधुओं को साथ लेकर श्रीअभयतिलक उपाध्यायजी उज्जैन गये, वहाँ पर तपागच्छ के पंडित विद्यानन्द को जीतकर "प्रासुकं शीतलं जलं यतिकल्प्यम्" इत्यादि सिद्धान्तों के बल से अपने पक्ष का स्थापन करके राज-सभा में जय-पत्र प्राप्त किया। इन महाराज का पालनपुर आदि स्थानों में बड़े विस्तार से प्रवेशोत्सव हुआ था। सं० १३१६ माह वदि पंचमी को विजयसिद्धि साध्वी की दीक्षा हुई। माह वदि ६ को श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा, अजितनाथ प्रतिमा, सुमतिनाथ प्रतिमा की सेठ बुधचन्द्र ने बड़े महोत्सव से प्रतिष्ठा कराई। सेठ भुवनपाल ने ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा, जशधर के पुत्र जीवित श्रावक ने धर्मनाथ स्वामी की प्रतिमा, रत्न और पेथड़ श्रावक ने सुपार्श्व स्वामी की प्रतिमा, सेठ हरिपाल और उसके भाई कुमारपाल ने श्रीजिनवल्लभसूरि मूर्ति और सिद्धान्तयक्षमूर्ति की स्थापना एवं प्रतिष्ठा कराई। सेठ अभयचन्द्र ने श्रीपत्तन में अक्षय तृतीया के दिन श्रीशान्तिनाथ देव के मंदिर पर दंडकलश चढ़ाये।

सं० १३२१ फागुन सुदि २ के दिन गुरुवार को चित्रसमाधि और शान्तिनिधि नामक आर्याओं की दीक्षा हुई। सं० १३२१ फागुन वदि* ११ को पालनपुर में तीन मन्दिरों की और ध्वजदंड की प्रतिष्ठा कर, जेसलमेर के श्री संघ की प्रार्थना से श्रीजिनेश्वरसूरिजी जेसलमेर पहुंचे और वहां पर जेठ सुदि १२ के दिन सेठ यशोधवल के बनवाये हुए देवगृह-शिखर पर दंडध्वज का आरोपण किया और पार्श्वनाथ स्वामी की स्थापना की। सं० १३२१ जेठ सुदि पूर्णिमा के दिन चारित्रशेखर, लक्ष्मीनिवास तथा रत्नावतार नाम के तीन साधुओं को दीक्षा दी।

सं० १३२२ माह सुदि १४ को विक्रमपुर में त्रिदशानन्द, शान्तमूर्ति, त्रिभुवनानन्द, कीर्तिमंडल, सुबुद्धिराज, सर्वराज, वीरप्रिय, जयवल्लभ, लक्ष्मीराज और हेमसेन तथा मुक्तिवल्लभा, नेमिभक्ति, मंगलनिधि, प्रियदर्शना को तथा विक्रमपुर में ही वैसाख सुदि ६ को वीरसुन्दरी को दीक्षित किया गया।

सं० १३२३ मार्गशिर वदि पंचमी को नेमिध्वज को साधु और विनयसिद्धि तथा आगमसिद्धि को साध्वी बनाया। सं० १३२३ वैसाख सुदि १३ के दिन देवमूर्तिगणि को वाचनाचार्य का पद दिया और द्वितीय जेठ सुदि दशमी को जेसलमेर में श्री पार्श्वनाथ विधि चैत्य पर चढ़ाने के लिये सेठ नेमिकुमार और गणदेवक द्वारा बनवाये हुये स्वर्णदंड और कलशों की प्रतिष्ठा की

* नोट—इस निबन्ध में तिथियां गुजराती मास के हिसाब से ली गई हैं। अतएव सुदि-वदि का आगे पीछे होना भ्रमोत्पादक नहीं है।

तथा विवेकसमुद्रगणि को वाचनाचार्य का पद दिया। आषाढ़ वदि एकम को हीराकर को साधु पद प्रदान दिया।

सं० १३२४ मार्गशीर्ष कृष्णा २ शनिवार के दिन कुलभूषण, हेमभूषण दो साधु और अनन्तलक्ष्मी, व्रतलक्ष्मी, एकलक्ष्मी, प्रधानलक्ष्मी, पांच (? चार) साध्वियों को गाजे-बाजे आदि प्रदर्शन के साथ दीक्षित किया। यह दीक्षा महोत्सव जावालीपुर (जालोर) में हुआ था।

सं० १३२५ वैशाख सुदि १० को जावालीपुर में ही श्रमहावीर-विधिचैत्य में पालनपुर, खम्भात, मेवाड़, उच्चा, वागड़ आदि स्थानों से आये हुए समुदायों के मेले में व्रतग्रहण, मालारोपण, सम्यक्त्वारोपण, सामायिक ग्रहण आदि तथा नन्दियां विस्तार से की गईं। वहाँ पर राजेन्द्रबल नाम का साधु तथा पद्मावती नाम की साध्वी बनाई गई। वैशाख सुदि १४ के दिन महावीर विधि-चैत्य में चौवीस जिनप्रतिमाओं की, चौवीस ध्वज दंडों की, सीमंधर स्वामी, युगंधर स्वामी, बाहु-सुबाहु स्वामी की मूर्तियों की बड़े विस्तार से प्रतिष्ठा हुई। वैसे ही जेठ वदि चौथ के दिन सुवर्णगिरि में स्थित श्रीशान्तिनाथ विधिचैत्य में चौवीस देवकुलिकाओं में उन्हीं चौवीस जिन प्रतिमाओं की, सीमंधर स्वामी, युगमंधर स्वामी, बाहु-सुबाहु प्रतिमाओं की स्थापना सर्व समुदायों के मेले में बड़े उत्सव से की। उसी दिन धर्मतिलक गणि को वाचनाचार्य का पद दिया गया और वैसे ही वैशाख सुदि १४ को जेसलमेर के श्री पार्श्वनाथ विधि चैत्य में सेठ नेमिकुमार और गणदेव के बनाये हुए सुवर्णदंड और सुवर्ण कलश का अवशिष्ट महोत्सव पूरा किया गया।

६६. सं० १३२६ में सेठ भुवनपाल के पुत्र अभयचन्द्र ने तथा मं० अजित सुत देदाक नाम के श्रावक ने रास्ते के प्रबन्ध भार को स्वीकार कर लिया। तभी से सेठ अभयचन्द्र, महं० अजित सुत महं० देदा, सेठ राजदेव, सेठ कुमारपाल, सेठ बिम्बदेव, श्रीपति, मूलिग और धनपाल आदि संघ के प्रमुख सज्जनों ने शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा के लिये महाराज से बहुत प्रार्थना की। चतुर्विध संघ की प्रार्थना स्वीकार करके श्रीजिनरत्नाचार्य, श्रीचन्द्रतिलकोपाध्याय, कुमुदचन्द्र आदि २३ साधु तथा श्रीलक्ष्मीनिधि महत्तरा आदि मुख्य १३ साध्वियों को साथ लेकर श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज ने पालनपुर से तीर्थ-यात्रा के लिये विहार किया। मार्ग में स्थान-स्थान पर विधिमार्ग की प्रभावना करता हुआ श्रीसंघ श्री तारण महातीर्थ पहुंचा। वहाँ पर महं० देदाक ने पाँच हजार द्रम्म देकर इन्द्रपद लिया। पूनाजी के पुत्र सेठ पेथड़ ने चार सौ रुपयों में मंत्रिपद, कुलचन्द्र के पुत्र बीजड़ ने सौ रुपये देकर सारथिपद, सेठ राजाक ने एक सौ दस रुपये में भाँडागारिक पद, महं० देदा की दो धर्मपत्नियों ने तीन सौ रुपये देकर आचमनधारि पद, तेजपाल ने नौ रुपयों में छत्रधर पद और सेठ अपदेव तथा तेजपाल की पत्नियों ने क्रमशः चमरधारी पद प्राप्त किया।

इसी प्रकार बीजापुर में श्रीवासुपूज्य भगवान् के विधि-चैत्य में सेठ श्रीपति ने तीन सौ सोलह रुपये में माला ली। इस प्रकार सारा मिलाकर भंडार में तीन हजार रुपयों का संग्रह हुआ।

तदनन्तर संघ खंभात पहुँचा। वहाँ पर बहुगुण के भाई थकण ने छः सौ सोलह रुपयों से इन्द्रपद पाया। साकरिया गोत्रीय सहजपाल ने एक सौ चालीस रुपयों में मंत्रीपद प्राप्त किया। साह पासु श्रावक ने दो सौ बत्तीस में चमरधारियों के चारों पद लिये। सांगण के पुत्र ने अस्सी रुपये भेंट चढ़ाकर प्रतिहार का ओहदा प्राप्त किया। पासु पुत्र ने सत्तर रुपये देकर सारथि का स्थान ग्रहण किया। भां० राजक के पुत्र नावंधर ने अस्सी रुपयों में भंडारी का पद प्राप्त किया। बहुगुण ने चालीस रुपयों में छत्रधर पद प्राप्त किया। कां० पारस के पुत्र सोमाक ने पचास रुपयों में शिविका-वाहक का पद लिया। पदधारियों की तरफ से कुल तेरह सौ आठ रुपये संग्रह किये गये। वैसे सारे संघ की तरफ से साढ़े पाँच हजार रुपये इकट्ठे किये गये।

वहां से चलकर संघ शत्रुञ्जय महातीर्थ में पहुँचा। सा० मूलिग ने एकहजार चार सौ चौहत्तर रुपये भेंट चढ़ाकर इन्द्रपद को धारण किया। महं० देदाक के पुत्र महं० पूनमसिंह ने आठ सौ रुपयों में मंत्रि पद प्राप्त किया। भां० राजापुत्र इसल ने चार सौ बीस में भांडागारिक पद प्राप्त किया। सालक ने दो सौ चौहत्तर में प्रतिहार का स्थान ग्रहण किया। महं० सांवत के पुत्र आल्हणसिंह ने दो सौ चौबीस में सारथि का स्थान पाया। सेठ धणपाल के पुत्र धींधाक ने एक सौ सोलह में छत्रधर का पद पाया। छो० देहड़ ने दो सौ अस्सी में पारधिय पद लेकर अपने को कृतार्थ किया। पद्मसिंह ने एक सौ रुपये देकर पालकी वादक का पद लिया। बहुगुण ने साढ़े चार सौ में आद्य चमरधारी के प्रतिष्ठित पद को प्राप्त करके अपने को संघ का प्रीति पात्र बनाया। भां० राजाक ने तथा सा० रूपा ने सौ रुपयों में पीछे की ओर का चमरग्राही का स्थान ग्रहण किया। इन उपर्युक्त सब पदों की पांच हजार तीन सौ अड़तीस रुपये आय हुई। सा० पाल्ह श्रावक ने अड़तीस लेप्यमय द्रमक से (?) मूलनायक युगादिदेव की मुखोद्घाटन माला ली। पद्र के पुत्र सेठ दाहड़ ने तीन सौ चार में मूलनायक युगादिदेव की माला पहनी। महं० देदा की माता हीरल श्राविका ने पांच सौ रुपये में मरुदेवी स्वामिनी की माला पाई। सेठ राजदेव की माता तीवी (?) श्राविका ने एक सौ चालीस में पुन्डरीक गणधर की माला ग्रहण की। उसके पुत्र मूलराज ने एक सौ सत्तर रुपयों में कपर्दियक्ष की माला पहनी। इस प्रकार सब मिला कर तीर्थ के खजाने में सत्तरह हजार रुपये इकट्ठे किये गये।

इसके बाद संघ वहाँ से चलकर उज्जयन्त महतीर्थ में पहुंचा। वहाँ पर शाह श्रीपति ने इक्कीस सौ रुपये भेंट देकर इन्द्रपद, सेठ हरिपाल के पुत्र पूर्णपाल ने छः सौ सोलह में मंत्रि पद, सेठ राजदेव के पुत्र लखण ने दो सौ चालीस में शिविकावाहक का स्थान, पाल्हू श्रावक ने दो सौ

नब्बे में प्रतिहार पद, भां० राजपुत्र अटा ने पांच सौ में भंडारी का पद, ठां० मनोरथ ने दो सौ आठ में सारथि पद, सा० राजदेव के भतीजे भुवनाक ने डेढ़ सौ में पारिधिय पद, सा० राजदेव के पुत्र सलखण ने एक सौ चालीस में शिविकावाहक का पद, धनदेव ने एक सौ तेरह में छत्रधर पद, सेठ श्रीपति ने दो सौ में प्रथम चमरधारिपद और पचासी रुपये में चतुर्थ चरम धारिपद भी, वै० सा० बहुगुण ने एक सौ आठ में द्वितीय चमरधारि पद और नब्बे में तृतीय चमरधारि पद, वै० हांसिल पुत्र वै० देहड़ ने पांच सौ सोलह में श्री नेमिनाथ मुखोद्घाटन माला, सेठ अभयचन्द्र की माता तिहुअणपाल ही श्राविका ने एक सौ चालीस में राजमति माला, सेठ श्रीपति की माता मोल्हा श्राविका ने पैंतीस में अम्बिका माला, पाल्हण के पुत्र देवकुमार ने एक सौ चम्मालीस में साम्बमाला, शाह अभयचंद्र के पुत्र वीरधवल ने एक सौ अस्सी में प्रद्युम्न माला, सेठ राजदेव के भाई मोलाक ने तीन सौ ग्यारह में कल्याणजयमाला, सेठ पासू की बहन रासल श्राविका ने दो सौ चालीस में श्रीशत्रुञ्जय ऋषभदेव माला, सेठ पासू की माता पाल्ही श्राविका ने एक सौ चौबीस में मरुदेवी माला, सा० ऊदा पुत्र भीमसिंह ने एक सौ आठ में पुन्डरीक माला, सेठ धणपाल ने अवलोकनाशिखरमाला तथा साह राजदेव के भाई गुणधर के पुत्र बीजड़ ने चौबीस रुपयों में कपर्दियक्षमाला ग्रहण की। इस प्रकार सब मिलाकर ७०६७ रुपये हुए। शत्रुञ्जय तीर्थ के देवभंडार में बीस हजार और उज्जयन्त तीर्थ के देवकोश में सतरह हजार रुपये संग्रह किये गये।

श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज ने उज्जयन्त तीर्थ में श्रीनेमिनाथ स्वामी की मूर्ति के समक्ष जेठ वदि ···में प्रबोधसमुद्र, विनयसमुद्र को दीक्षा दी तथा मालारोपण आदि महोत्सव किया। इसके बाद संघ देवपत्तन में गया। वहाँ पर पतियाण (पटेल) और बाहिक जाति के लोगों ने विपुल धन संग्रह करके संघ को दिया और उस धन के द्वारा चतुर्विध संघ सहित श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने सकल लोगों का हित करने के लिये 'चैत्यपरिपाटि' महोत्सव किया। ऐसा करने से पतियाण के वासी और उसका मालिक बहुत खुश हुए।

इस प्रकार मार्ग में स्थान-स्थान पर महाप्रभावना करने से संघ ने अपने जन्म और सामर्थ्य को सफल किया। महाराज ने भी विधि-मार्गीय, संघ के साथ तीर्थयात्रा निर्विघ्न समाप्त करके अपने चिर संकल्पित मनोरथ को सफल किया। सेठ अभयचन्द्र ने आषाढ़ सुदि नवमी के दिन चतुर्विध संघ सहित श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज का पालनपुर नगर में ऐसा प्रवेश महोत्सव कराया कि जिसे देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस प्रकार तीर्थयात्रा और नगर-प्रवेश दोनों ही बृहत्कार्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज के पुण्य प्रभाव से निर्विघ्नता के साथ सम्पन्न हुये। इस प्रसंग में दानवीर-कर्मवीर सेठ अभयचन्द्र के गुणों का परिचय देने वाले श्लोक तथा उनका भावार्थ यहां दिया जाता है—

सुमेरौ निर्मेरैरपि सपदि जग्मे तरुवरै-
र्द्यु गव्या दिव्यन्ते सलिलनिधौ चिन्तामणिगणैः। (?)
कलौ काले वीक्ष्यानवधिमभितो याचयगणं
न तस्थौ केनाऽपि स्थिरमभयचन्द्रस्तु विजयी॥
धैर्यं ते स विलोकतानभय ! यः शैलेन्द्रधैर्योत्मना,
गाम्भीर्यं स तवेक्षतां जलनिधेर्गाम्भीर्यमिच्छुश्च यः।
भक्तिं देवगुरौ स पश्यतु तव श्रीश्रेणिकं यः स्तुते,
यात्रां तीर्थपतेः स वेत्तु भवतो यः स सांप्रतीं जीप्सति॥

[कलियुग में चौतरफ अनगणित याचकों की फौज को देखकर कल्पद्रुम भाग कर सुमेरु पहाड़ पर चले गये। कामधेनु और चिन्तामणि वगैरा भी अपने-अपने स्थान पहुंच गये। याचकों की अधिकता को देखकर सब की स्थिरता जाती रही। परन्तु हमें इस बात को प्रकाशित करते हुए महान् हर्ष होता है कि दानवीर विजयी अभयचन्द्र की स्थिरता ज्यों की त्यों रही।]

हे अभयचन्द्र! दर्शकों को आपका धैर्य हिमाचल पहाड़ के समान दिखलाई देता है। जिस पुरुष को समुद्र के गाम्भीर्य का ज्ञान है, वही आपके गाम्भीर्य को भली-भांति अनुभव में ला सकता है। देवगुरु की भक्ति करने में आप श्रेणिक महाराज के समान यशस्वी हैं। जो पुरुष प्रियदर्शी राजा अशोक के पुत्र महाराज सम्प्रति की तीर्थ-यात्रा का वर्णन जानना चाहता है वह आपके द्वारा की गई तीर्थ यात्रा के वर्णन का मर्म समझे।]

इसके बाद सं० १३२८ वैशाख सुदि चतुर्दशी के दिन जालोर में सेठ खेमसिंह ने श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी की बड़ी मूर्ति की, महं० पूर्णसिंह ने ऋषभदेव की और महं० श्रीब्रह्मदेव ने श्री महावीर प्रतिमा की प्रतिष्ठा का महोत्सव किया। जेठ वदि ४ को हेमप्रभा को साध्वी बनाया। सं० १३३० वैशाख वदि ६ को प्रबोधमूर्तिगणि को वाचनाचार्य का पद, और कल्याण-ऋद्धि गणिनी को प्रवर्तिनी का पद दिया। तदनन्तर वैशाख वदि अष्टमी को सुवर्णगिरि में श्री चन्द्रप्रभ स्वामी महाराज की बड़ी प्रतिमा की स्थापना शिखर पर की।

७०. संसार के चित्त को चमत्कृत करने वाले चरित्रों को करते हुए श्रीमहावीर शासन की प्रभावना को बढ़ाते हुए, बढ़ती हुई आपदाओं की तरङ्गों से भयानक-संसार रूपी महासमुद्र में डूबते हुए प्राणी समूह को बचाने वाले, समस्त प्राणियों के मन में उत्पन्न होने वाले अनेक विध मनोरथों

को कल्पवृक्ष की तरह पूर्ण करने वाले, अपनी वाक्पटुता से देवगुरु बृहस्पति को पराजित करने वाले, लोकोत्तर ज्ञानधन के भंडार, जावालीपुर (जालोर) में स्थित प्रभु श्री जिनेश्वरसूरिजी महाराज ने अपना मृत्युकाल निकट आया जानकर सूरि-संघ के सामने अनेक गुणों की खान वाचनाचार्य प्रबोध-मूर्तिगणि को सं० १३३१ आश्विन वदि पंचमी को अपने पाट पर अपने हाथ से स्थापित किया। उनका जिनप्रबोधसूरि नाम दिया। पालनपुर में स्थित श्रीजिनरत्नाचार्य को यह संदेश भिजवाया कि—'चातुर्मास के बाद सारे गच्छ और समुदाय के साथ जिनप्रबोधसूरि का आचार्य पद स्थापना महोत्सव करना।' इसके बाद पूज्यश्री ने अनशन ग्रहण कर लिया। और पंचपरमेष्ठी का ध्यान करते हुए, अनेक स्तोत्रों का पठन करते हुए, प्राणि मात्र से क्षमा-प्रार्थना करके शुभ ध्यान में निमग्न होकर आश्विन वदि ६ को दो घड़ी रात बीते बाद जिन शासन गगन के चमकते हुए चाँद श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज सदा के लिये इस संसार को त्याग कर स्वर्गीय देवों से परिचय बढ़ाने के लिये यह लीला संवरण करके स्वर्गधाम को पधार गये।

प्रातःकाल होने पर राजा-प्रजा आदि सारे समुदाय ने एकत्रित होकर गाजे बाजे के साथ श्री-पूज्यजी का दाह संस्कार किया। सर्व समुदाय की सम्मति से सेठ क्षेमसिंह ने चिता-स्थान पर श्री पूज्यजी की यादगारी में एक सुन्दर स्तूप बनवा दिया।

आचार्य जिनप्रबोधसूरि

चातुर्मास समाप्त होने पर श्रीजिनरत्नाचार्यजी जावालीपुर आ गये। वे श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज की आज्ञानुसार श्रीजिनप्रबोधसूरिजी के पद स्थापना की साङ्गोपाङ्गता के लिये महोत्सव की चेष्टा करने लगे। श्रावकों की ओर से आमंत्रण पत्रिका पाकर चारों दिशाओं से अनेक नगरोंपनगरों के लोग आकर जुट गये। श्रीचन्द्रतिलकोपाध्याय, श्रीलक्ष्मीतिलकोपाध्याय, वाचनाचार्य पद्मदेवगणि आदि मुख्य-मुख्य साधु लोग भी आये। प्रतिदिन दीन अनाथदुःखियों को दान दिया जाने लगा। खान-पान-मिष्टान आदि सुख साधनों से आगन्तुक चतुर्विध संघ का आदर सत्कार होने लगा। लोगों के मन-मयूर को आनन्दित करने के लिये मेघाडम्बर के समान नाना प्रकार के नाच-कूद खेल किये जा रहे थे। उसी समय सं० १३३१ से फाल्गुन वदि अष्टमी रवि के दिन गच्छ के नियन्ता, व्यवहार पटु, वयोवृद्ध श्रीजिनरत्नाचार्यजी ने श्रीजिनप्रबोधसूरिजी की पद स्थापना की। इसके बाद फागुन सुदि पंचमी के दिन स्थिरकीर्ति, भुवनकीर्ति दो मुनियों और केवलप्रभा हर्षप्रभा, जयप्रभा, यशःप्रभा नामक तीन साध्वियों को जिनप्रबोधसूरिजी ने दीक्षा दी।

सं० १३३२ जेठ वदि प्रतिपदा शुक्रवार के दिन श्री जावालीपुर में सभी देशों से आये हुए श्री संघ के मेले में श्रावक शिरोमणि श्री सेठ क्षेमसिंह ने नमि-विनमि सहित श्रीऋषभदेवजी, श्री महावीर स्वामी, अवलोकना शिखर, श्रीनेमिनाथजी, शाम्ब-प्रद्युम्न, श्रीजिनेश्वरसूरिजी, धनदयक्ष और सुवर्णगिरि में स्थित श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी और वैजयन्ती की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। उसी अवसर पर दिल्ली निवासी दलिकहरू श्रावक ने श्रीनेमिनाथ स्वामी की, सेठ हरिचन्द्र श्रावक ने शान्तिनाथ भगवान् की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई। इस प्रकार और भी देवमूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई गई। जेठ वदि ६ को सुवर्णगिरि में श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी की ध्वजा का आरोपण किया गया। जेठ वदि नवमी के दिन स्तूप में श्रीजिनेश्वरसूरि की मूर्ति स्थापित की गई। उसी दिन विमलप्रज्ञ मुनि को उपाध्याय पद, राजतिलक को वाचनाचार्य का पद प्रदान किया गया। जेठ सुदि तृतीया के दिन गच्छकीर्ति, चारित्रकीर्ति, क्षेमकीर्ति नामक मुनियों को और लब्धिमाला, पुण्यमाला नामक साध्वियों को दीक्षित किया गया।

सं० १३३३ माघ वदि १३ को जावालीपुर में कुशलश्री गणिनी को प्रवर्त्तिनी पद दिया गया। इसी वर्ष सेठ विमलचन्द्र के पुत्र सेठ क्षेमसिंह और सेठ चाहड़ के द्वारा बनाये हुए कार्यक्रम के अनुसार और इन्हीं दोनों श्रावकों द्वारा मार्ग-प्रबन्ध करने पर सेठ क्षेमसिंह, सा० चाहड, हेमचन्द्र, हरिपाल, दिल्ली निवासी जेसू सेठ के पुत्र सेठ पूर्णपाल, सोनी बांधल के पुत्र भीमसिंह, राजा के

मंत्री देदा के पुत्र मंत्री महणसिंह आदि सब दिशाओं से आकर इकट्ठे हुए विधि संघ ने, शत्रुञ्जय आदि महातीर्थों की यात्रा के लिये महाराज से अनुरोध किया। संघ की प्रार्थना अङ्गीकार करके जिनरत्नाचार्य, लक्ष्मीतिलकोपाध्याय, विमलप्रज्ञोपाध्याय, वाचक पद्मदेवगणि, वा० राजतिलकगणि आदि सत्ताईस साधु, प्रवर्तिनी ज्ञानमाला गणिनी, प्र० कुशलश्री, प्र० कल्याणऋद्धि आदि पन्द्रह साध्वियों को साथ लेकर गुरु श्रीजिनप्रबोधसूरिजी चैत्र वदि पंचमी के दिन जा बा ली पु र से तीर्थ-यात्रा के लिये चल पड़े। श्रीसंघ ठौर-ठौर चमत्कार करने वाली विधिमार्ग की प्रभावना करता हुआ श्री श्री मा ल पहुंचा। वहां पर शान्तिनाथ भगवान् के विधिचैत्य में इस आये हुए विधि संघ की तरफ से चौदह सौ चौहत्तर रुपये मंदिर के फंड में दिये गये।

इसी प्रकार पा ल न पु र वगैरह में बड़े विस्तार से चैत्यपरिपाटी आदि कार्यों से प्रभावना करके संघ श्री ता र ण तीर्थ पहुँच गया। वहां पर सेठ निंबदेव के पुत्र साह हेमा ने ग्यारह सौ चौहत्तर रुपयों में इन्द्रपद ग्रहण किया। इन्द्र परिवार ने इक्कीस सौ देकर मंत्री पद प्राप्त किया। इस प्रकार सारे मिलाकर कोश में पांच हजार दो सौ चौहत्तर रुपयों की आय हुई। श्रीसंघ ने बीजापुर पहुंच कर माला आदि ग्रहण करके श्रीवासुपूज्य विधिचैत्य के कोश में चार हजार रुपये प्रदान किये। इससे आगे चलकर स्तम्भनक महातीर्थ में गोठी खेमंधर के पुत्र यशोधवल ने ग्यारह सौ चौहत्तर रुपये देकर इन्द्रपद, इन्द्र परिवार ने चौवीस सौ देकर मंत्रि आदि के पद प्राप्त किये। श्रीसंघ की ओर से कुल आय सात हजार रुपयों की हुई। इसी प्रकार भृ गु क च्छ ती र्थ में श्रीसंघ ने चार हजार सात सौ रुपये भेंट चढ़ाये।

श्री श त्रु ञ्ज य तीर्थ में युगादिदेव भगवान् के मंदिर में दिल्ली वाले सेठ पूर्णपाल ने बत्तीस सौ में इन्द्रपद, इन्द्र परिवार ने तीन हजार में मंत्री आदि के पद लेकर सेठ हरिपाल ने माला पहन कर बैयालीस सौ प्रदान किये। कलश आदि की बोली बोलकर अन्य श्रावकों ने पचीस हजार रुपये दिये। इस प्रकार दान देकर श्रीसंघ ने द्रव्य का सदुपयोग करके अक्षय कीर्ति उपार्जन की।

वहां पर युगादिदेव श्रीऋषभनाथ भगवान् की मूर्ति के सामने श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने जेठ वदि सप्तमी को जीवानन्द साधु तथा पुण्यमाला, यशोमाला, धर्ममाला, लक्ष्मीमाला साध्वियों को दीक्षा दी और विधिमार्ग की प्रभावना के लिये मालारोपण आदि महोत्सव भी बड़े विस्तार से किया। श्री श्रेयांसप्रभु के विधिचैत्य में श्रीसंघ ने सात सौ आठ रुपये दिये। इसके बाद गिरनार (उज्जयन्त) तीर्थ में सेठ मूलिग के पुत्र कुमारपाल ने साढ़े सात सौ में इन्द्र पद लिया। इन्द्र श्रावक के परिवार वालों ने साढ़े इक्कीस सौ में मंत्री आदि पद प्राप्त किये। सेठ हेमचन्द्र ने अपनी माता राहू के वास्ते दो हजार में नेमिनाथ भगवान् की माला ली। इस प्रकार सारी आमदनी का टोटल तेईस हजार रुपये वहां के कोश में संगृहीत हुए।

इस प्रकार तीर्थों में, गांवों में, नगरों में, शहरों में, प्रवचन, उत्सव आदि विविध प्रभावनाओं से अपना धन और जन्म सफल करके तीर्थयात्रा की पूर्ति से सफल मनोरथ होकर श्रीसंघ जा लौर आ पहुंचा। सेठ खेमसिंह ने आषाढ़ सुदि चतुर्दशी के दिन चतुर्विध संघ सहित, देवों से भी भय रहित ऐसे श्रीजिनप्रबोधसूरिजी का नगर प्रवेश विधिमार्ग की प्रभावना के लिये निर्विघ्नता पूर्वक करवाया। यह प्रवेश महोत्सव जब तक सूरज-चाँद रहें, तब तक समस्त संघ को प्रमोद देने वाला हो।

७३. सं० १३३४ मार्गसिर सुदि १३ दिन रत्नवृष्टिगणिनी को प्रवर्तिनी पद दिया गया। तदनन्तर श्रीमपल्ली नगरी में वैशाख बदि पंचमी के दिन सेठ राजदेव ने श्री नेमिनाथ स्वामी, श्रीपार्श्वनाथ स्वामी, श्रीजिनदत्तसूरि की मूर्तियों की प्रतिष्ठा तथा श्रीशान्तिनाथ देव के मंदिर पर दंड-ध्वजा का आरोपण किया। इसी प्रकार सब समुदायों को बुलाकर महोत्सव के साथ सेठ वयपाल ने श्रीगौतम स्वामी मूर्ति की प्रतिष्ठा की। वैसाख बदि नवमी के दिन मंगलकलश साधु को दीक्षा दी गई। इसके बाद जेठ सुदि द्वितीया के रोज पूज्यश्रीजी महाराज बाड़मेर की ओर विहार कर गये। वहाँ पर सं० १३३५ में मार्गसिर बदि चतुर्थी के दिन पद्मकीर्ति, सुधाकलश, तिलककीर्ति, लक्ष्मीकलश, नेमिप्रभ, हेमतिलक और नेमितिलक साधुओं को बड़े समारोह से दीक्षित किया।

७४. पौष सुदि नवमी को वहां से चित्तौड़ की ओर विहार कर गये। चित्तौड़ में सोनी श्रीधांधल और उसके पुत्र भां० बाहड़ श्रावक ने सारे समुदाय तथा राजा-रईस-नागरिक लोगों के साथ बड़ी सजधज से महाराज का नगर-प्रवेश महोत्सव करवाया। फागुन सुदि पंचमी को श्री समरसिंह महाराज के रामराज्य में आस-पास के नगरों एवं ग्रामों से आने वाले लोगों का मेला लग गया। इसके अलावा चित्तौड़ में रहने वाले ब्राह्मण, जटाधर-तपस्वी, राजपुत्र, प्रधान खेत्रसिंह, कर्णराज आदि मुख्य-मुख्य नागरिक लोगों की उपस्थिति में महोत्सव हुआ। स्थानीय एकादश मन्दिरों के एकादश छत्रों सहित पालकियों से नगर की शोभा बढ़ रही थी। ठौर-ठौर पर बारह प्रकार के बांदी निनाद हो रहे थे। याचकों के मनोरथों को पूर्ण करने वाला दान दिया जा रहा था। उस समय चित्तौड़ के चौरासी नामक मोहल्ले में लोगों के चित्त में आश्चर्य पैदा करने वाली जलयात्रा के साथ श्रीमुनिसुव्रत स्वामी, युगादिदेव, श्री अजितनाथ स्वामी, वासुपूज्य भगवान् की प्रतिमाओं तथा श्री महावीर समवसरण की स्थापना की गई। इसके साथ ही सेठ धनचन्द के पुत्र सेठ समुद्धर से बनवाये गये और पूर्णगिरि में स्थित शान्तिनाथ विधिचैत्य में पित्तलमय शान्तिनाथ स्वामी का समवसरण एवं शाम्ब आदि अन्य मूर्तियों का तथा दंडधारी द्वारपाल प्रतिमाओं का विधिमार्ग के जय-जयकार के साथ बड़े विस्तार से प्रतिष्ठा महोत्सव करवाया गया। उसी दिन चौरासी मोहल्ले में श्रीऋषभनाथ और नेमिनाथ स्वामी की मूर्ति की स्थापना हुई। फागुन सुदि पंचमी को ही उसी

चौरासी मोहल्ले में श्री ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ ,शाम्ब, प्रद्युम्न मुनि, अम्बिका और खरतर-हट्टी अम्बिका देवी के मन्दिरों में ध्वजा चढ़ाने के निमित्त एक बहुत बड़ा अपूर्व दर्शनीय महोत्सव किया गया। इस महोत्सव में सारे राज्य के भार को वहन करने वाले महाराज कुमार श्री अरिसिंहजी की उपस्थिति से और विशेषता आ गई थी। इन सभी महोत्सवों में धन तो पंचायत की ओर से खर्च किया गया था, परन्तु सोनी सेठ धांधलजी और उनके पुत्र बाहड़ ने पूर्ण परिश्रम करके उत्सव को सफल बनाया था।

इसके बाद पूज्यश्री बद्दुड़ा गांव में पधारे। वहां पर जिसकी प्रतिष्ठा कभी श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज ने करवाई थी, उसी श्रीपार्श्वनाथ विधिचैत्य का जीर्णोद्धार महण, झांझण आदि पुत्रों के पिताश्री सेठ आल्हाक ने करवाकर, उस पर चित्तौड़ में प्रतिष्ठित ध्वज-दंड का आरोपण फागुन सुदि चतुर्दशी को विस्तार से करवाया। महाराज वहाँ से जाहेड़ा गांव में गये। वहां पर सेठ कुमार आदि अपने कुटुम्बियों के साथ सोमल श्रावक ने चैत सुदि तेरस के दिन सम्यक्त्वारोपादि नन्दि महोत्सव किया। इसके बाद वरड़िया स्थान में वैशाख वदि ६ को श्रीपुन्डरीक, श्रीगौतमस्वामी, प्रद्युम्न मुनि, जिनवल्लभसूरि, श्रीजिनदत्तसूरि, जिनेश्वरसूरि और सरस्वती की मूर्तियों का जलयात्रा महोत्सव के साथ निर्विघ्नता से प्रतिष्ठा-महोत्सव सम्पन्न किया गया। वैशाख वदि सप्तमी को मोह-विजय तथा मुनिवल्लभ को दीक्षा दी गई और हेमप्रभगणि को वाचनाचार्य पद दिया।

७५. सं० १३३६ जेठ सुदि नवमी को युगप्रधान श्री आर्यरक्षित* मुनि के चरित्र को याद करते हुये श्रीपूज्यजी ने अपने पिता सेठ श्रीचन्द्र का अन्त समय जानकर शीघ्रतया चित्तौड़ से चलकर पालनपुर आकर उन्हें दीक्षित किया। उस समय भाग्य से देवपत्तनीय कोमलगच्छ के बहुत से श्रावक वहाँ आगये थे। सेठ श्रीचंद के धन से दीन और अनाथ लोगों के मनोरथ पूर्ण किये गये थे। सेठ ने दान योग्य सातों क्षेत्रों में अपने धन को देकर अपने को सफल कर दिया था। संयम धारण के समय बारह प्रकार का नांदि-निनाद हो रहा था। सेठ श्रीचंदजी निरन्तर शुद्ध शील रूपी अलंकार को धारण किये हुये थे। पुण्यराग (प्रेम) रूपी अङ्गराग-केसरादि लेप से उनका शरीर सुवासित था। वे अनेक प्रकार के स्वाध्याय रसरूपी ताम्बूल से रंजित मुख वाले थे। इन पुण्यात्मा श्रीचंद ने (जिनका दीक्षित दूसरा नाम श्रीकलश रक्खा गया था) एक प्रकार के पुरोहित सोमदेव का चरित्र प्रगट कर दिया, क्योंकि उन्होंने ने भी अन्त समय में अपने पुत्र से दीक्षा धारण की थी। इन महात्मा श्रीचंदजी ने अपने बढ़ते हुए वैराग्य से तीव्र असिधन के समान पापियों को दुष्प्राप्य साधुव्रत को धारण करके सत्तरह दिनों में सत्रह प्रकार के असंयम को निर्दलित करने वाले अपूर्व चरित्र के द्वारा लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया। उन्होंने अतिचार रहित प्रत्याख्यान

* आर्यरक्षित मुनि ने भी अपने पिता पुरोहित सोमदेव को अन्त समय में दीक्षा देकर संयमधारी बनाया था।

किये थे। नई-नई आराधनाओं का अमृत पान किया था। खंभात तीर्थयात्रा के लिये जाने वाले अनेक संघों के भक्तजनों को धर्मलाभपूर्वक आशीर्वाद देकर पवित्र किया था। ये साधुओं में रत्न के समान थे। दीक्षा धारण करने के कारण ये अपने कुल रूपी महल के सुवर्ण कलश होगये थे। इन महामुनि श्रीकलशजी ने पंचपरमेष्ठि महामंत्र के ध्यान को स्वर्ग में चढ़ने के लिये सोपान-श्रेणि बनाकर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

७६. सं० १३३७ में वैशाख वदि नवमी को गुरु श्रीजिनप्रबोधसूरिजी महाराज ने अपने चरणविन्यास से समस्त गुजरात प्रान्त में प्रधान नगर बीजापुर को पवित्र किया। इस शुभ अवसर में सेठ मोहन, सेठ आसपाल आदि समुदाय के मुख्य-मुख्य लोग और मंत्री विन्ध्यादित्य, ठाकुर उदयदेव भां० लक्ष्मीधर आदि राज के मुखिया लोग तथा अन्य नागरिक महाजन लोगों के संगठित होने पर सब मनुष्यों के आनन्ददायी बारह प्रकार के नन्दि बाजों के गुंजार में, अनेक वारांगनायें ठौर-ठौर अपनी नृत्यकला का परिचय दे रहीं थीं। दान के लोभी भाट लोग ऊँचे स्वर से स्तुति गान कर रहे थे। उत्तम उपदेश से आनन्दित मंत्री विन्ध्यादित्य, ठा० उदयदेव आदि राजप्रधान पुरुषों के द्वारा उनकी प्रशंसा हो रही थी; उन्होंने जिनेश्वरों की तरह श्वेत छत्र धारण कर रक्खा था। सारे नगर में स्थित देवाधिदेवों को वे नमस्कार करते जाते थे। इस प्रकार पूज्यश्री का प्रवेश महोत्सव बड़े ठाठ-बाट से हुआ। उत्कट मिथ्यात्व के कारण आज से पहले कभी इस प्रकार का प्रवेश महोत्सव इस शहर में नहीं देखा था। इसीलिये नगरवासी समस्त सुन्दरियों के मन में इसके देखने से क्षोभ पैदा हुआ। इस उत्सव के प्रभाव से स्थानीय तमाम विघ्न टल गये। कई कारणों को लेकर यह महोत्सव लोकोत्तर हुआ। श्रावकों ने मुक्त-हस्त होकर इसमें प्रचुर धन खर्च किया था, इसलिए इसमें अच्छा रंग आगया था।

७७. तदनन्तर जेठ वदि चौथ शुक्रवार का दिन आया। श्री सारंगदेव महाराजाधिराज के रामराज्य में महामात्य मल्लदेव और उनके समान बुद्धिसागर उपमंत्री विन्ध्यादित्य का कार्यकाल था। सकल पृथ्वी की सारभूत गुजरात भूमि रूपी स्त्री के पुर-ग्राम आदि अलङ्कार थे। उन सब में मुकुट के समान बीजापुर नगर था। उस नगर में माणिक्य के समान श्रीवासुपूज्य विधिचैत्य था। उस चैत्य के दर्शनार्थ बड़े चाव से अनेक देशों से आने वाले सम्पत्तिशाली श्रीसंघ का मेला लगा। इस मेले में याचक लोगों से बजाये जाने वाले नन्दी बाजे के निनाद से दिग्-अङ्गनाओं के कर्ण-छिद्र पूरित हो रहे थे। रोमांच और हर्ष पैदा करने वाली बिरुदावली को हजारों आदमी पढ़ रहे थे। ठौर-ठौर पर प्रमुदित मनुष्य रासलीला कर रहे थे। घर-घर सुन्दर मंडप रचाये गये थे। महामिथ्यात्व और महामोह आदि रूपी प्रबल शत्रुओं को पछाड़ने वाले तथा जिनशासन के स्तम्भ-स्वरूप महाराज के आगे-आगे छत्र चमर-पालखी आदि चल रहे थे। उत्सव में जुलूस के आगे-आगे विद्यमान

महामंत्री विन्ध्यादित्य, ठाकुर जयदेव आदि राज्य के कर्ता स्वयं जुलूस का संचालन कर रहे थे। आनन्द-परवश पुरवासी सभी संप्रदायों के लोगों ने अपने हाट आदि स्थानों की दीवारों पर मालायें सजाई थीं और देवमन्दिरों में सभी जगह शामियाने ताने गये थे। उस समय सारे भूमण्डल पर आश्चर्य पैदा करने वाला, भव्य लोगों के मन को हरने वाला सांगोपांग प्रवेश महोत्सव अभूतपूर्व हुआ। दूसरे दिन भी उसी प्रकार महोत्सव होने लगे। जगह-जगह सदाव्रत दिये जा रहे थे। सब जगह अहिंसा की घोषणा करदी गई थी। ऐसे शुभ अवसर पर चौबीस जिन प्रतिमाओं का, ध्वज-दण्डों का, बोयला के वास्ते श्रीपार्श्वनाथ का और बहुत-सी जिन प्रतिमाओं का प्रतिष्ठा महोत्सव विधिमार्ग के जय-जय घोष के साथ किया गया था। इस उत्सव के समय कृष्ण नाम के पंडित ने श्री पं जि का प्र बो ध, श्री वृ त्त प्र बो ध, श्री वौ द्धा धि का र वि व र ण* आदि श्रीपूज्यश्री रचित ग्रन्थों को देखकर, उत्साहित चित्त होकर तुरगपद समस्या, अनुलोम, प्रतिलोम आदि अनेक प्रकार से कहे हुए श्लोकों को सम्पूर्ण रूप से कहना आदि अनेक अवधान करके दिखलाये। उसने अनेक पंडित तथा मंत्री विन्ध्यादित्य आदि उच्च श्रेणी के पुरुषों से भरी हुई सभा में अनेक छन्दों में बनाये हुए पवित्र श्लोकों से श्रीपूज्यजी की स्तुति की। उस उत्सव में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं हुआ, इसका एक-मात्र कारण श्रीपूज्यजी का वह वज्र समान जप-तप-ध्यान है जिसके द्वारा कलिकालोत्पन्न प्रत्यूह-समूह-शैल निर्दलित हो गया है। ये पूर्वोक्त सभी महोत्सव सेठ हेम और आसपाल आदि सकल संघ ने अपने लाखों रुपये खर्च करके असार संसार को सफल बनाने के लिये किये थे। इस महोत्सव के समय श्रीवासुपूज्य विधिचैत्य में संघ की ओर से तीस हजार रुपये दिये गये थे। वहीं पर द्वादशी के दिन आनन्दमूर्ति तथा पुण्यमूर्ति नामक दो मुनियों को दीक्षा दी गई थी। इसके निमित्त खासा महोत्सव भी हुआ था।

७८. सं० १३३९ फागुन सुदि ५ के दिन, मंत्री पूर्णसिंह, भंडारी राजा, गो० जिसहड़ और देवसिंह, मोहा आदि की प्रधानता में आये हुये जा वा ली पु र के संघ के अतिरिक्त, प्र ह्ला द न पु री य, बी जा पु री य, रा म श य नी य, श्री श म्या न य नी य, वा ड़ मेरीय, श्री र त्न पु री य आदि अनेक संघों के पांच सौ गाड़े इकट्ठे हुए थे। इन सब संघों को साथ लेकर तथा जिनरत्नाचार्य, देवाचार्य, वाचनाचार्य विवेकसमुद्रगणि आदि नाना मुनियों को साथ लेकर तामस-अज्ञान पटलों को हटाने वाले, समस्त जनता के वदनरूपी कुमुदनी को विकसित करने वाले, सम्पूर्ण मनुष्यों के नेत्र चकोरों को वाङ्मय-अमृत-वर्षा से आनन्दित करने वाले, प्रति-ग्राम तथा प्रति-नगर में विधिमार्ग के जय-जयकार के साथ अपने ऐश्वर्य को सफल करने वाले, पवित्रता की मूर्ति श्रीजिनप्रबोधसूरिजी महाराज ने फाल्गुन चातुर्मास में अतीव रमणीयता धारण करने वाले, सर्वविश्व के सारभूत, पर्वतोत्तम आबू पहाड़ में जाकर वहां पर विराजमान श्रीऋषभनाथ और नेमिनाथ-तीर्थंकरों को वन्दना की। वहाँ पर आनन्द-भव

* वर्तमान में ये तीनों ही ग्रन्थ दुष्प्राप्य हैं।

श्रावक लोग अपने घरों की चिन्ता-फिकर भूल गये। धन खर्च करके पुण्यानुबन्धी पुण्य का संचय करने वाले श्रावक लोग त्रिलोकी में अपने को धन्य मान रहे थे। इस उत्सव में आठ दिनों का समय लगा। इन दिनों में इन्द्रादि पद लेकर श्रावक लोगों ने सात हजार रुपये संग्रह किये। तदनन्तर पूज्यश्री के प्रताप से अपने जन्म और वैभव को सफल करने वाले, दुर्गति-दलन करने वाले तथा बड़े-बड़े मनोरथों को पूर्ण करने वाले श्रीसंघ ने आनन्द पूर्वक नगर-प्रवेश महोत्सव के साथ जा वा लि पु र में प्रवेश किया।

७६. उसी वर्ष जेठ वदि चौथ के रोज जगच्चन्द्र मुनि और कुमुदलक्ष्मी, भुवनलक्ष्मी नाम की साध्वियों को दीक्षा दी गई और पंचमी के दिन चन्दनसुन्दरी गणिनी को महत्तरा पद दिया। 'चन्दनश्री' यह नामान्तर रक्खा गया। इसके बाद सम्मुख आये हुए श्रीसोम महाराज की वीनति स्वीकार करके पूज्यश्री ने श्री शम्यानयन में चातुर्मास किया। तदनन्तर अतुल बलशाली राजाओं के मुकुटों में लगे हुए रत्नों की किरणों के पाद्यीय प्रवाह से निज चरण-कमलों को प्रक्षलित करने वाले, भव्य लोगों को सम्यक्त्व सम्पादित करने वाले, श्री जैसलमेर नरेश कर्णदेव महाराज सम्पूर्ण सेना-पलटन के साथ मुनीन्द्र के स्वागत के लिये पधारे। मुनीन्द्र श्री जिनप्रबोध-सूरिजी महाराज का जैसलमेर में सं० १३४० फागुन महीने में बड़े समारोह के साथ नगर प्रवेश महोत्सव हुआ।

वहीं पर वैशाख सुदि अक्षय तृतीया के दिन उ च्चा पु र, वि क्र म पु र, जा वा लि पु र आदि स्थानों से आये हुये संघ के मेले में सर्वसमुदाय सहित सेठ नेमिकुमार और गणदेव ने विपुल धन व्यय करके चौबीस जिनमन्दिर तथा अष्टापदादि तीर्थों की प्रतिमाओं का और ध्वज-दण्डों का प्रतिष्ठा महोत्सव किया। इस अवसर पर धर्म कोष में छः हजार रुपयों की आय हुई। जेठ सुदि चतुर्थी के दिन मेरु-कलश मुनि, धर्मकलश मुनि, लब्धिकलश मुनि तथा पुण्यसुन्दरी, रत्नसुन्दरी, भुवनसुन्दरी, हर्ष-सुन्दरी का दीक्षामहोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। श्री कर्णदेव महाराज का विशेष आग्रह होने से वहाँ पर चातुर्मास करके नाना प्रकार के धर्मोपदेशों से नागरिक लोगों के मन में चमत्कार पैदा करके पूज्यश्री ने श्रीविक्रमपुर से आये हुए संघ की प्रार्थना से वि क्र म पु र जाकर वहाँ पर युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज द्वारा संस्थापित श्रीमहावीर वरतीर्थ की विधिपूर्वक वन्दना की। वहां पर उ च्चा पु र, म रु को ट आदि नाना स्थानों से आने वाले लोगों के मेले में श्री महावीर विधिचैत्य में बड़े विस्तार के साथ सम्यक्त्व धारण, माला ग्रहण, दीक्षादान आदि नन्दि महोत्सव किया गया। यह कार्य सं० १३४१ फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिवस हुआ था। उस उत्सव के मौके पर विनयसुन्दर, सोमसुन्दर, लब्धिसुन्दर, चन्द्रमूर्ति, मेघसुन्दर, नाम के साधु धर्मप्रभा, देवप्रभा नाम की साध्वियों को दीक्षा दी गई। ये साधु-साध्वी छोटी उम्र के थे, इसलिये इनको क्षुल्लक लिखा गया है।

वहाँ पर श्री महावीर तीर्थ का प्रभाव बढ़ाने वाले, ज्ञान—ध्यान के बल से सब मनुष्यों के मन में आश्चर्य उत्पन्न करने वाले, स्वपक्षी—परपक्षी, जैन—जैनेतर सब लोग जिनके चरण कमलों की आराधना कर रहे हैं; जिनके आचार चरित्र बड़े पवित्र हैं, ऐसे पूज्यश्री के शरीर में भयंकर दाह-ज्वर उत्पन्न हुआ। ज्वर की भयानकता देखकर ध्यान—बल से अपने आयुष्य का अत्यल्प परिमाण जानकर लगातार विहार करके श्रीपूज्यजी जा बा लि पु र आ गये। वहाँ पर सब लोगों के लिये आश्चर्य-कारी श्रीवर्द्धमान महातीर्थ में बारह प्रकार के नन्दि बाजों के बजते हुए, श्रेष्ठ गीतों के गाये जाते हुए, पुर-सुन्दरियों के नाचते हुए, दीन-अनाथ-दुःखी लोगों को दान दिये जाते हुए, अनेक ग्राम अनेकों नगरों के श्रीसंघों की मौजूदगी में पूर्णाओं के समान निर्मल चरित्रों वाले श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने अपनी शरीर की शोभा से कामदेव को मात करने वाले सब भव्य पुरुषों के मन—कमल को विकसित करने में सूर्य का सादृश्य रखने वाले, नाना गुण—रत्नों की खान, अत्यधिक गम्भीरता के समुद्र को परास्त करने वाले श्रीजिनचन्द्रसूरि को सं० १३४१ की श्रीयुगादिदेव भगवान् के पारणे से पवित्र की हुई वैशाख सुदि अक्षय तृतीया को बड़े आरोह—समारोह पूर्वक अपने पाट पर स्थापित किया। उसी दिन राजशेखरगणि को वाचनाचार्य का पद दिया।

इसके बाद अष्टमी के दिवस पूज्यश्री ने सारे संघ को एकत्रित करके मिथ्या दुष्कृत दिया। दिनों—दिन बढ़ते हुए शुभभावों से जिन्होंने संसार के पदार्थों की अनित्यता जानकर चौतरफ बैठे हुए साधुओं द्वारा निरन्तर गेयमान समाराधनाओं को सुनते हुये, देवगुरुओं के चरणों की भलीभांति आराधना करके अपने मुख कमल से पंचपरमेष्ठी नमस्कार का उच्चारण करते हुए, अपनी कीर्ति से पृथ्वी को धवल करके श्रीजिनप्रबोधसूरिजी महाराज वैशाख सुदि एकादशी के दिन सदा के लिये इस असार संसार को छोड़कर अमर पद को पहुँच गये।

आचार्य जिनचन्द्रसूरि

८०. इसके बाद श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने सं० १३४२ वैशाख सुदि दशमी के दिन जाबालिपुर के महावीर चैत्य में बड़े उत्सव के साथ प्रीतिचन्द्र तथा सुखकीर्ति नामक दो क्षुल्लक और जयमंजरी, रत्नमंजरी तथा शालमंजरी नाम की तीन क्षुल्लिकायें कीं। उसी दिन वाचनाचार्यों में श्रेष्ठ श्रीविवेकसमुद्र गणिजी को अभिषेक (उपाध्याय) पद तथा सर्वराजगणि को वाचनाचार्य पद और बुद्धिसमृद्धि गणिनी को प्रवर्तिनी पद दिया। सप्तमी के दिन सम्यक्त्वधारण, मालारोपण, सामायिक ग्रहण, साधु—साध्वियों की बड़ी दीक्षा और नन्दि महोत्सव किया गया।

वैसे ही जेठ कृष्णा नवमी को धनिकों में श्रेष्ठ सेठ खेमसिंह के बनाये हुए सत्ताईस अंगुल प्रमाण वाले रत्नघटित श्री अजितस्वामी बिम्बका और इन्हीं सेठ के बनाये हुए श्री युगादिदेव-श्रीनेमिनाथ आदि बिम्बों का, महामंत्री देदाजी के निर्माण कराये हुए युगादिदेव-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ आदि बिम्बों का, भंडारी छाहड़ कारित श्रीशान्तिनाथ स्वामी के बिम्बका और वैद्य देहड के बनाये गये सुवर्णमय ध्वजदंड का, वैसे ही और भी बहुत सी प्रतिमाओं का सकललोक मनश्चमत्कारकारी, सकलपापहारी प्रतिष्ठा महोत्सव श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने श्री सामन्तसिंह महाराज के विजय राज्य में किया। इसी प्रतिष्ठा महोत्सव के अनुकूल समय में विशेष खुशी हुए श्री सामन्तसिंह महाराज की संनिधि में स्वपक्ष—परपक्ष सभी के आह्लादकारी, सकल विधिमार्ग में नवीन जीवन—संचार कर देने वाला श्री इन्द्र महोत्सव, विधि मार्ग का प्रभाव बढ़ाने वाले, आनन्द में सराबोर, सद्भाव को बढ़ाने वाले सेठ खेमसिंह आदि समस्त श्रावकों ने प्रचुर द्रव्य व्यय कर के संपादित किया। जेठ कृष्ण एकादशी के दिन वा० देवमूर्ति गणि को अभिषेक (उपाध्याय) पद देकर मालारोपण आदि नन्दि महोत्सव किया।

सं० १३४४ मार्गसिर सुदि दशमी को जालौर में श्री महावीर विधिचैत्य के अहाते मे श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने पं० स्थिरकीर्ति गणि को आचार्य पद दिया और उनका नया नाम श्री दिवाकराचार्य किया गया।

सं० १३४५ आषाढ़ सुदि तृतीया के दिन मतिचन्द्र, धर्मकीर्ति आदि भव्यजनों को दीक्षा दी गई। तत्रैव वैसाख वदि १ को पुण्यतिलक, भुवनतिलक तथा चरित्रलक्ष्मी साध्वी को प्रव्रज्या ग्रहण कराकर राजदर्शन गणि को वाचनाचार्य पद से विभूषित किया।

सं० १३४६ में माह वदि प्रतिपदा के दिन सेठ खेमसिंह भ्रा० (भ्रा०) बाहड़ से बनाये गये स्वर्णगिरि में श्री चन्द्रप्रभ स्वामी मन्दिर के पास में स्थित, श्रीयुगादिदेव और नेमिनाथ बिम्बों का रैवतक

पर्वताकार बनाये गये मंडपों में सम्मेत शिखर वाली बीस प्रतिमाओं का स्थापना महोत्सव किया गया। फाल्गुन सुदि अष्टमी के दिन श्री श म्या न य न नगर में सेठ वाहड, भां० भीम, भां० जगसिंह और भां० खेतसिंह नामक श्रावकों के बनाये हुए भवन में चाहमानवंशीय श्रीसोमेश्वर महाराज के प्रवेशोत्सव कराए हुए शान्तिनाथ देव का स्थापना महोत्सव बड़े विस्तार से करवाया तथा देववल्लभ, चारित्रतिलक और कुशलकीर्ति साधुओं एवं रत्नश्री साध्वी को संयम धारण कराया गया। दीक्षा के साथ-साथ में मालारोपणादि महोत्सव भी हुआ। तत्पश्चात् चैत्र सुदि १ को जिसमें घरों-घर पताकायें फहरा रही हैं ऐसे पा ल न पु र में मं० माधव आदि मुख्य नागरिक लोगों के सम्मुख आने पर गाजे-बाजे के साथ सेठ अभयचन्द्र आदि की प्रमुखता में समस्त समुदाय ने महाराज का प्रवेश-महोत्सव करवाया। पालनपुर की तरह भी म प ल्ली में भी वैशाख वदि चतुर्दशी को प्रवेश महोत्सव हुआ। वैशाख सुदि सप्तमी को सेठ अभयचन्द्र की बनाई हुई अद्भुत शान्तिमय तथा अत्यन्त सुहावनी श्रीयुगादिदेव की प्रतिमा, चौवीस जिनालयों, चौवीस जिन प्रतिमायें, इन्द्रध्वज, श्रीअनन्तनाथ-दण्डध्वज, श्रीजिनप्रबोध-सूरि स्तूप और मूर्ति-दंडध्वज, शान्त-दान्त भाव वाली पित्तलमय अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा के निमित्त विस्तार से महोत्सव किया गया। जेठ वदि सप्तमी को नरचन्द्र, राजचन्द्र, मुनिचन्द्र, पुण्य-चन्द्र साधुओं और मुक्तिलक्ष्मी तथा युक्तिलक्ष्मी साध्वियों का दीक्षा महोत्सव महाप्रभावना के साथ हुआ।

सं० १३४७ मार्गसिर सुदि ६ को पालनपुर में सुमतिकीर्ति की दीक्षा और नरचन्द्रादि साधु-साध्वियों की बड़ी दीक्षा तथा मालारोपणादि महोत्सव किया गया। इसके पश्चात् मार्गसिर सुदि १४ को ख दि रा लु का नगरी में सूरीश्वर के शुभागमन के उपलक्ष में स्थान-स्थान पर तलिका तोरणादि सजाये गये थे। मं० चंडाजी के पुत्र मंत्री सहनपाल ने नगर के सभी महाजन-ब्राह्मण आदि लोगों के समुदाय को साथ लेकर प्रवेश महोत्सव करवाया। मंत्री सहनपाल ने सारे संघ को एकत्रित करके पूज्यश्री को श्री ता र ण ग ढ़ तीर्थ के अलंकारभूत अजितस्वामी तीर्थ की यात्रा करवाई। पौष वदि पंचमी को श्री बी जा पु र के सेठ लखमसिंह तथा आसपाल आदि प्रधान पुरुषों ने जा बा ली पु र में ख दि रा लु का की तरह प्रवेश महोत्सव करवाया और सेठ अभयचन्द्र ने माह सुदि एकादशी के दिन श्रीजिनप्रबोधसूरिजी स्तूप में मूर्ति स्थापना करके ध्वज-दंडारोपण महोत्सव करवाया। इसके बाद बीजापुर में चैत्र वदि ६ को अमररत्न, पद्मरत्न, विजयरत्न साधु और मुक्तिचन्द्रिका साध्वी को दीक्षा दी गई। इस अवसर पर मालारोपण, परिग्रह परिमाण एवं नन्दि महोत्सव भी किया गया। इस उत्सव में खं भा त, आ शा प ल्ली, वा ग ड़, व ट प द्र आदि स्थानों के अनेक श्रावक सम्मिलित हुए थे।

सं० १३४८ वैशाख सुदि तृतीया के दिन पालनपुर में वीरशेखर साधु और अमृतश्री साध्वी को संयम धारण करवाया गया। त्रिदशकीर्तिगणि को वाचनाचार्य पद दिया गया। उसी वर्ष सुधाकलश, मुनिवल्लभ आदि साधुओं सहित पूज्यश्री ने गणि योग तप किया।

सं० १३४९ भाद्रवा वदि अष्टमी के दिन सहधर्मियों को सदावर्त देने वाले संघपति अभय-चन्द्र सेठ का अन्त समय जानकर उसको संस्तारक दीक्षा दी गयी और उसका नाम अभयशेखर रक्खा गया। वहाँ पर मार्गसिर वदि द्वितीया को यशःकीर्ति को दीक्षा दी गई।

सं० १३५० वैशाख सुदि नवमी को करहेटक, आबू आदि स्थानों की तीर्थ-यात्रा से अपना जन्म सफल करके, बरडिया नगर के मुख्य श्रावक नोलखा वंशभूषण भां० झांझण को स्वपक्ष-परपक्ष सभी को आश्चर्य देने वाली संस्तारक दीक्षा दी गई तथा नरतिलक राजर्षि नाम दिया गया।

सं० १३५१ माघ वदि १ को पालनपुर के ऋषभदेव स्वामी के मन्दिर में मंत्री तिहुण सत्क युगादिदेव मूर्ति और श्रे० वीजा सत्क महावीर मूर्ति आदि छः सौ चालीस प्रतिमाओं का प्रतिष्ठा महोत्सव समुदाय सहित मंत्री तिहुण और श्रे० वीजा श्रावक ने विस्तार से करवाया। माघ वदि पंचमी के दिन अनेक साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओं से परिवृत, पूज्यश्री ने मालाधारण और नन्दि महोत्सव तथा विश्वकीर्ति साधु एवं हेमलक्ष्मी साध्वी को दीक्षा दी।

८१. सं० १३५२ में श्रीगुरु जिनचन्द्रसूरिजी महाराज की आज्ञा से वाचनाचार्य राजशेखर गणि सुबुद्धिराज गणि, हेमतिलक गणि, पुण्यकीर्ति गणि और रत्नसुन्दर मुनि सहित विहार करके श्री बृहद्ग्राम (बड़गाम) गये। वहाँ से ठाकुर रत्नपाल, सेठ चाहड़ नाम के मुख्य श्रावकों द्वारा भेजे हुए स्वकीय भ्राता ठाकुर हेमराज तथा भाभोज बांचू श्रावक, बोहिथ पुत्र सेठ मूलदेव श्रावक तथा उन लोगों के अन्य समस्त परिवार के साथ उन्होंने बनारस, कौशाम्बी, काकिन्दी, राजगृह, पावापुरी, नालिन्दा, क्षत्रियकुन्ड ग्राम, अयोध्या, रत्नपुर आदि नगरों की तीर्थयात्रा की। ये नगर जिनेश्वरों के जन्म आदि कल्याणकों से पवित्र किये हुये हैं। परिवार सहित वा० राजशेखर गणि ने श्रावक समुदाय के साथ पहले पहल हस्तिनापुर की यात्रा की थी। बाद में अन्य तीर्थों में जाकर वन्दना की। वाचनाचार्य राजशेखर गणि ने राजगृह के पास उद्दण्डविहार नाम के गाँव में चातुर्मास किया और मालारोपणादि नन्दि महोत्सव भी किया। उसी वर्ष में नाना प्रकार के पुण्यों की वल्ली श्री भीमपल्ली से सेठ धनपाल के पुत्र मडसिंह तथा सामल श्रावक के बनाये हुए संघ के साथ पालनपुर, भीमपल्ली, श्रीपत्तन, सत्यपुर आदि स्थानों से आने वाले स्वपक्षीय-परपक्षीय मेले के साथ अपनी वाक्पटुता से बृहस्पति का पराजय करने वाले उपाध्याय श्रीविवेकसमुद्र गणि आदि साधु मंडली सहित श्रीपूज्य श्रीजिनचन्द्र-सूरिजी महाराज ने तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान करके शंखेश्वरपुर के अलंकारचूडामणि, वाञ्छित वस्तु के पूरण में चिन्तामणि रत्न के तुल्य, संसारदुःखदावाग्नि को शांत करने में शीतल जल के समान श्रीपार्श्व-नाथ भगवान् की वंदना की। वहां पर श्रीसंघ ने तीन दिन तक स्नात्र-पूजा, उद्यापन, ध्वजारोपादि महोत्सव किया। इसके बाद सारे संघ को साथ लेकर श्रीपूज्य श्रीपत्तन आये। वहां पर श्रीशांति

नाथ भगवान् के मन्दिर में विस्तार के साथ ध्वजारोपादि महोत्सव किया और बाजे-गाजे के साथ वाराङ्गनाओं के नाचते हुए, सारे नगर के सभी मन्दिरों में बड़े विस्तार से चैत्य-परिपाटी करके श्रीपूज्यजी भीमपल्ली आ गये। इसके बाद बीजापुर के श्रीसंघ की प्रार्थना से उन्होंने बीजापुर में चातुर्मास किया। वहां पर सं० १३५३ मार्गसिर बदी पंचमी के दिन श्रीवासुपूज्य भगवान के मंदिर में मुनिसिंह, तपसिंह तथा जयसिंह नाम के साधुओं को दीक्षा और साथ ही मालारोपणादि नन्दि महोत्सव भी हुआ।

इसके बाद संघ की प्रार्थना से महाराज जावालिपुर गये। वहां पर सेठ सलखण श्रावक के पुत्र सीहा श्रावक तथा मांडव्यपुर से आये हुए सेठ झांझण के पुत्र सा० मोहण द्वारा तैयार किये गये संघ के साथ तथा जावालिपुर, शम्यानयन, जेसलमेर, नागपुर, रूणपुर, श्रीमालपुर, सत्यपुर, पालनपुर और भीमपल्ली आदि स्थानों से आने वाले धनी-मानी श्रावक-वृन्द के साथ, वैसे ही श्रीमालजाति के भूषण दिल्ली निवासी सेठ वाल्हा श्रावक के पुत्र साह लोहदेव आदि प्रमुख श्रावकों के जमघट में चैत्यपरिपाटी आदि अनेक महोत्सव मनाकर, जावालिपुर से वैसाख कृष्ण पंचमी के दिन विहार करके, प्रचुर मुनि मंडली से संसेव्यमान, चतुर्विध श्री संघ से संस्तूयमान, जगत्पूज्य, श्रीपूज्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी महाराज आबू पहाड़ में विराजमान, समस्त दुर्गति को निवारण करने वाले जिनेश्वर श्रीऋषभदेवजी और नेमिनाथजी को वन्दना की। अनेक शुभ कार्यों से कलिकाल रूपी चोर को भगा देने वाले, याचकों को मुँह मांगा दान देकर कल्पवृक्ष को पराजित करने वाले तथा परम शुभ परिणामों की धारा से अनेक जन्म-जन्मान्तरों के पापपुञ्ज को धो देने वाले विधिमार्ग संघ ने श्रीइन्द्रपदादि ग्रहण और ध्वजारोपादि महोत्सवों से तीर्थ-फंड में बारह हजार रुपयों का दान दिया। इसके बाद परम आनन्द से रोमांचित अपने पुण्यरूपी राजा से सम्मानित, निर्मल अन्तःकरण वाला श्रीविधिमार्ग संघ वहां से चलकर वापिस जावालिपुर आगया।

सं० १३५४ जेठ वदि दशमी के रोज श्रीजावालीपुर में महावीर विधिचैत्य में शाह सलखणजी के पुत्र सेठ सीहा की लगन एवं भगीरथ प्रयत्न से दीक्षा और मालारोपण सम्बन्धी महोत्सव हुआ। दीक्षा लेने वाले साधु-साध्वियों के नाम वीरचन्द, उदयचन्द, अमृतचन्द्र और जयसुन्दरी थे। इसी वर्ष आषाढ़ सुदि द्वितीया को सिरियाणक गांव में श्रीमहावीर मंदिर का जीर्णोद्धार करवाकर सं० १३५५ में महावीर प्रतिमा की स्थापना करवाई। इस स्थापनोत्सव में सारा धन व्यय सेठ भीड़ा श्रावक के पुत्र जोधा श्रावक ने किया था।

सं० १३५६ में महाराजाधिराज श्री जैत्रसिंह की प्रार्थना से मार्गसिर वदि चतुर्थी के रोज श्रीपूज्यजी जेसलमेर पधारे। वहां पर श्रीपूज्यजी की अगवानी करने के लिये स्वयं राजा साहब चार

कोश सम्मुख आये थे। सेठ नेमिकुमार आदि समस्त समुदाय ने प्रचुर धन-व्यय करके मान पूर्वक नगर में प्रवेश करवाया था। प्रवेश के समय तरह-तरह के बाजे बज रहे थे। बन्दीजनों ने सुन्दर-सुन्दर कवितायें बनाकर पढ़ीं थीं। उस खुशी में जगह-जगह नेत्र और मन को आनन्द देने वाले सुन्दर दृश्य सजाये गये थे। श्रावक और श्राविकायें रास, गीत और मंगल कार्यों में निमग्न थे। यह प्रवेश-महोत्सव स्वपक्षीय तथा परपक्षीय सभी लोगों के मन में चमत्कार पैदा करने वाला हुआ था। श्रीपूज्यजी सं० १३५६ में भी वहीं रहे।

सं० १३५७ मार्गसिर सुदि नवमी के दिन, श्री महाराज जैत्रसिंहजी के भेजे हुए गाजे-बाजों की ध्वनि के साथ मालारोपणादि महोत्सव तथा सेठ लखम और भांडारी गज के जयहंस तथा पद्महंस नाम के दो पुत्रों का दीक्षा महोत्सव सहर्ष किया गया।

सं० १३५८ माघ शुक्ल दशमी को श्रीपार्श्वनाथ विधिचैत्य में बाजे-गाजे के साथ, बड़े विस्तार से सम्मेतशिखरादि प्रतिमाओं का प्रतिष्ठा महोत्सव श्रीपूज्यजी के द्वारा सेठ केशवजी के पुत्र तोला श्रावक ने करवाया। वहीं पर फाल्गुन सुदि पंचमी के दिन सम्यक्त्वधारण तथा मालारोपण सम्बन्धी महोत्सव भी हुआ।

सं० १३५९ में फाल्गुन शुदि एकादशी के दिन सेठ मोकलसिंह, सा० वींजड़ आदि समुदाय की प्रार्थना से बा ड मे र जाकर श्रीपूज्यजी ने श्रीयुगादिदेव तीर्थ को नमस्कार किया।

वहां पर सं० १३६० में माघ वदि दसमी को सा. वीजड़, सा. स्थिरदेव आदि श्रावकों ने प्रचुर-मात्रा में धन खर्च कर श्रीजिनशासन की प्रभावना के लिये मालाधारणादि नन्दिमहोत्सव बड़े ठाठ-बाट से करवाया। इसके अनन्तर श्रीशीतलदेव महाराज की ओर से सूचना पाकर और मं० नाणचन्द्र, मं० कुमारपाल तथा सेठ पूर्णचन्द्र आदि की प्रार्थना स्वीकार करके श्रीपूज्यजी ने श्रीशम्यानयन जाकर श्रीशान्तिनाथ देवतीर्थ की वन्दना की।

सं० १३६१ द्वितीय वैशाख वदि ६ के दिन मं० नाणचन्द्र, मं० कुमारपाल, भंडारी पद्म, सेठ पूर्णचन्द्र, साह रूपचन्द्र आदि स्थानीय पंचों ने जा वा लि पु र आदि स्थानों से आये हुए सवा लाख मनुष्यों के मेले में श्री पार्श्वनाथ आदि अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। इसी प्रकार दशमी के दिन, अपने पराये सभी को आनन्द देने वाला मालारोपणादि नन्दि महोत्सव श्रीदेव-गुरुओं की कृपा से विस्तार पूर्वक करवाया गया। इस अवसर पर पं० लक्ष्मीनिवासगणि एवं पं० हेमभूषण गणि को वाचनाचार्य का पद दिया गया।

८२. इसके पश्चात् जा वा लि पुर के संघ की प्रार्थना से जावालिपुर में जाकर श्रीपूज्यजी ने वहां पर महावीर भगवान् को नमस्कार किया। सं० १३६४ की वैशाख वदि त्रयोदशी के दिन, मंत्री भुवनसिंह, सा० सुभट, मं० नयनसिंह, मं० दुस्साज, मं० भोजराज तथा छेठ सीहा आदि सहित श्रीसंघ द्वारा किये जाने वाले नाना प्रकार के उत्सवों के साथ, श्रीपूज्यजी ने श्रीराजगृह आदि अनेक तीर्थों की यात्रा वन्दन आदि से पुष्कल पुण्य संचय करने वाले वाचनाचर्य राजशेखर गणि को आचार्य पद प्रदान करके सम्मानित किया। इसके उपलक्ष में समुदाय ने स्वपक्ष–परपक्ष सभी को आनन्द देने वाला मालारोपणादि नन्दि महोत्सव भी किया। इसके बाद मार्ग में चौर–डाकू आदि के उपद्रव के कारण भणशाली दुर्लभजी की सहायता से श्रीपूज्यजी भी म प ल्ली आये। पा ट ण के कोटड़िका मोहल्ले में श्रीशान्तिनाथ विधिचैत्य और श्रावक–पौषधशाला आदि धार्मिक स्थानों के बनवाने वाले सेठ जेसल प्रभृति समुदाय की अभ्यर्थना से श्रीपूज्यजी महाराज ने पाटण में आकर श्री शान्तिनाथ देव की वन्दना की। इसके बाद खंभात तीर्थ के कोटड़िका नामक पाड़े में, श्रीअजितनाथ देव के विधि चैत्यालय, श्रावक–पौषधशाला आदि धर्म–प्रधान स्थानों के बनवाने में कुशल सेठ जेसल के साथ मंत्रणा करते हुए श्रीपूज्यजी शे रि ष क नामक गांव में आकर श्रीपार्श्वनाथ देव की वन्दना करके स्वपक्ष–परपक्ष को चमत्कार उत्पन्न करने वाले श्री जेसल श्रावक द्वारा कराये गये प्रवेश महोत्सव के साथ खम्भात तीर्थ में प्रवेश करके, श्री अजितनाथ देव की वन्दना की। यह प्रवेश महोत्सव वैसा ही हुआ जैसा श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज के पधारने पर मंत्री श्री वस्तुपालजी ने करवाया था।

८३. सं० १३६६ जेठ वदि द्वादशी के दिन, अनेक प्रकार के उज्ज्वल कर्तव्यों से जिसने अपने पूर्वजों के कुल का उद्धार कर दिया है और धार्मिक लोगों के हितकारी सेठ जेसल ने श्री प त्त न, भी म प ल्ली, वा ह ड़ मे र, स म्या न य न आदि नगरों से आये हुये संघ को साथ लेकर, अपने ज्येष्ठ भ्राता तोला श्रावक को संघ का धुर्यपद देकर तथा छोटे भाई लाखू को मार्गबन्धक का पद देकर इस विषम पंचमकाल में देश में म्लेच्छों का भयंकर उपद्रव होते हुए भी देवालय–प्रचलन–महोत्सव मनाकर, खम्भात से आगे तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान किया। उस संघ के साथ जयवल्लभगणि, हेमतिलक गणि आदि ग्यारह साधु तथा प्रवर्तिनी रत्नवृष्टि गणिनी आदि पांच साध्वियों से शुश्रूषित श्रीपूज्य जिनचंद्रसूरिजी वहां से चल पड़े। मार्ग में जगह–जगह चैत्यों में चैत्यपरिपाटी आदि महोत्सव किये गये। अनेक प्रकार के बाजे बजाये गये। श्रावक लोगों ने मार्ग में जहां–तहां श्री देवगुरुओं के गुण गाये। भाट लोगों ने अपनी नई–नई कवितायें खूब पढ़ीं। चलते–चलते क्रम से सारा संघ श्री पी प ला उ ली ग्राम में पहुंचा। वहाँ पर श्रीशत्रुञ्जय महातीर्थ पर्वत के दीख जाने से श्रीसंघ ने बड़ा उत्सव मनाया। अपार संसार समुद्र में डूबते हुये लोगों के लिये प्रवहण समान श्रीशत्रुञ्जय महातीर्थ के अलंकार, देवाधिदेव श्रीऋषभदेवजी को नमस्कार करने के लिये हर्ष की अधिकता से

उत्पन्न हुई रोमांचराजि से परिपूत तथा चतुर्विध संघ परिवृत श्रीपूज्यजी ने तीर्थ की सीमा में प्रवेश किया। वहां पर सेठ सलखण के पुत्र रत्न सेठ मोकलसिंह आदि श्रावकों ने बड़े विस्तार से इन्द्रपदादि महोत्सव किये और जेठ सुदि द्वादशी के दिन मालारोपण आदि नन्दि महोत्सव भी विस्तार से किया।

इसके बाद सौराष्ट्र (काठियावाड़) देश के भूषण, गिरनार पर्वत में स्थित श्रीनेमिनाथ महातीर्थ को नमस्कार करने के लिये चतुर्विध संघ सहित श्रीपूज्यजी ने वहां से विहार किया। यद्यपि उस समय काठियावाड़ देश बड़े-बड़े मुसलमानों की सेनाओं से घिरा हुआ था और जगह-जगह मारकाट मची हुई थी; परन्तु जगत् के नाथ श्री नेमिनाथजी की कृपा से, श्रीअम्बिका की सन्निधि से और पूज्यश्री के ध्यान बल से सारा संघ निर्विघ्नता के साथ सुखपूर्वक उज्जयन्त पहाड़ की तलहटी में पहुंच गया। वहां जाकर शुभ अवसर में सकल संघ को साथ लेकर श्रीपूज्यजी ने उज्जयन्त पर्वतराज के अलंकार, भव्यपुरुषों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले, सुहावने, सुन्दर श्रीनेमिनाथ भगवान के चरण-कमल रूपी महातीर्थ की वन्दना की। यह पर्वत श्रीनेमिनाथजी महाराज के तीन कल्याणकों से पवित्र किया हुआ है। वहां पर सेठ कुलचन्द्र-कुलप्रदीप, सा० बींजड़ आदि सब श्रावकों ने मिलकर इन्द्रपद आदि महोत्सव किये। इस प्रकार श्रीनेमिनाथ भगवान् की वन्दना करके ठौर-ठौर पर धर्म की अनेक प्रकार से प्रभावना करके श्रीसंघ सहित श्रीपूज्यजी लौटकर खम्भात ही आगये। वहां पर पहले की तरह जेसल श्रावक ने संघ के साथ वाले देवालय का और श्रीपूज्यजी का बड़े विस्तार से प्रवेश महोत्सव किया। महाराज ने खम्भात में ही चातुर्मास किया। चातुर्मास के बाद श्रीपार्श्वनाथ की वन्दना करके मंत्रिदलीय ठ० भरहपाल की सहायता लेकर श्रीपूज्यजी ने वहाँ से विहार किया।

८४ पश्चात्-बीजापुर आकर श्रीवासुपूज्यदेव को नमस्कार किया। वहां कुछ दिन रहकर सं० १३६७ में माघ वदि नवमी को श्री महावीर प्रभु आदि जिनेश्वरों की शैलमयादि प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा के साथ मालारोपणादि नन्दि महोत्सव किया। इसके बाद भीमपल्ली वाले श्रावकों की प्रार्थना से वहां जाकर श्री महावीर देव को नमस्कार किया और वहां पर सं० १३६७ में फागुन सुदि प्रतिपदा के दिन भीमपल्ली, श्रीपत्तन तथा पालनपुर आदि से आने वाले समुदायों के मेले में अनेक प्रकार के दानों से श्रीजिनशासन की प्रभावना बढ़ाते हुए श्रीपूज्यजी ने तीन क्षुल्लक और दो क्षुल्लिकाओं को दीक्षा दी। उनके नाम परमकीर्ति, वरकीर्ति, रामकीर्ति तथा पद्मश्री, व्रतश्री थे। उस अवसर पर मालारोपणादि नन्दिमहोत्सव भी किया गया और पं० सोमसुन्दर गणि को वाचनाचार्य का पद दिया गया।

उसी वर्ष—सेठ खेमंधर, सा. पद्मा, सा. सादल कुलोत्पन्न अपनी भुजाओं से पैदा की हुई लक्ष्मी को भोगने वाला, प्रशंसनीय पुण्यशाली, स्थिरता-गम्भीरता आदि गुणों को धारण करने वाले, तीर्थ यात्रा से पवित्र गात्र वाले, स्वर्गीय सेठ धनपाल के पुत्र, सब मनुष्यों को आनन्द देने वाले, भीमपल्ली पुरी निवासी, राजमान्य, श्रेष्ठधर्मकार्य में कुशल श्री सेठ सामल ने पालनपुर, पाटण, जावालीपुर, साम्यानयन, जेसलमेर, राणुकोट, नागपुर, श्रीरूणा, बीजापुर, सत्यपुर, श्री श्रीमाल और रत्नपुर आदि स्थानों में कुंकुमपत्री भेजकर तीर्थयात्रा के लिये बड़े आदर-सम्मान के साथ श्रीसंघ को बुलाकर एकत्र किया। तीर्थयात्रा के लिये तैयार हुए संघ की गाढ़ अभ्यर्थना से श्रीपूज्यजी भी चलने को राजी हो गये। यद्यपि देश में सब जगह म्लेच्छ—यवनों द्वारा उपद्रव मचा हुआ था; तो भी शुभ—मुहूर्त देखकर सधवा श्राविकाओं से मंगल गान गाए जाते हुए, तरह—तरह के सुन्दर बाजे बजते हुए, बड़े उत्साह के साथ अन्तिम तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी की जन्म तिथि चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन, महामहिमशाली चतुर्विध संघ सहित, जगत्पूज्य पूज्यश्री ने देवालय के साथ भीमपल्ली से प्रस्थान किया। रास्ते में जगह—जगह शुभ शकुनों से प्रोत्साहित किये जाते हुए, तीर्थ श्रीशंखेश्वर में पहुँच कर बड़े भव्य विशाल—भवन में विराजमान श्रीजिनेश्वर पार्श्वनाथ को विधि—विधान से नमस्कार किया। वहां पर आठ दिन ठहर कर संघ ने बड़ा भारी महोत्सव किया। इसके बाद पाटला गाँव में प्राचीन नेमिनाथ तीर्थ को नमस्कार करके श्रीराजशेखराचार्य, जयवल्लभगणि आदि सोलह साधु और प्रवर्तिनी बुद्धिसमृद्धि गणिनी आदि पन्द्रह साध्वियों सहित सारे संघ का भार उठाने में अगुआ श्री सेठ सामल, भणशाली नरसिंह के पुत्र आसा संघ की रक्षा के लिये जिम्मेदार, साधु सामल के कुटुम्बी दुर्लभादि, भणशाली पूर्णजी के पुत्र रतनचन्द तथा संघ में पाश्चात्य पद को निभाने वाले, औदार्यशाली, भणशाली लूणक आदि सहित समस्त संघ को साथ लिये हुए श्रीपूज्यजी प्रति ग्राम, प्रति नगर, नृत्य-गान, उपदेश आदि से जिनशासन का प्रभाव बढाते हुए शत्रुञ्जय तीर्थ में जाकर, त्रिलोकी में सारभूत, समस्त तीर्थपरम्परा से परिवृत, सुर—असुर—नरेन्द्रों से सेवित, श्रीऋषभदेव भगवान् की वन्दना की और उज्जयन्त तीर्थ में पहुँचकर सकल पाप को खंडन करने वाले, सुन्दरता के खजाने, यदुवंश भूषण, कल्याणत्रय आदि नाना तीर्थों से विराजमान श्रीनेमिनाथ स्वामी की नये—नये स्तुति—स्तोत्रों की रचना करके परम भावभक्ति से वन्दना की। इन दोनों तीर्थों में जावालिपुर के रहने वाले, सब महाजनों में प्रधान, गुणनिधान, सेठ देवसिंह और सेठ थालण के पुत्र अपने वंश के मंडन सेठ कुलचन्द्र और देदा नाम के दो श्रावकों ने अपने प्रचुर धन को सफल करने के लिये इन्द्र पद ग्रहण किया। इसी प्रकार गोठी यशोधर के पुत्र स्थिरपाल ने उज्जयन्त तीर्थ में खूब द्रव्य खर्च करके अम्बिका देवी की माला ग्रहण की। इनके अतिरिक्त सेठ श्रीचन्द्र के पुत्र जाल्हण, सा० चाहड़ के पुत्र झांझण, सा० उद्धरण, नोलखा नेमिचन्द्र, सेठ पूना, सेठ तिहुण, भां० पदम का पुत्र

मऊणा, मां० महणसिंह और सेठ भीमाजी के पुत्र लूणसिंह आदि अन्य श्रावक महानुभावों ने भी तीर्थपूजा, संघपूजा, स्वधार्मिकवात्सल्य के कारण किये गये सदावर्त आदि पुण्य कार्यों में अगणित धन-व्यय करके पुण्यानुबन्धी पुण्य की उपार्जना की।

इस प्रकार इस गये गुजरे कलिकाल में भी, लोकोत्तर धर्म के निधान, स्पृहणीय, पुण्यप्रधान श्री विधि संघ ने सब जनों के चित्त को हरने वाली तथा चमत्कार करने वाली तीर्थ-यात्रा की। निर्विघ्नता पूर्वक बड़ी प्रभावना के साथ समस्त तीर्थों की वन्दना करके सेठ सामल आदि संघ एवं मुनिमंडली सहित श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज चातुर्मास लगने के पहले ही आषाढ़ के महीने में श्री वा य ड ग्राम में आकर श्रीमहावीर स्वामी के जीवन-काल में बनाई हुई उनकी प्रतिमा का विस्तार से वन्दन किया। इसके बाद श्रावण मास के पहले पखवाड़े में प्रतिपदा के दिन धर्म प्रभा-व-शालिनी श्राविकाओं के गाते हुए, अन्य नागरिक स्त्रियों के नाचते हुए, ठौर-ठौर में देखने योग्य तमाशों के होते हुए, बन्दि-लोगों के स्तुति-पाठ सुनते हुए, श्रावक लोगों द्वारा अनेक प्रकार के महादानों को दिये जाते हुए, लोकाधिक प्रभाव वाले श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज का भी म प ल्ली नगरी में प्रवेश महोत्सव श्रीसंघ ने विस्तार एवं प्रभावना के साथ करवाया।

संघ में आने वाले, गुरु-आज्ञा-पालन में सदा तत्पर, सहधर्मियों के प्रेमी, यात्रा में श्रीसंघ के पृष्ठपोषकपद को निभाने वाले और महा प्रभावना को करने वाले श्री भणशाली लूणा श्रावक ने अपने समुपार्जित समस्त पुण्य राशि को, दान-शील-तप और भाव में उद्यत, अपनी मातुश्री धनी सुश्राविका को अर्पित किया।

वहां पर भी म प ल्ली नगरी में·········को स्थानीय पंचायत द्वारा प्रतापकीर्ति आदि क्षुल्लकों को बड़ी दीक्षा तथा तरुणकीर्ति, तेजकीर्ति, व्रतधर्मा तथा दृढ़धर्मा इन क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं की दीक्षा का महोत्सव करवाया। उसी दिन ठाकुर हांसिल के पुत्र रत्न, देहड़ के छोटे भाई स्थिरदेव की पुत्री रत्नमंजरी गणिनी को (जिसे पूर्व में पूज्यश्री ने अपने हाथ से ही दीक्षा दी थी) पूज्यश्री ने महत्तरा पद प्रदान कर जयर्द्धि महत्तरा नाम रक्खा तथा प्रियदर्शना गणिनी को प्रवर्त्तिनी पद दिया।

इसके बाद श्रीसंघ की प्रार्थना से, श्रीपूज्यजी नगरों में श्रेष्ठ नगर पा ट ण पधारे। वहां पर सं० १३६६ मार्गसिर वदि षष्ठी के दिन, स्वपक्ष एवं परपक्ष में आश्चर्य पैदा करने वाले श्रीसंघ द्वारा किये गये महा महोत्सव के साथ 'जयति जिनशासनम्' के जय घोष के साथ उत्साह पूर्वक जगत् के पूजने योग्य श्रीपूज्यजी ने चन्दनमूर्ति, भुवनमूर्ति, सारमूर्ति और हरिमूर्ति नाम के चार छोटे साधु बनाये। केवलप्रभा गणिनी को प्रवर्तिनी पद दिया और मालारोपणादि महानन्दि महोत्सव भी किया।

सं० १३७० माघ शुक्ला एकादशी के दिन, सारे संसार के लिये कल्पद्रुम के अवतार श्रीपूज्यजी ने स्वपक्ष-परपक्ष को आनन्दित करने वाले, सकल संघ की ओर से दीक्षा-मालारोपणादि नन्दिमहोत्सव करवाया। इस महोत्सव में ज्ञाननिधान मुनि और यशोनिधि, महानिधि नाम की दो साध्वियों को दीक्षा दी।

इसके बाद भीमपल्ली समुदाय की अभ्यर्थना से श्रीपूज्यजी भीमपल्ली आये। वहां पर सं० १३७१ फागुन शुदि एकादशी के दिन, श्रीपूज्यजी ने साधुराज श्यामल आदि संघ के द्वारा अमारी घोषणा, अन्नक्षेत्र, संघपूजा, सहधार्मिकवात्सल्य आदि नाना प्रकार के उत्सव के साथ सब मनुष्यों के मन को हरने वाले व्रतग्रहण, मालारोपण आदि नन्दि महोत्सव करवाये। उस महोत्सव में, त्रिभुवनकीर्ति मुनि को तथा प्रियधर्मा, यशोलक्ष्मी, धर्मलक्ष्मी नामक साध्वियों को दीक्षा दी।

८५. श्रीसंघ की गाढ़ अभ्यर्थना से श्रीपूज्यजी वहाँ से जाबालिपुर को विहार कर गये। वहाँ पर सं० १३७१ जेठ वदि दशमी के दिन मंत्री भोजराज तथा देवसिंह आदि संघ के प्रमुख लोगों द्वारा करवाया हुआ तथा अपने-पराये सभी को आनन्द देने वाला मालारोपणादि नन्दि महोत्सव बड़ी शान से हुआ। उस मौके पर, देवेन्द्रदत्तमुनि, पुण्यदत्तमुनि, ज्ञानदत्त, चाहदत्तमुनि और पुण्यलक्ष्मी, ज्ञानलक्ष्मी, कमललक्ष्मी तथा मतिलक्ष्मी आदि साधु-साध्वियों को दीक्षा दी। इसके बाद जालौर को म्लेछों ने भंग कर दिया। इसलिये महाराज ने श्री शम्यानयन, श्रीरुणापुर, श्री बब्बेरक आदि नाना स्थानों में रहने वाले लोगों को सन्तोष देकर, श्रीमाल वंशभूषण, जिनशासन प्रभावक सकल स्वधार्मिकवत्सल सेठ मानल के पुत्र सा० माल्हा, सा० धांधू आदि भाइयों के साथ तथा मरुदेशीय सपादलक्ष परगने के नगर गाँवों के रहने वाले सकल श्रावकों के तीन सौ गाड़ों के झुंड के साथ फलवर्द्धिका (फलोदी) जाकर संपूर्ण अतिशयों के निधान, म्लेच्छों से व्याकुल खार-समुद्र समान संपूर्ण सपादलक्षदेश के लिये अमृत भरे कुए के तुल्य श्रीपार्श्वनाथ भगवान का प्रथम यात्रा महोत्सव किया। इस यात्रा महोत्सव में विधिसंघ के श्रावकों ने श्रीइन्द्र पद आदि अनेक पदों को ग्रहण करके, उत्तमभोजन दान, श्री स्वधार्मिक वात्सल्य, श्रीसंघ-पूजा आदि अनेक प्रकार से जिन-शासन की प्रभावना बढ़ाते हुए अपने अपरिमित धन को सफल किया। इसके बाद नागपुर के श्रावकों की प्रार्थना स्वीकार करके श्रीपूज्यजी नागपुर (नागौर) गये।

सेठ लोहदेव, सा० लखण, सा० हरिपाल आदि उच्चापुरीय विधिसंघ की प्रबल प्रार्थना से, ज्ञान, ध्यान तथा बलशाली, श्रीमेघकुमार देव से मार्ग में सुरक्षित, अनेक साधुओं से परिवृत, श्रीजिन-चन्द्रसूरिजी महाराज ने गर्मी का मौसम होते हुए भी, अनेक म्लेच्छों से संकुल महामिथ्यात्व से परिपूर्ण, सिन्ध प्रान्त की निर्जल-नीरस भूमि में धर्मकल्पद्रुम का पौधा लगाने के लिये विहार

किया। उस देश के अलङ्कार भूत उच्चापुरी के समीपवर्ती श्रीदेवराजपुर में, उच्चापुरीय श्रावकों द्वारा प्रवेश महोत्सव कराये जाने पर श्रीपूज्यजी महामिथ्यात्वरूपी राजा को उखाड़ने के लिये कुछ दिन वहीं ठहरे। तमाम सिन्ध देश में श्रावकों की गाढ़ प्रार्थना से सं० १३७६ में मार्गशीर्ष वदि चतुर्थी के दिन, श्रीपूज्यजी ने ज्ञानी लोगों को सम्यक्त्व देने के हेतु आचार्यपद स्थापना, व्रतग्रहण तथा मालारोपणादि महोत्सव प्रारम्भ किये। पश्चात् महोत्सव के दिन आरम्भसिद्धि रात्रि में, गम्भीर्य ज्ञान-ध्यान की अधिकता से युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि की याद दिलाने वाले, श्रीपूज्यजी ने परस्पर में राजाओं के युद्ध के कारण उजड़े हुए देशों में होकर जाने वाले, अनेक चोर-डाकुओं के उपद्रवों से परिपूर्ण मार्गों में अपने ज्ञानबल से कुशलता का निश्चय करके चातुर्मास के बीच में ही अपने शिष्यरत्न राजचन्द्र को लिवाने के लिये सेठ वीसल और महणसिंह को देवराजपुर से गुजरात के मुख्य नगर पाटण भेजा। पाटण में प्रसिद्ध विद्वान् महोपाध्याय विवेकसमुद्रजी के पास रहकर राजचन्द्रजी, व्याकरण-तर्क साहित्य-अलंकार-ज्योतिष-स्वकीय-परकीय सिद्धान्तों को भली भांति जान चुके थे। ये आचार्य में होने वाले गुणों से विभूषित थे। उपाध्यायजी ने आचार्यश्री की आज्ञा के अनुसार पुण्यकीर्ति को साथ देकर राजचन्द्र मुनि को भेज दिया। श्रीपूज्यजी के ध्यान बलसे आकर्षित होकर शासनदेवता के प्रभाव से मार्ग में होने वाले चौर-डाकुओं के उपद्रवों की परवाह न करके राजचन्द्र मुनिजी कार्तिक मास में चातुर्मास समाप्ति के दिन पहुंचे और अपने दीक्षा गुरु श्रीपूज्यजी के चरण कमल रूपी महातीर्थ की वन्दना की। उनके आये बाद उच्चापुर, मरुकोट, श्रीक्यासपुर आदि सिन्ध के अनेक नगरों और ग्रामों से आने वाले अगणित श्रावकों के मेले में आचार्य पद स्थापना, व्रत-ग्रहण, मालारोपणादि नन्दि महामहोत्सव किया। इस उत्सव के समय जगह-जगह खेल-तमासे दिखलाये गये। नागरिक-नागरियों ने नाच गान किया। वन्दिजनों ने अच्छी-अच्छी कवितायें पढ़कर सुनाईं। याचकों को धन बांटा गया। नगर के धनी-मानी सेठ उदयपाल, श्रे० गोपाल, सा० वयरसिंह, ठाकुर कुमरसिंह आदि मुख्य श्रावकों ने स्वर्ण, अन्न, वस्त्रों का दान किया। जगह-जगह भोजनालय खोले गये, जिनमें किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं थी। इसके अतिरिक्त स्वधर्मिक लोगों के प्रति प्रेमभाव दर्शाया गया।

जिसने वाक्चातुरी से बृहस्पति को भी जीत लिया, जो समस्त विद्यासमुद्र को पीजाने में अगस्त्य ऋषि के समान है, उस शिष्यरत्न को आचार्यपद देकर श्रीपूज्यजी ने राजचन्द्र के स्थान में नाम बदल कर राजेन्द्रचंद्राचार्य नाम रक्खा। ललितप्रभ, नरेन्द्रप्रभ, धर्मप्रभ, पुण्यप्रभ तथा अमरप्रभ नाम के साधुओं को दीक्षा दी। उस अवसर पर अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने माला ग्रहण की। सम्यक्त्व रोपण, सामायिक रोपण भी किया। इस महोत्सव में, सेठों में प्रधान श्री यशोधवल के कुलप्रदीप शाह नेमिकुमार के पुत्ररत्न, जिनशासन प्रभावक, सकल स्वधर्मिक वत्सल श्री सेठ

वयरसिंह सुश्रावक ने स्वधार्मिक वात्सल्य, सर्वसुलभ भोजन, अमारी घोषणा तथा श्रीसंघ पूजा आदि कार्यों में लगाकर अपना धन सफल किया।

८६. इसके बाद सं० १३७४ में फाल्गुन वदि षष्ठी के दिन उ च्चा पु री आदि अनेक नगरों के रहने वालों एवं सकल सिंधदेश वासी संघ की प्रार्थना से श्रीपूज्यजी ने व्रतग्रहण, मालारोपण और नन्दि महोत्सव करवाया। सब को आश्चर्य देने वाले इस महोत्सव में दर्शनहित तथा भुवनहित नामक मुनिओं को प्रव्रज्या धारण करवाई। सैंकड़ों श्राविकाओं ने माला ग्रहण की। इस प्रकार दे व रा ज पु र में लगातार दो चौमासे करके श्रीपूज्यजी ने महामिथ्यात्व अन्धकार का उन्मूलन किया। सेठ पूर्णचन्द्र और उनके पुत्र उदारचारित्र, जिनशासन प्रभावक, सार्थवाह श्रीहरिपाल को साथ लेकर मरुस्थल के वालू का समुद्र अर्थात् रेतीले मैदान को पार करके नागौर को आये। नागौर के श्रावकों ने बड़ी धूम-धाम से नगर प्रवेश करवाया।

वहां पर कन्यानयन-निवासी श्रीमालकुलभूषण निजशासनोन्नतिकारक श्रीकाला श्रावक ने कन्यानयन बा ग ड़ दे श, सपादलक्ष आदि समग्र और पास के गांवों तथा नगरों के रहने वाले श्रावकों को इकट्ठा किया। उनके संमिलित संघ के साथ श्रीपूज्यजी ने फलौदी में दूसरी बार श्रीपार्श्वनाथ देवकी यात्रा की। वहां जाकर धनाढ्य श्रावकों ने अन्नसत्र, साधर्मिक-वात्सल्य तथा श्रीसंघ की पूजा आदि शुभ कार्यों से जिनशासन की बड़ी प्रभावना की।

तदनन्तर सं० १३७५ में माघ शुक्ल द्वादशी के दिन नागौर में मंत्रीदलीय कुलोत्पन्न ठाकुर विजयसिंह, ठा० सेढू, सा० रूदा और दिल्ली वाले संघ के प्रमुख मंत्रीदलीय ठा० अचलसिंह आदि धोरी श्रावकों के महाप्रयत्न से समग्र झालामऊ समुदाय, कन्यानयन, आशिका, श्रीनरभट, बागडदेशीय समस्त समुदाय तथा मं० भूधराज प्रमुख कोशवाणा समुदाय, सोलख (नागौर), जा वा लि पु र, शम्यानयन, मारुवत्रा आदि नगरों से, गांवों से, प्रांतों से, अनेक संघ समुदायों का मेला हुआ। उस समय जगह-जगह अन्न क्षेत्र खोले गये। नाना प्रकार के खेल-तमाशे दिखलाये गये। स्त्रियों के नृत्य हुए। साधर्मिक भाइयों की सेवा-सुश्रुषा की गई। धनवान श्रावक लोगों ने सोने-चाँदी के कड़े-अन्न-वस्त्र बांटे। नागौर के श्रावकों की प्रार्थना से श्रीवर्धमान स्वामी की शासन-वृद्धि के लिये तत्पर श्रीपूज्यजी ने असंख्यजनों के मनको हरने वाला, मिथ्यादृष्टि लोगों को आश्चर्यदायक, व्रतग्रहण, मालारोपणादि नन्दि महोत्सव किया। उस महोत्सव में सोमचन्द्र साधु को शीलसमृद्धि, दुर्लभसमृद्धि, भुवनसमृद्धि साध्वियों को दीक्षा दी। पं० जगच्चन्द्रगणि को तथा सब विद्यारूपी वाराङ्गनाओं के अभिनवोपाध्याय कल्प, अनेक शिष्यरत्न बढ़ाने में सिद्धहस्त, गृहस्थ में रहते हुए पुत्रादि और संयमधारे बाद शिष्यादि-इस तरह दोनों जगह सन्तान वाले; जिसमें श्रीपूज्यजी के पाट पर बैठने की योग्यता है; ऐसे पंडितराज कुशलकीर्ति

को वाचनाचार्य का पद प्रदान करके सम्मानित किया। धर्ममाला गणिनी और पुण्यसुन्दरी गणिनी को प्रवर्तिनी पद से अलंकृत किया।

इसके बाद ठाकुर विजयसिंह, ठा० सेढू, ठा० अचलसिंह और बाहर से आने वाले समग्र संघ के गाड़ों के साथ बड़ा मेला बनाकर, श्रीपूज्यजी ने फलोदी पार्श्वनाथ दर्शन के लिये तीसरी बार यात्रा की। वहां पर जिनशासन की प्रभावना करने में प्रवीण, सब सहधर्मियों के वात्सल्य मंत्री-दलीय-कुलमंडन सेढू श्रावक ने बारह हजार रुपये देकर इन्द्रपद ग्रहण किया। अन्य श्रावकों ने अमात्य आदि पदग्रहण करके तथा अन्न सत्र, संघ पूजा, स्वधर्मी भाइयों की सेवा, सोने चांदी के के कड़ों एवं अन्न-वस्त्र का दान आदि पुण्य कार्यों से जैन धर्म की बड़ी प्रभावना की। श्रीपार्श्वनाथ भगवान् के भण्डार में हजारों रुपयों की आय हुई।

८७. इसके बाद श्रीपूज्यजी संघ के साथ सं० १३७५ वैशाख वदि अष्टमी के दिन नागौर आये। वहां पर अनेक उज्ज्वल कर्मों से अपने पूर्वज एवं समस्त कुल का उद्धार करने वाले, अपनी भुजाओं से उपार्जन की हुई लक्ष्मी को भोगने वाले, मंत्रीदलीय-कुलभूषण ठाकुर प्रतापसिंह के पुत्ररत्न, जिनशासन का प्रभाव बढ़ाने में दक्ष, सब सहधर्मियों का प्रेमी, बेजोड़ पुण्य संचय से शोभायमान, स्थिरता, गम्भीरता तथा उदारता आदि गुणगणों को धारण करने वाले, सब राजाओं के आदरणीय, ठक्कुर अचलसिंह श्रावक ने महाप्रतापी बादशाह कुतुबुद्दीन सुल्तान का सर्वत्र निर्विरोध यात्रा के लिये फर्मान निकलवाकर तीर्थयात्रा के लिये गांवों-गांव सम्मान के साथ कुंकुम पत्रिकायें भेजकर श्रीनागपुर, श्रीरुणा, श्रीकोशवाणा, श्रीमेड़ता, कडुयारी, श्रीनवहा, झुंझणू, नरभट, श्रीकन्यानयन, श्रीआशिकापुर, रोहतक, श्रीयोगिनीपुर, धामइना, यमुनापार आदि स्थानों में स्थित तीर्थों के लिये यात्रोत्सव प्रारम्भ किया। श्रीवज्रस्वामी और आर्य सुहस्तिसूरि के समान, सर्वातिशयशाली, जगत् पूज्य श्रीपूज्यजी जयदेवगणि, पद्मकीर्तिगणि, पंडित अमृतचन्द्रगणि आदि आठ साधु और श्रीजयर्द्धि महत्तरा आदि साध्वी एवं चतुर्विध संघ सहित, देश में म्लेच्छों का प्रबल उपद्रव होते हुए भी, सुहागिनी श्राविकाओं के मंगल-गीत, वन्दिजनों के स्तुति-पाठ और बारह प्रकार की बाजों की मधुरध्वनि के बीच श्रीदेवालय के साथ नागौर से संघ को लेकर चले।

सारे संघ के भार को वहने में समर्थ, अपूर्वदान से कल्पद्रुम को मात करने वाले, ठाकुर अचलसिंह श्रावक तथा श्रीमाल कुलोत्पन्न, देवगुरुआज्ञा-रूप मणि को मस्तक पर चढ़ाने वाले, संघ के पृष्ठ रक्षक भार को स्वीकार करने वाले सेठ सुरराज के पुत्ररत्न वनियों में माननीय साधुराज रुद्रपाल श्रावक और सकल संघ सहित श्रीपूज्यजी मार्ग के गांवों और नगरों में नृत्य-बाजे से चैत्य परिपाटी करते हुए, जिनशासन की प्रभावना बढ़ाते हुए, श्रीनरभट पहुंचे। वहां पर समारोह के

साथ नगर प्रवेश होने के बाद, श्रीजिनदत्तसूरिजी से प्रतिष्ठापित समस्त आचार्यों के निधान तथा पार्श्वनाथ को वन्दना की।

श्रीनरभटपुर के श्रावकों ने चतुर्विध संघ सहित तथा देवालय सहित श्रीपूज्यजी की एवं संघ की पूजा कर बड़ी प्रभावना की।

इसके पश्चात् सकल वागड़देश के ग्राम-नगरों के निवासी लोगों के मनोरथों को पूर्ण करते हुए, श्रीपूज्यजी ने बड़े उत्साह से श्रीकन्यानयन में जाकर स्वर्गीय श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज द्वारा स्थापित, वर्तमान कल्प के अतिशय धारी श्रीवर्द्धमान स्वामी को नमन किया। मेहर, पद्म, सेठ काला आदि श्रीकन्यानयन के प्रधान श्रावकों ने देश में म्लेच्छों की प्रधानता होते हुए भी, हिन्दुओं के समय के तरह पूज्यश्री के शुभागमन के उपलक्ष्य में जगह-जगह खेल तमाशे करवाये; इसके अतिरिक्त वहां पर महावीर तीर्थ में जन्म-जन्मांतर से उपार्जित पाप एवं कष्टों को हरने वाली बड़ी प्रभावना की और वहां सारे श्रीसंघ ने श्रीवर्द्धमान स्वामी के आगे बड़े उत्साह से आठ दिन तक 'अष्टान्हिका महामहोत्सव' किया।

इसके बाद यमुनापार तथा वागड़ देश के श्रावकों के चारसौ घोड़े, पांचसौ गाड़े तथा सातसौ बैल आदि का बड़ा झुंड होने पर, ढोलों के ढमाके से मार्ग में जगह-जगह मंगल पाठ तथा वादित्र-ध्वनि के होते हुए, चक्रवर्ती राजा की सेना के समान चतुर्विध श्रीसंघ हस्तिनापुर पहुँचा। इस संघ में असंख्य म्लेच्छों पर प्रभाव रखने वाले ठाकुर जवनपाल, ठा० विजयसिंह, ठा० सेढ़ू, ठा० कुमरपाल तथा देवसिंह आदि मन्त्रिदलीय श्रावक ठाकुर भोजा, श्रेष्ठी पद्म; सा० काला, ठा० देपाल, ठा० पूर्ण, सेठ महणा, ठा० रत्नू, सा० लूणा तथा ठा० फेरू आदि अनेक श्रीमालवंश के श्रावक तथा सेठ पूनड सा० कुमरपाल, मं० मेहा, मंत्री वील्हा, सा० साल्हण, सा० महिराज आदि ऊकेशवंश के असंख्य श्रावक प्रधान थे। इस संघ में श्री पूज्यजी ही चक्रवर्ती सदृश सेनापति के स्थानापन्न थे। इस संघ ने मंद २ यात्रा करते हुए हस्तिनापुर तक कई पड़ाव किये थे। इसके पीठ संरक्षक सेठ रुद्रपाल थे। संघ ने मार्ग में आने वाली यमुना नदी को अच्छी-अच्छी नावों में बैठकर पार की थी। संघ हस्तिनापुर इसलिये गया कि वहां पर श्रीशान्तिनाथ, श्री कुन्थनाथ, श्रीअरनाथ नामक चक्रवर्ती तीर्थङ्करों के गर्भावतार, जन्म, दीक्षा, ज्ञान आदि चार कल्याणक यथासमय होने से वहां की भूमि पवित्र समझी गई है।

८९. वहां पर साधुओं के शिरोमणि, चतुर्विध संघ समन्वित, श्रीपूज्यजी ने नये बनाये हुए स्तुति-स्तोत्र, नमस्कारोच्चारण पूर्वक श्रीशान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ देवों की जन्मान्तरित पापों को हरने वाली यात्रा की। श्रीसंघ ने इन्द्रपद आदि ग्रहण बेरोक-टोक किया। भोजन, सहधर्मी सेवा,

श्रीसंघ पूजा, सोने-चांदी के कड़ों एवं अन्न-वस्त्र का दान देकर, कलिकाल में भी सतयुग की तरह सबको सुखी बनाने वाली वीर-शासन की बड़ी प्रभावना की। वहां पर ठा० हरिराज के पुत्ररत्न, उदारचरित्र, देवगुरु आज्ञा पालक, ठाकुर मदनसिंह के छोटे भाई ठा० देवसिंह श्रावक ने बीस हजार जैथल (उस जमाने का प्रचलित सिक्का) देकर इन्द्रपद ग्रहण किया। इसी प्रकार ठा० हरिराज आदि धनाढ्य श्रावकों ने मंत्री आदि पद ग्रहण किये। देवभंडार के सारे मिलाकर डेढ़ लाख जैथल इकट्ठे हुए। हस्तिनापुर में पांच दिन जिनशासन की प्रभावना करके समस्त संघ श्रीमथुरातीर्थ के लिये चल पड़ा। मार्ग में जगह-जगह उत्सवादि करता हुआ श्रीसंघ दिल्ली के पास वाले तिलपथ नामक स्थान में पहुँचा। इस समय श्रीपूज्यजी की प्रतिष्ठा से कुढ़ने वाले, दुर्जन स्वभाव वाले द्रमकपुरीयाचार्य ने बादशाह कुतुबुद्दीन के आगे चुगली की कि "जिनचन्द्रसूरि नाम का साधु आपकी आज्ञा बिना ही सोने का छत्र धारण करते हैं और सिंहासन पर बैठते हैं।" यह संवाद सुनकर म्लेच्छ स्वभाव वाले बादशाह ने सारे संघ को रोक दिया और मुनि परिवार तथा संघपति ठाकुर अचलसिंह के साथ श्रीपूज्यजी को अपने पास बुलाया। श्रीपूज्यजी के तेजस्वी मुख-मंडल को देखते ही न्याय के समुद्र और अपने प्रताप से समग्र पृथ्वी को जीतने वाले श्रीअलाउद्दीन सुलतान के पुत्ररत्न श्रीकुतुबुद्दीन सुलतान ने कहा कि "इन श्वेताम्बर साधुओं में दुर्जनों की कही हुई एक भी बात नहीं घटती।" श्रीपूज्यजी को दीवानखाने में भेजते हुए, सुलतान ने दीवान साहब को कहलवा भेजा कि "इन श्वेताम्बर साधुओं की इतिकर्त्तव्यता, आचार-व्यवहार आदि को अच्छी तरह जांच कर जो झूठी शिकायत करने वाले अन्यायी हों, उन्हें दण्ड दिया जाय।"

प्रधान अधिकारी पुरुषों ने भलीभांति न्याय-अन्याय की जांच कर, डरके मारे गुप्त स्थान में छिपे हुये द्रमकपुरीयाचार्य चैत्यवासी को पकड़ मँगवाया और राजद्वार पर खड़ा किया। सरकारी अधिकारियों ने पूछा कि 'आप अपनी शिकायत को प्रमाणों से सत्यकर सकते हैं?' उत्तर में कोई सन्तोषजनक बात न कहने के कारण, श्रीपूज्यजी के सामने ही राजद्वार पर खड़े हुए लाखों हिन्दू-मुसलमानों के समक्ष, राजकीय पुरुषों ने उसको लाठी, घूसा, मुक्का आदि से जर्जर देह बनाकर जेलखाने में डाल दिया और उसकी बड़ी बुराई की। सरकारी आदमियों ने श्रीपूज्यजी से कहा कि "आप सत्यभाषी हैं, न्यायी हैं और सच्चे श्वेताम्बर साधु हैं। आप बादशाह की भूमि पर स्वेच्छा से विचरें, इस विषय में आप किसी प्रकार की शङ्का न करें।"

यद्यपि बादशाह की ओर से श्रीपूज्यजी को जाने की इजाजत मिल गई थी, परन्तु दयालु स्वभाव वाले श्रीपूज्यजी ने सेठ तेजपाल, सा० खेतसिंह, ठा० अचलसिंह और ठा० फेरू आदि को बुलाकर कहा कि दुर्जन स्वभाव वाले द्रमकपुरीयाचार्य को कैद से छुड़ाये बिना हम इस स्थान से आगे नहीं चलेंगे। क्योंकि श्रीवर्धमान स्वामी के शिष्य श्रीधर्मदास गणि ने उपदेशमाला में कहा है—

जो चंदणेण बाहुँ आलिम्पइ वासिणाइ तच्छेइ ।
संथुणइ जोवि निंदइ महरिसिणो तत्थ समभावा ॥

[चन्दन, सींचने वाले पुरुष की भुजा को सुगन्धित करता है, वैसे ही काटने वाले (कुल्हाड़े) को भी सुवासित करता है। इसी तरह महर्षि लोगों की स्तुति और निन्दा करने वाले पुरुषों में समभाव रखते हैं।]

अन्य शास्त्रों में भी लिखा है—

शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे स्वर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ।
मोक्षे भवे च सर्वत्र निःस्पृहो मुनिपुङ्गवः ॥

[मुनि लोग शत्रु-मित्र, घास, स्त्रीवृन्द, सुवर्ण, पत्थर, मणि, मिट्टी का ढेला, मोक्ष और संसार इन सब में निस्पृह रहते हुये समान भाव रखते हैं।]

इस प्रकार शत्रु-मित्र में समभाव वाले, तृण, मणि, मिट्टी के ढेले और कंचन को एकसा समझने वाले, दया के समुद्र श्रीपूज्यजी का दुश्मन को कैद से छुड़ाने का दृढ़ अभिप्राय जानकर सरकारी और गैर सरकारी सभी लोगों ने आश्चर्य से अपना माथा धुनते हुए पूज्यश्री की अधिकाधिक प्रशंसा की। इसके बाद श्रीपूज्यजी ने तेजपाल आदि श्रावकों के द्वारा दयालु अधिकारिओं को समझा-बुझाकर द्रमकपुरीयाचार्य को जेल से छुड़वाकर उसको अपनी पौषधशाला में भेजा। तत्पश्चात् अश्वशाला के अध्यक्ष द्वारा अतीव सम्मानित हुए श्रीपूज्यजी हिन्दू-मुसलमान तथा सेठ तेजपाल, खेतसिंह, सा० ईश्वर, ठा० अचलसिंह श्रावक आदि लोगों से अनुगमन किये हुए, गुरुतर प्रभावना पूर्वक खंडकराय नाम के स्थान में आये। इस यात्रा में जिनशासन प्रभावक, सकल राजमान्य, सब कामों को निभाने में समर्थ, श्रीमालवंश दीपक, सारे संघ के भार को उठाने वाले सेठ तेजपाल, सा० खेतसिंह, सा० ईश्वर आदि श्रावकों ने तथा सकलसंघ के अग्रगण्य, उदार चरित्रधारी, सब दिशाओं में विख्यात, मंत्रीदलीय वंशभूषण अपने पुत्ररत्न श्रीवत्स सहित ठ० अचलसिंह श्रावक ने श्रीपूज्यजी की और सारे संघ की बड़ी भारी सहायता की। इस प्रकार यात्रा में कई मास बीतने के बाद चौमासा लग गया। लोगों को विदा करके श्री अचलसिंहादि श्रावक खंडसराय में ही रहे और श्रीपूज्यजी ने भी वहीं चातुर्मास किया।

सुल्तान के कहने से तथा संघ के अनुरोध से "रायाभियोगेणं, गणाभियोगेणं" इत्यादि सिद्धान्त-वाक्यों का स्मरण करके श्रावण के महीने में चौमासे के बीच में ही संघ के संरक्षक ठाकुर

अचलसिंह, सा० रुद्रपाल आदि समग्र बागड़ देश के संघ को साथ लेकर श्रीसुपार्श्व, श्रीपार्श्व, श्रीमहावीर आदि तीर्थंकरों की यात्रा के लिये मथुरा को प्रस्थान किया। मथुरा में श्रीसंघ ने अन्नसत्र, स्वधर्मिक-वात्सल्य आदि कार्यों से शासन की बड़ी प्रभावना की। वहां से लौटकर संघ सहित श्रीपूज्यजी ने योगिनीपुर आकर शेष चातुर्मास को खंडासराय में पूरा किया। वहां पर रहते-रहते चातुर्मास में स्वर्गीय श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज के स्तूप की बड़े विस्तार से दो बार यात्रा की।

६०. चातुर्मास समाप्त होने पर श्रीपूज्यजी ने स्व-शरीर में कम्प रोग जनित बाधा को देखकर, अपने ज्ञान-ध्यान के बल से अपना अन्तिम समय निकट आया जानकर, अपने हाथ से दीक्षित, द्विधा संतान वाले, अपनी पाटलक्ष्मी के धारण करने योग्य, व्याकरण-न्याय-साहित्य-अलङ्कार-ज्योतिष आदि शास्त्रों के विचार में चतुर, स्वकीय-परकीय सिद्धान्त समुद्र को तैरने में नाव के समान अपने शिष्यरत्न वाचनाचार्य कुशलकीर्ति गणि को पाट पर स्थापित करना तथा उसका नामकरण आदि सर्व शिक्षा-समन्वित एक पत्र लिखकर श्री राजेन्द्रचन्द्राचार्य मुनि के पास भेजने के लिये विश्वास पात्र-श्रीदेवगुरुआज्ञापालक-ठाकुर-श्रीविजयसिंह के हाथ में सौंपा। चौहान कुलभूषण, शरणागतवत्सल श्री राणा मालदेवजी का अनुरोध पूर्ण आमंत्रण पाकर श्रीपूज्यजी ने मेड़तानगर जाने के लिये विहार किया। मार्ग में आने वाले धामइना, रोहतक आदि मुख्य-मुख्य स्थानों के श्रावकों की वन्दना स्वीकार करते हुए श्री कन्यानयन नगर में आकर श्री महावीर-देव को नमस्कार किया। वहाँ पर श्रीपूज्यजी के शरीर में श्वास और कम्प की व्याधि बढ़ गई। इसी से स्थानीय चतुर्विध संघ के समक्ष मिथ्यादुष्कृत दान देकर, सब प्रकार की शिक्षा से पूर्ण लेख लिखवाकर श्री राजेन्द्रचन्द्राचार्य के पास भेजने के लिये विश्वासपात्र प्रवर्तक श्री जयवल्लभगणि के हाथ में दिया। एक महीने तक कन्यानयनीय समुदाय को संतोष देकर श्री नरभट आदि नाना स्थानों के लोगों की वन्दना स्वीकार करते हुए मारवाड़ के प्रसिद्ध नगर मेड़ता पहुँचे। मेड़ता में राणा श्रीमालदेव और समुदाय की प्रार्थना से उन लोगों के संतोष के लिये चौबीस दिन ठहर कर श्रीपूज्यजी अपने निर्वाण योग्य स्थान समझ कर श्री कोशवाणा पहुँचे। वहाँ पर चतुर्विध संघ से खमत-खामणा करके सं० १३७६ आषाढ़ सुदि नवमी को डेढ पहर रात गये बाद पैंसठ वर्ष की उम्र में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज ने इस विनाशशील पंचभौतिक शरीर को त्याग कर स्वर्ग में देवताओं का आतिथ्य स्वीकार किया।

प्रातःकाल होते ही श्रीसंघ ने श्री वर्द्धमान स्वामी के निर्वाण समय की विधि के समान अनेक मंडपिकाओं से सुशोभित विमान बनाकर उसमें श्रीसूरीश्वरजी के शव को रखकर नागरिक और राजकीय लोगों के समुदाय के साथ श्मशान यात्रा महोत्सव किया। उस अवसर पर बारह

प्रकार के बाजों का निनाद, नाचों की उछाल तथा सधवा महिलाओं द्वारा पूर्वाचार्यों का गुणगान आदि कार्य किये गये। उस समय कतिपय विद्वानों ने महाराज के गुणगानों का इस भांति वर्णन किया—

यस्मिन्नस्तमितेऽखिलं क्षितितलं शोकाकुलव्याकुलं,
जज्ञे दुर्मदवादिकौशिककुलं सर्वत्र येनोल्वणम्।
ज्योतिर्लक्षणतर्कमन्त्रसमयालंकारविद्यासमा,
दुःशीला वनिता इवात्रभुवने वाञ्छन्ति हा तुच्छताम्॥

पङ्कापहारनिखिले महीतले गार्मिनिर्जरतरलितैः ?।
विधाय येऽस्तंगताः श्रीस्वर्गं ये...............॥

ये तु रीनेपुत्रनिचतवयं मुक्त्वं मा हत्याकुलं (?),
सद्यस्तत्पथगामिभिः सहचरैः सौराज्यसौभिक्ष्यकैः।
स्थास्यामोऽपनयः (?) कथं वयमिति ज्ञात्वेव चिन्तातुरैः,
प्रातः श्रीजिनचन्द्रसूरिगुरवः स्वर्गस्थिता मङ्गलम्॥

भाव्यं भूवलये क्षयं कलिपतेर्दुर्भिक्षसेनापते—
र्ज्ञात्वा तन्मथनोद्यताः सुरगुरुं प्रष्टुं सखायं निजम्।
मन्ये नाशिकमन्नधारणयुताभावात् पत्रादृद्धृता (?),
राजानो जिनचन्द्रसूरय इति स्वर्गं गता दैवतः॥

महाराजश्री की पारलौकिक क्रियाओं के विधि पूर्वक सम्पन्न किये बाद मंत्रीश्वर देवराज के पौत्र मंत्री माणकचन्द्र के पुत्ररत्न मंत्री श्री मूंधराज श्रावक ने चिता स्थान की जगह श्रीपूज्यजी की चरणपादुका सहित एक सुन्दर स्तूप बनवाया।

आचार्य जिनकुशलसूरि

९१. चातुर्मास समाप्त होने पर सब तरह की शिक्षा प्राप्त श्रीपूज्य के दिये हुए पत्र लेख को लेकर जयवल्लभगणि पं० श्रीराजेन्द्रचन्द्राचार्य के पास भीमपल्ली आये। पत्र के आशय को समझ कर श्रीराजेन्द्रचन्द्राचार्यजी, श्रीजयवल्लभगणि आदि-आदि साधुओं को साथ लेकर पाटण आये। पाटण में उस समय मुसलमानों के उपद्रव एवं दुर्भिक्ष के कारण स्थिति बड़ी भयानक थी, परन्तु अपने ज्ञान-ध्यान के बल से महोत्सव में आने वाले चतुर्विध संघ के कुशल-मंगल का निश्चय करके, अपने दिवंगत गुरुश्री के आदेश पालन को लक्ष्य बिन्दु मानकर श्रीराजेन्द्रचन्द्राचार्यजी ने सं० १३७७ जेठ वदि एकादशी के दिन कुम्भ लग्न में मूलपद स्थापना महोत्सव का निश्चय किया। चन्द्रकुलावतंस, श्रीजिनशासन की प्रभावना करने में उद्यत, उदारता में कर्ण को भी तिरस्कृत करने वाले सेठ जाल्हण के पुत्र तेजपाल श्रावक ने अपने भाई रुद्रपाल की सम्मति से, श्रीपूज्यों के अनुग्रहों से, आचार्य पाट-स्थापना महोत्सव का भार अपने ऊपर लेकर चारों दिशाओं में योगिनीपुर, उच्चापुर, देवगिरि, चित्तौड़, खम्भात आदि स्थानों तक के नाना देशों, नगरों व ग्रामों में रहने वाले श्रावकों को पाट-महोत्सव पर बुलाने के लिए अपने आदमियों के हाथ कुंकुम पत्रिकायें भेजीं। पत्र द्वारा समाचार पाकर दुर्भिक्ष आदि की भयानकता की परवाह न करके सब स्थानों के श्रावक होड़ाहोड़ महोत्सव के दिन पाटण पहुंचे। ठाकुर श्रीविजयसिंह भी श्रीपूज्यजी के दिये पाट-स्थापना सम्बन्धि कार्यों की शिक्षा देने वाले बंद लिफाफे को लेकर योगिनीपुर से पाटण पहुंचा। सब स्थानों से सब समुदायों के आ जाने के बाद अपने प्रतिज्ञा कार्य को सफल करने में तत्पर श्रीराजेन्द्रचन्द्राचार्य ने श्रीजिनचंद्रसूरिजी के गच्छ के आधारस्तम्भ, सकल-विद्याओं के पढ़ाने में अद्वितीय श्रीविवेकसमुद्र महोपाध्याय, प्रवर्त्तक जयवल्लभगणि, हेमसेनगणि, वाचनाचार्य हेमभूषणगणि आदि तेतीस साधुओं की उपस्थिति में तथा श्रीजयर्द्धि महत्तरा, प्रवर्त्तिनी बुद्धिसमृद्धि गणिनी, प्रवर्तिनी प्रियदर्शना गणिनी आदि २३ साध्वियों और सारे स्थानों से आने वाले समुदायों के समक्ष श्रीजयवल्लभगणि और ठा० विजयसिंहजी के द्वारा प्राप्त स्वर्गीय श्रीपूज्यजी के दोनों पत्र पढ़कर सुनाये। दिवंगत आत्मा के सन्देशों को पत्रों द्वारा सुनकर चतुर्विध संघ नवीन हर्ष की तरंगों में हिलोरें लेने लगा। जैसे कोई नवीन निधि प्राप्त हो गई हो। गुरु की आज्ञा परिपालन में दृढ़, सब प्रकार के अतिशयों से शोभित, चार प्रकार के संघ से आवृत श्रीराजेन्द्रचन्द्राचार्य ने कर्त्तव्य की शिक्षा से समन्वित श्रीपूज्यजी के पत्र लेख के अनुसार मंत्रीश्वर राजकुल के प्रदीप, मंत्री जेसल की धर्मपत्नि जयन्तश्री के पुत्र, चालीस वर्ष की उम्र वाले, सर्व युगप्रवरों के निर्मित शास्त्रों के ज्ञाता, वाचनाचार्य श्रीकुशलकीर्ति गणि को श्रीशान्तिनाथ देव तथा सकल समुदायों के समक्ष गुजरात के मुकुट के समान श्री पाटण नगर में युगप्रधान पदवी देकर

उत्सव के साथ पाट पर स्थापित किया और "पूज्य श्री जिनकुशलसूरि" नाम रखा तथा समवसरण प्रदान भी किया गया। कुशलकीर्तिगणिजी गणधरों के समान लब्धिधारी थे। स्थैर्य, धैर्य, गाम्भीर्य आदि गुणगणों से उपार्जित उनके यश रूपी कपूर प्रवास से सारा विश्व सुगन्धित था। उनका यश महादेव का हास्य, पूर्णिमा की रात, चांद की किरणें, गाय का दूध, मोतियों का हार, बर्फ, सफेद हाथी दाँत के चूर्ण की तरह स्वच्छ था। ये राजेन्द्रचन्द्रसूरि के सहपाठी थे। नवीन नाट्य रस के अवतार थे। नवीन सरस काव्य रचना के द्वारा पण्डितों के यश को लूटने वाले थे। ज्ञान-ध्यान की अधिकता में पूर्वाचार्यों से किसी भी तरह कम नहीं थे। सब विद्याओं के पारङ्गत थे। वाक्चातुर्य में बृहस्पति से भी विशिष्ट थे। देश में म्लेच्छों की प्रधानता होने पर भी हिन्दू राजा श्रेणिक, सम्प्रति कुमारपाल, आदि के समय की तरह उत्सव बड़ा चमत्कारी हुआ। उत्सव के दिनों में सोने चांदी के कड़े बाँटे गये। अन्न-वस्त्रादि देकर याचकों के मनोरथ पूरे किये गये। गाना-बजाना, खेल-तमाशे, राग-रंग खूब किये। चारण-भाट-बन्दिजनों ने नई-नई कवितायें सुनाकर अपने साहित्य-ज्ञान का परिचय दिया। बाहर से आने वाले साधर्मी भाइयों का अतिथि सत्कार अच्छी तरह से किया गया। इसके साथ संघ-पूजा भी की गई थी। इस उत्सव के कार्य को सानन्द समाप्त करके युगप्रवरागम श्रीजिनचन्द्रसूरि जी महाराज के आदेश रूपी महल पर एक प्रकार से सुवर्ण कलश चढ़ाया गया।

इस उत्सव में अपने सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले, उदार चरित्र सेठ तेजपाल ने चतुर्विध संघ के आगन्तुक सभी श्रावकों को सिरोपाव देकर सम्मानित किया था। अनेक गच्छों के सौ आचार्य और हजारों साधुओं को भी वस्त्र देकर प्रसन्न किया था। सब वाचनाचार्यों के भी मनोरथ पूरे किये थे। इस महोत्सव में प्रधान सेठ सामल के पुत्र, साधर्मिक-वत्सल, भीमपल्ली समुदाय के मुकुट तुल्य पुरुषसिंह सेठ वीरदेव श्रावक, श्रीमालकुलभूषण वांजल पुत्र सेठ राजसिंह, मन्त्रीदलीय राजमान्य-गुरु आज्ञा प्रतिपालक ठाकुर विजयसिंह, ठाकुर जैत्रसिंह, ठाकुर कुमरसिंह, ठाकुर जवनपाल, ठाकुर पाल्हा आदि मन्त्रीदलीय श्रावकों ने साह सुभट के पुत्र मोहन, धनू-ऊँका प्रमुख, जावालिपुर के साह गुणधर आदि, पाटण के साह तिहुण आदि, बीजापुर के ठाकुर पदमसिंह आदि, आशापल्ली के गोठी जैत्रसिंह आदि ने और खम्भात के समुदाय ने श्रीसंघ-पूजा, साधर्मिक वात्सल्य, भोजनदान आदि शुभ कार्य सम्पादन करके अपने द्रव्य का सदुपयोग किया। उस दिन मालारोपणादि नन्दि महोत्सव भी किया। इसके अतिरिक्त सारे श्रीसंघ ने श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के पाटमहोत्सव के उपलक्ष में श्री शांतिनाथ देव के आगे अधिक उत्साह पूर्वक आठ अठाई महोत्सव किये।

६२. इस प्रकार युगप्रधान राज्य को पाकर श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने महामिथ्यात्व रूप शत्रु के उच्चाटन के लिये दिग्विजय की कामना से भीमपल्ली जाने के लिये विहार किया। वीरदेव श्रावक ने अगुआ होकर श्रीपूज्यों का प्रवेश महोत्सव करवाया। महाराज ने प्रथम चातुर्मास भीमपल्ली में

ही किया। इसके बाद सं० १३७८ माघ सुदि तृतीया के दिन भीमपल्ली के सेठ वीरदेव आदि समुदाय ने बुलाये हुए श्री पाटण के श्रावक वृन्द के साथ सकलजन-मन-को चमत्कारी, दीक्षा—छहरीया, मालाग्रहण आदि नंदिमहोत्सव किया। इसके साथ ही साथ स्वधर्मिकवात्सल्य, श्रीसंघपूजा आदि अनेक प्रभावनाएँ भी कीं। उस महोत्सव में श्रीराजेन्द्रचन्द्राचार्य ने मालाग्रहण की। देवप्रभमुनि को दीक्षा दी। वाचनाचार्य हेमभूषणगणि को अभिषेक (उपाध्याय) पद दिया। पं० मुनिचन्द्रगणि को वाचनाचर्य पद प्रदान किया। उसी वर्ष अपने प्रतिज्ञात कार्य को पूर्ण करने में प्रवीण श्रीपूज्यजी ने अपने ज्ञान—ध्यान के बल से सकलगच्छ के हित साधन में सदैव उद्यत श्रीविवेकसमुद्रोपाध्यायजी की आयु समाप्ति जानकर भीमपल्ली से पाटण की ओर विहार किया। पाटण में जेठ वदि चतुर्दशी के दिन शरीर में कोई व्याधि न होने पर भी विवेकसमुद्रोपाध्यायजी को चतुर्विध संघ के साथ मिथ्या दुष्कृत दिलाया और अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक अनशन करवाया। तत्पश्चात् श्रीपूज्यजी के चरण-कमल का ध्यान करते हुये, पंचपरमेष्ठी नमस्काररूप महामंत्र का जप करते हुए, अनेक प्रकार की आराधनाओं का अमृतपान करते हुए विवेकसमुद्रोपाध्यायजी जेठ सुदि द्वितीया के दिन मानों देवगुरु—बृहस्पति को जीतने के लिये स्वर्ग पधार गये। पाटण के श्रावक—वृन्द ने उनके शव को श्मशान ले जाने के लिए सुन्दर-सा विमान बनाकर सब मनुष्यों के मन में चमत्कार पैदा करने वाला निर्वाण महोत्सव किया। इसके बाद श्रीपूज्यजी के उपदेश से श्रीसंघ ने विवेकसमुद्रोपाध्यायजी की स्मृति के लिए एक स्तूप बनवाया। आषाढ़ सुदि त्रयोदशी के दिन बड़े विस्तार से वासक्षेप किया। विवेकसमुद्रोपाध्यायजी ने समाज का बड़ा उपकार किया था। इन्होंने ही श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, दिवाकराचार्य, श्रीराजशेखराचार्य, वा० राजदर्शनगणि, वा० सर्वराजगणि आदि अनेक मुनि—महात्माओं को अनेक बार श्रीहेमव्याकरण बृहद्वृत्ति नामक ग्रंथ पढ़ाया था; जो छत्तीस हजार अनुष्टुप श्लोकों में है। इसके अतिरिक्त श्रीन्यायमहातर्क आदि समस्त शास्त्रों का अभ्यास भी उक्त मुनियों को इन्होंने ही करवाया था। इसके बाद वहां श्रीसंघ की ओर से की गई प्रार्थना स्वीकार कर पूज्य श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज ने दूसरा चातुर्मास भी पाटण में किया।

६३. वहां पर सं० १३७९ में मिगसिर वदि पंचमी के दिन शान्तिनाथ देव के विधिचैत्य की विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करवाई। इस प्रतिष्ठा महोत्सव में अनेक प्रान्तों से आकर अगणित नर—नारी सम्मिलित हुए थे। यह उत्सव दस दिन तक मनाया गया था। इसके खर्च का कुल भार श्री सेठ तेजपालजी ने उठाया था। सेठ के भाई रुद्रपाल ने भी इसमें काफी मदद दी थी। ये सेठ तेजपाल गुरु श्रीजिनप्रबोधसूरिजी महाराज के छोटे भाई जाल्हणजी के पुत्र थे। कई बातों को लेकर यह प्रतिष्ठा महोत्सव अभूतपूर्व था। इसमें अन्न—धन प्रचुर प्रमाण में बांटा गया था। बाहर से आये हुए साधर्मिक भाइयों की बड़ी आवभगत की गई थी। प्रतिष्ठा में कलशाभिषेक महोत्सव भी देखने ही योग्य हुआ था। इसी दिन सेठ तेजपाल आदि श्रावक समुदाय की ओर से ही शत्रुंजय नामक तीर्थ स्थान में

श्रीऋषभदेवजी महाराज के मंदिर की नींव डाली गई थी। उसी समय देव और गुरुओं की आज्ञा पालन में तत्पर साह नरसिंह के पुत्र खींवड़ श्रावक ने उद्यापन महोत्सव किया था। उस महोत्सव के समय श्रीशान्तिनाथ आदि तीर्थङ्करों की शिला, रत्न और पीतल आदि धातुओं की बनी हुई डेढ़ सौ प्रतिमाएं, दो मूल समवसरण और श्रीजिनचन्द्रसूरि, जिनरत्नसूरि आदि नाना अधिष्ठायकों की प्रतिमाएं श्रीपूज्यजी द्वारा स्थापित की गई। उस महोत्सव में श्रीमपल्ली के श्रावकों में प्रधान उदार-चरित्र सांवल नामक सेठ के पुत्र वीरदेव ने, श्री प त्त न, भीमपल्ली, आशापल्ली आदि नगरों के श्रावकों ने तथा सेठ सहजपाल के पुत्र स्थिरचन्द्र ने और सेठ धीणाजी के सुपुत्र खेतसिंह आदि वहाँ आये हुए श्रावकों ने श्रीसंघपूजा, साधर्मिक वात्सल्य और इन्द्रपद आदि महोत्सवों की रचना करके श्रीजिन-शासन को प्रभावित किया। इसके बाद श्री बी जा पु र के श्रावकों के अनुरोध से श्रीपूज्यजी श्रावक समुदाय के साथ बीजापुर आये। बड़ी धूमधाम से महाराज का नगर में प्रवेश कराया गया। वहाँ पर श्रीपूज्यजी ने श्रीवासु-पूज्य भगवान के महातीर्थ को नमस्कार किया। इसके बाद बीजापुर के श्रावकों को साथ लेकर श्री-पूज्यजी ने त्रि शृं ग म क नामक नगर की तरफ विहार किया। वहाँ पहुंचने पर शासन के प्रभाव को बढ़ाने वाले सेठ जेसलजी के सुपुत्र जगधर और लक्ष्मण नाम के दो श्रावकों ने हजारों मनुष्यों के साथ गाजे-बाजे से महाराज श्री का नगर प्रवेश करवाया। इसके पश्चात् श्रीपूज्यजी महाराज मंत्रि-दलीय कुल में उत्पन्न, देवगुरु की आज्ञा को मानने वाले, ठाकुर आसपाल के पुत्र, ठाकुर जगतसिंह आदि बीजापुरीय और त्रिशृंगमपुरीय श्रावक-वृन्द के साथ श्री आ रा स ण और ता रं गा नामक महातीर्थों में गये। वहां पर महाराज के सदुपदेश से साधर्मिक वात्सल्य, श्रीसंघ पूजा, दानशाला और महाध्वजारोपण आदि अनेक कार्य किये। वहां से आकर महाराज ने तीसरा चौमासा पाटण में किया।

सं० १३८० कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन पूज्यश्री महाराज ने सेठ तेजपाल तथा रुद्रपाल की ओर से शत्रुञ्जय पहाड़ पर बनाये गये भव्य विशाल मन्दिर में स्फटिक मणि की बनी हुई, कर्पूर जैसी धवल, सत्ताइस अंगुल प्रमाण वाली आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा की स्थापना की। धार्मिक कार्यों में सेठ तेजपाल ने बहुत नाम कमाया था। इनके दादा सेठ यशोधवल भी मारवाड़ के कल्पवृक्ष कहे जाते थे। पहले ही कहा जा चुका है कि सेठजी चन्द्रकुल प्रदीप श्रीजिन-प्रबोधसूरिजी महाराज के छोटे भाई जाल्हण नामक श्रावक के पुत्र थे। श्रीजिनकुशलसूरिजी के पाट महोत्सव के समय इन्होंने प्रचुर मात्रा में धन खर्च करके बड़ी कीर्ति पैदा की थी। इस प्रतिष्ठा महोत्सव में चारों तरफ निमन्त्रण-पत्र दे देकर स्वधर्मियों को बुलाया गया था। सभी आगन्तुक लोगों को मधुर मिष्टान्न-दान से सन्तुष्ट किया था। पर्याप्त मात्रा में धन बांटा गया था। अनेक प्रकार के नृत्य-नाटकों का आयोजन करके लोगों का मनोरंजन किया गया था। इस उत्सव में व्यापारी-व्यवहारी, राजा-रंक सभी सम्मिलित हुए थे। इस अवसर पर श्रीजिनप्रबोधसूरिजी, श्रीजिन-

चन्द्रसूरिजी तथा कपर्दयक्ष, क्षेत्रपाल, अम्बिका आदि की प्रतिमाएँ भी स्थापित की गईं थीं। इसके साथ ही शत्रुंजय पहाड़ के उच्चशिखर पर बने हुए उस विशाल मन्दिर के योग्य ही उस पर ध्वजदंड लगाया गया था। उस महोत्सव में साह वीनाजी के पुत्र खेतसिंह आदि सुश्रावकों ने इन्द्र पद, श्रीयुगादिदेव मुखोद्घाटन, मालाग्रहण आदि विविध धार्मिक कार्यों में खर्च करके अपने धन को सफल किया। इसके बाद मार्गशीर्ष कृष्णा षष्ठी के दिन मालारोपण, सम्यक्त्वारोपण, सामायिकारोपण परिग्रह परिमाण आदि नन्दि महामहोत्सव भी बड़े विस्तार से किया गया।

६४. इसके बाद विक्रम सं० १३८० में श्रीमालकुलोत्पन्न, गंगा प्रवाह की तरह निर्मल अंतःकरण वाले, श्रीजिनशासन को दिपाने में प्रवीण, श्रीफलवर्द्धिका महातीर्थ की विस्तार से यात्रा करने वाले, भारतविख्यात-दानी-महाभाग्यशाली, दिल्ली निवासी प्रसिद्ध सेठ श्रीहरूजी के पुत्र सुश्रावक सेठ रयपति ने दिल्लीपति बादशाह गयासुद्दीन तुगलक के दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त अपने पुत्र धर्मसिंह के द्वारा प्रधान मंत्री श्री नेब साहब की सहायता से इस आशय का एक शाही-फर्मान निकलवाया कि "श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज की अध्यक्षता में सेठ रयपति श्रावक का संघ श्रीशत्रुञ्जय, गिरिनार, आदि तीर्थयात्रा के निमित्त जहां-जहां जाय, वहां २ इसे सभी प्रांतीय सरकारें आवश्यक मदद दें और संघ की यात्रा में बाधा पहुंचाने वाले लोगों को दण्ड दिया जाय।" यह फर्मान सभी अमीर-उमरावों को आश्चर्य देने वाला था। उसके पश्चात् सेठ ने शत्रुञ्जय-गिरिनार आदि महातीर्थों की यात्रा करने के हेतु अपने आदमियों को भेजकर महाराज से प्रार्थना की।

महाराज ने सेठ के संदेश को सुनकर अच्छी तरह सोच समझकर तीर्थयात्रा का आदेश दे दिया। पूज्यश्री के आदेश को सुनकर सेठ रयपति बहुत प्रसन्न हुए और अपने पुत्र धर्मसिंह, मानसिंह, शिवराज, अभयचन्द्र के पौत्र भीष्म श्रावक के भ्राता सेठ जवणपाल आदि श्रावक-वृन्द के साथ सलाह करके पूज्यजी की आज्ञा के अनुसार दिल्ली निवासी श्रावकों में मुख्य मंत्रीदलीयकुलोत्पन्न सेठ जवणपाल, गुरुभक्त श्रीमाली भोजाजी, साह छीतम, ठ० फेरु तथा धा म इ ना ग्राम निवासी सा० रूपा, सा० बीजा, सा० पंचउली, सेठ खेमंधर; इसी प्रकार सु धी व ड़ी ग्राम के निवासी श्रावकों को इकट्ठा करके और दिल्ली के समीपवर्ती अन्य ग्रामवासियों को बुलाकर दिल्ली से विदा होने के समय का उत्सव मनाया। अपने पुत्र श्रेष्ठिवर्य धर्मसिंह के प्रयत्न से शाही सड़क से एक जुलूस निकाला गया। अनेक (बारह) प्रकार के बाजे बजाये गये, विरुदावलियें गाई गईं। रासड़े दिये गये। नगर रमणियों ने मांगलिक गीत गाये। दुःखी-भूखे लोगों को दान दिया गया। सरकारी आदमियों को सुवर्ण-भूषण, शाल-दुशाले तथा घोड़े इनाम स्वरूप दिये गये। प्रथम वैशाख वदि सप्तमी के दिन नवीन निर्मित प्रासाद के सदृश देवालय को साथ लेकर बड़े आरोह-समारोह के साथ समस्त श्रीसंघ ने दिल्ली से प्रस्थान किया। यात्रा के प्रथम दिन से ही सेठ रयपतिजी की ओर से अन्नक्षेत्र खोला गया;

जिसमें कोई भी व्यक्ति मनोवांछित भोजन पा सकता था। दिल्ली से चलकर श्रीसंघ कन्या नयन नामक नगर में पहुंचा। वहां पर युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज से प्रतिष्ठित 'श्रीमहावीर' तीर्थराज का अर्चन-वन्दन किया गया और जैनेतर लोगों के हृदयों में सम्यक्त्व-श्रद्धा पैदा करने वाली महान् शासन प्रभावना की गई। वहां से सेठ पूजा, सेठ पद्मा, सेठ राजा, सेठ रातू, ठा० देपाल, सेठ कालू, सेठ पूना आदि श्रावकों को तथा आशिका नगरी के सेठ देदा आदि श्रावक समुदाय को साथ लेकर संघ आगे को चला। इसके पश्चात् हर एक गांवों और नगरों में धर्म की प्रभावना करता हुआ सारा संघ नरभट नगर में पहुँचा। यहां पर श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज से प्रतिष्ठित श्रीनवफणा पार्श्वनाथजी को नमस्कार किया। वहाँ से साह भीमा, सा. देवराज आदि अच्छे-अच्छे श्रावक लोग संघ के साथ हो लिये। इसके बाद खाटू, नवहा, झूँझनू आदि गांवों व नगरों के रहने वाले सा. गोपाल, सा कान्हा आदि श्रावक लोग भी संघ के साथ चल पड़े। तत्पश्चात् जिनशासन की प्रभावना करने वाले सेठ रयपतिजी सारे संघ को साथ लिये हुए फलौदी (मारवाड़) पहुंचे। वहां पर श्रीपार्श्वनाथदेव की यात्रा के निमित्त बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। उस संघ में सम्मिलित होने के लिये संघपति की ओर से अनेक ग्रामों व नगरों को कुंकुम पत्र भेजे गये थे। आने वालों में कतिपय मुख्य-मुख्य सज्जनों के नामों का यहां उल्लेख किया जाता है। सेठ हरिपाल के पुत्र गोपाल, पासवीर के पुत्र नन्दन, हेमल के पुत्र कडुआ, पूर्णचन्द्र के पुत्र प्रभावशाली हरिपाल, पेथड़, बाहड, लाखण, सींचा, सामल, तथा कीकर आदि उचापुरी निवासी, वस्तुपाल देवराजपुर के, क्यासपुर आदि के मोहनदास आदि, मरुकोट्ट के ताल्हण आदि समग्र सिंध के अनेक ग्राम-नगरों के संघ तथा लखमसिंहादि नागोर प्रमुख के अनेकों समुदाय तथा मेडता के आंबा आदि एवं कोसवाणा के मंत्री केल्हा आदि श्रावक समुदायों के झुंड के झुंड इस संघ में शामिल हुए। वहां से चलकर मार्ग में गुडहा निवासी श्रावक सा. मेलू आदि समुदाय को साथ लेकर सारा संघ जालौर पहुंचा। वहां पर नगर प्रवेश के समय सरकारी और गैर सरकारी सभी लोगों ने संघ का स्वागत किया। वहां पर विपक्षियों के हृदय में कील की तरह चुभने वाली चैत्य परिपाटी आदि महती प्रभावना श्रीसंघ ने की। वहां से सोह महिराज और कोरन्टक गांव के रहने वाले गांगा आदि श्रावक लोग भी संघ के साथ तीर्थयात्रा के लिये चल पड़े। इसके पश्चात् संघ ने श्रीमाल नगर में श्रीशांतिनाथजी की और भीमपल्ली एवं वायड़ गांव में विशेष समारोह के साथ श्रीमहावीरदेव की अर्चा-पूजा की। वहां से चलकर सार संघ ज्येष्ठ वदि चतुर्दशी के दिन गुजरात के प्रधान नगर पाटण में पहुँचा। यह स्थान मुसलमानों से भर पूर था, महाराजाधिराज की सेना की तरह विशाल संघ योग्य स्थान में उतरा। बाद में संघपति सेठ रयपति एवं महणसिंह आदि अनेक ग्रामों से आये हुए लोगों ने जैनागमों में वर्णित महाराजाधिराज दशार्णभद्र की तरह

श्रद्धा के साथ स्थावर तीर्थ श्रीशांतिनाथ व जंगमतीर्थरूप युगप्रधान श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के चरणों में विधिपूर्वक वन्दना की। श्रीशांतिनाथ भगवान् के चैत्य में संघ ने अट्ठाई महोत्सव किया। इसके बाद श्रीसंघ ने पाटण के तमाम मन्दिरों में बड़े विस्तार के साथ चैत्यपरिपाटी की। इस समय के उत्सव को देखकर सभी लोग आश्चर्य चकित हो रहे थे और अन्य धर्मी भी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे थे जो कि सम्यक्त्व प्राप्ति का साधन था।

६४. इसके बाद सकल संघ के मुकुट तुल्य सेठ रयपति एवं समग्र संघ के भार को निभाने में प्रवीण साह महणसिंह, गोपाल, जयणपाल, कालू, हरिपाल आदि देशान्तरीय श्रावक समुदाय ने और पत्तन निवासी साधुराज आल्हण के कुल के दीपक, आचार्य जिनकुशलसूरिजी म. के पद स्थापनोत्सवादि अनेक पुण्यकार्यों को करने वाले तेजपाल एवं श्रीमालकुलभूषण छज्जल के कुल में मुकुटमणि तुल्य सेठ रयपति के संघ के पृष्ठरक्षक पदधारक राजसिंह, श्रीपति के पुत्र कुलचन्द्र तथा धीणाजी के पुत्र सेठ गोसल आदि हम्मीरपुर तथा पाटण निवासी मुख्य श्रावकों ने धर्मचक्रवर्ति श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज से विज्ञप्ति की कि 'हे स्वामिन्'! यद्यपि वर्षा ऋतु निकट आगई है। फिर भी समस्त श्रीसंघ के उपर महान् कृपा कर के अनेकों उपद्रवादि महासुभटों के बल वाले एवं दुष्ट स्वभावी कलिकाल कृत अनेकों आपत्तियों से संघ की रक्षा करने के लिये आप प्रसन्न होकर तीर्थ की विजय यात्रा में संघ के साथ पधारिये जिससे संघ के मनोरथ पूर्ण हों। इस प्रकार संघ समस्त की विज्ञप्ति को सुनकर दाक्षिण्यता के समुद्र श्रीआर्यसुहस्तिसूरि, श्रीवज्रस्वामी, श्रीअभयदेवसूरि, श्रीजिनदत्तसूरि आदि अनेकों युग प्रधानाचार्यों के चरित्र तुल्य चारित्र से जिन्होंने विशद कीर्ति उपार्जन की है ऐसे आ० श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने आवश्यकादि शास्त्रकारों का कथन ध्यान में रखकर संघ को स्वीकृति दी। कहा भी है:—

"जो अवमन्नइ संघं, पावो थोवं पि माणमयलित्तो।
सो अप्पाणं बोलइ, दुक्खमहासागरे भीमे ॥ १ ॥"

[जो पापी मनुष्य मान-मद में लिप्त होकर श्रीसंघ का थोड़ा भी अनादर करता है, वह अपनी आत्मा को भयंकर दुःख के समुद्र में डुबाता है।]

"सिरिसमणसंघआसा-यणाओ पाविंति जं दुहं जीवा।
तं साहिउं समत्थो जइ परि भयवं जणो होइ ॥ २ ॥"

[श्री श्रमण संघ की अवज्ञा-आशातना से नाना प्रकार के जिन दुःखों को जीव पाते हैं। उनको कहने में वही समर्थ हो सकता है जो संपूर्ण ज्ञानी केवली हो।]

तित्थपणामं काउं, कहेइ साहारणेण सद्देणं।
सव्वेसिं सन्नीणं, जोयणनीहारिणा भयवं ॥ ३ ॥

[योजनों तक दृष्टि से देखने की अपूर्व शक्ति रखने वाले भगवान् ने साधारण शब्दों में सभी सम्बन्धी प्राणियों को यह आज्ञा दी है कि सदा सर्वदा तीर्थ (संघ) को प्रणाम करो।]

तप्पुव्विया अरहया पूइयपूया य विणयकम्मं च।
कयकिच्चोऽपि जह कह कहेइ नमए तहा तित्थं॥

[कृतकृत्य एवं जगत्पूज्य अरिहन्तों ने श्रीसंघ के सामने विनय किया और इसकी पूजा की है। भगवान् ने जगह-जगह "नमए तहा तित्थं" अर्थात् इसलिये तीर्थ को नमस्कार है। ऐसा बार-बार कहा है। इस कथन को अन्यथा कौन कर सकता है।]

"यः संसारनिरासलालसमतिर्मुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते,
यं तीर्थं कथयन्ति पावनतया येनास्ति नान्यः समः।
यस्मै तीर्थपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते,
स्फूर्तिर्यस्य परा वसन्ति च गुणा यस्मिन् स संघोऽर्च्यताम्॥

[जो संघ संसार के जंजाल को हटाकर मुक्ति के लिये चेष्टा करता है, विद्वान् लोग जिसको पवित्र तीर्थ कहते हैं। जिसके समान दूसरा कोई भी नहीं है। जिसको भगवान तीर्थङ्कर भी नमस्कार करते हैं। जिससे सत्पुरुषों को शुभ की प्राप्ति होती है। जिसमें अपूर्व स्फूर्ति है, जिसके गुण उत्कृष्ट हैं, उस संघ की पूजा करो।]

लक्ष्मीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसात् कीर्तिस्तमालिङ्गति,
प्रीतिस्तं भजते मतिः प्रयतते तं लब्धुमुत्कण्ठया।
स्वःश्रीस्तं परिरब्धुमिच्छति मुहुर्मुक्तिस्तमालोकते,
यः संघं गुणसंघकेलिसदनं श्रेयोरुचिः सेवते॥

[कल्याणाभिलाषी जो मनुष्य तन, मन, धन से संघ की सेवा करता है, लक्ष्मी स्वयं उसके पास चली आती है। कीर्ति शीघ्रता से उस पुरुष का आलिंगन करती है। सब कोई उससे प्रेम करने लगते हैं। बुद्धि बेचारी बड़े चाव से उस पुरुष को पाने की कोशिश करती है। स्वर्गीय लक्ष्मी उस पुरुष से आलिंगन करना चाहती है। मुक्ति उसकी प्रतीक्षा करती रहती है।]

इत्यादि वाक्यों से विदित होता है कि श्रीसंघ तीर्थङ्करों के भी मान्य है; तो फिर हम जैसों की तो बात ही क्या ? श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने अपने मन में विचार कर आसन्नवर्ती चातुर्मास की भी पर्वाह न करके और श्रीसंघ का प्रबल आग्रह जानकर ज्येष्ठ सुदि षष्ठी के दिन शुभ मुहूर्त में अपने गुरु श्रीजिनचंद्रसूरिजी महाराज का ध्यान करते हुए मानों कलिराज को जीतने के लिये और अपना कार्य सिद्ध करने के लिये गाजे-बाजे के साथ, बड़े ठाठ-बाट से सारे दल-बल को लेकर तीर्थ-यात्रा को चले। इस यात्रा में महाराज के साथ सेवा करने के लिये सतरह साधु और प्रवर्तिनी महत्तरा, पुण्यसुन्दरी गणिनी आदि उन्नीस साध्वियाँ थीं। इस यात्रा में चतुर्विध संघ सेना थी और सेठ रयपतिजी सेनानायक थे तथा सेठ राजसिंह सेनानायक के पृष्ठरक्षक थे। साह महणसिंह, साह जवणपाल, साह मोजा, साह काला, ठाकुर फेरू, ठा० देपाल, श्रेष्ठी गोपाल, साधुराज तेजपाल, हरिपाल, सा० मोहण, सा० गोसल आदि महर्धिक श्रावक लोग इस सेना में महारथी प्रबल योद्धा थे। इनके साथ पाँच सौ गाड़े, सौ घोड़े तथा अगणित प्यादे थे। घोड़ों पर कसे हुए नगाड़े, ढोल, मारू, बाजे बजाये जा रहे थे। खान-पान के लिये भोजनालय खोल दिया गया था। चलती हुई संघ-सेना की धुलि से अँधेरा छा रहा था। शीघ्र ही दीक्षा लेने वाले क्षुल्लकों को बहुमूल्य भोजन, वस्त्र दिये जा रहे थे। मार्ग में आने वाले प्रत्येक नगर व ग्राम में हिन्दू, मुसलमान आदि सभी जाति के लोग श्रीसंघ का आदर-सम्मान करते थे। श्रीसंघ ने शंखेश्वर नामक नगर में पहुंच कर, श्रीपार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार कर ध्वजारोपणादि कार्यों से धर्म-प्रभावना करके आगे का मार्ग लिया। क्रम से दण्डकारण्य के समान वालाक प्रान्त को पार करके संघ मुस्लिम नवाबों की सहायता से बिना किसी विघ्न-बाधा के शत्रुंजय पहाड़ की तलहटी में पहुंचा।

वहां पर श्रीपार्श्वनाथ भगवान् के दर्शन करके आषाढ़ बदि छठ के दिन सकल तीर्थों में प्रधान, सर्वातिशयों के निधान, श्रीशत्रुञ्जय पर्वत के अलंकार श्रीऋषभदेव भगवान् की संघ सहित श्रीपूज्यजी ने अपने बनाये हुए अलंकार पूर्ण सुन्दर-स्तोत्रों से स्तुति की। स्त्री-पुत्रों सहित संघपति रयपति श्रावक ने सबसे पहिले सोने की मुहरों से नवांगी पूजा की। इसी प्रकार अन्य धनी-मानी श्रावकों ने भी रुपये व टंकों से नव अङ्गों की पूजा की। उस दिन भगवान् युगादिदेव के समक्ष देवभद्र और यशोभद्र नामक क्षुल्लकों की दीक्षा का महोत्सव बड़े आडम्बर से किया गया।

इसके बाद जिनशासन की प्रभावना करने में प्रवीण, श्रीदेवगुरु की आज्ञा-पालन में तत्पर श्रीरयपति सेठ के संघ के पृष्ठरक्षक, निरन्तर अन्नदान करने से यश को उपार्जित करने वाले, चतुर्विध बुद्धि के अतिशय से महाराजा श्रेणिक के मन्त्री अभयकुमार के समान, काठियावाड़ नरेश महीपालदेव की देहान्तरसमान, संघकार्य संचालन में दक्ष, प्रभावी सेठ मोखदेव के कनिष्ठ भ्राता सहित, श्रीमालकुलभूषण सेठ झाबल के वंश में दीपक के समान सेठ राजसिंह श्रावक

ने आषाढ़ वदि सप्तमी और अष्टमी के दिन जलयात्रा-निर्माण-पूर्वक श्रीऋषभदेव भगवान के मन्दिर में श्रीनेमिनाथ आदि अनेक मूर्तियों का प्रतिष्ठा महोत्सव समग्र-लब्धि-निधान जंगम युग-प्रधान श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के हाथ से करवाया। उत्सव में बारह प्रकार के बाजे बजवाये गये। समस्त स्वधर्मियों की बड़ी सेवा की गई। समस्त प्राणियों को मिष्टान्न-पान देकर सन्तुष्ट किया गया। स्वर्ण-वस्त्र-भूषण-घोड़े आदि बांटे गये। इस अवसर पर श्रीजिनपतिसूरि, श्रीजिनेश्वरसूरि आदि गुरुमूर्तियों की प्रतिष्ठा की गई थी। लोगों का कहना है कि अपने शिष्य की लब्धि से प्रसन्न होकर श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज भी स्वर्ग से इस महोत्सव को देखने आये थे। उसी दिन से सेठ आल्हण के कुल में दीपक के समान, धर्म कार्यों से महावीर स्वामी के श्रावक आनन्द-कामदेवादिक का अनुकरण करने वाले, दान से याचकों का मनोरथ पूरा करने वाले सेठ तेजपाल ने अपने छोटे भाई रुद्रपाल के साथ पत्तन में प्रतिष्ठित मूलनायक युगादिदेव भगवान् की प्रतिमा के लिये संघ की सम्मति से बनवाये गये मन्दिर की प्रतिष्ठा और मूर्त्ति के साथ स्वर्ण-शृङ्खलामय हाथों वाली अम्बिका मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की। नाना स्थानों से आये हुए श्रे० रयपति आदि श्रावक संघ के समक्ष सुवर्ण, भूषण, वस्त्र, रेशमी वस्त्र आदि उपयुक्त वस्तुओं द्वारा मन्दिर के बनवाने वाले कारीगरों का सम्मान किया। वज्रस्वामी का अनुकरण करने वाले श्रीपूज्यजी के हाथ से नवमी के दिन उक्त कार्य सम्पादन किया गया था। वहीं पर युगादिदेव के मन्दिर में माला-रोपण, सम्यक्त्वधारण, परिग्रह परिमाण, सामायिक-व्रत धारण और नंदि महोत्सव भी किये गए। वहां पर सुखकीर्त्तिगणि को वाचनाचार्य पद प्रदान किया गया और हजारों श्रावक-श्राविकाओं ने मंत्रारोपण किया और उसी दिन नये बनाये हुए मन्दिर पर ध्वजारोहण का कार्य भी विस्तार से किया। इस प्रकार शत्रुञ्जय पहाड़ पर दस दिन तक बड़ी चहल-पहल रही। श्रीमालकुल में उत्पन्न होने वाले, श्रीहरु सेठ के वंश की कीर्ति फैलाने वाले रयपति, महणसिंह, तेजपाल, राजसिंह आदि संघ के प्रधान-प्रधान श्रावकों ने मूल मन्दिर और अपने मन्दिर में अनेक पूजायें पढ़वाईं; नाना प्रकार के रेशमी वस्त्र भगवान् के भेंट चढ़ाये। मन्दिरों पर ध्वजदण्ड का आरोपण किया। सुवर्ण, अन्न, वस्त्र के दान से याचक वर्ग को सन्तुष्ट किया। श्रीसंघ के दिल्ली से प्रस्थान करने समय से अब तक किये जाने वाले विविध वस्तुओं के दान से कल्पवृक्ष को भी लज्जित होना पड़ा है। इस अवसर पर उच्चापुरी निवासी रोहंड (? रोहड गो०) हेमल के पुत्र कडुया श्रावक ने जिनशासन प्रभावक अपने भतीजे हरिपाल के साथ दो हजार छः सौ चोहत्तर रुपयों में इन्द्रपद प्राप्त किया और सेठ धीणाजी के पुत्र गोसल ने छः सौ रुपयों में मन्त्रीपद ग्रहण किया। इसी प्रकार अन्य श्रावक-श्राविकाओं ने इन्द्रपरिवार योग्य अन्य पदों को ग्रहण किया। प्रतिष्ठा, उद्यापन, इन्द्रपद महोत्सव, कलशमयवन्दनादि द्वारा ऋषभदेव भगवान् के भण्डार में पचास हजार रुपयों का संग्रह हुआ।

६६. इसके बाद श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज सारे संघ को साथ लेकर पुनः पहाड़ की तलहटी में आगये। यद्यपि वर्षा ऋतु निकट आगई थी, ऊबड़–खाबड़ मार्ग में लुटेरों का भय था। काठियावाड़ की जमीन पथरीली थी; तथापि वहां से लौटते समय मार्ग में किसी प्रकार की विघ्न–बाधा उपस्थित नहीं हुई थी। यह मेघकुमारदेव की कृपा का प्रभाव है। संघ के प्रधान सेठ रयपतिजी का प्रभाव भी बड़ी मदद पहुँचा रहा था, उनके प्रभाव में आकर उपद्रवकारी अनेक म्लेच्छ मार्ग में अनुगामी एवं आज्ञाकारी बन गये थे। चतुर्विध–संघरूपी सेना को साथ लिये हुए धर्म चक्रवर्ती श्रीपूज्यजी महाराज पाटण आदि नगरों के राजमार्गों की तरह उस मार्ग में चलते हुए सुखपूर्वक सौराष्ट्र देश के अलङ्कार भूत खंगारगढ़ पहुंचे। वहां पर सरकारी, गैर सरकारी सभी लोगों ने सम्मुख आकर संघ का सम्मान किया और गिरनार पहाड़ की तलहटी में संघ का डेरा लगवाया।

वहां पर स्वपक्षीय–परपक्षीय लोगों के चित्त में चमत्कार उत्पन्न करने वाली चैत्य परिपाटी को संघ के साथ विधिपूर्वक सम्पन्न करके पूज्यश्री ने आषाढ़ की चतुर्दशी के दिन आबाल–ब्रह्मचारी, राज्य एवं राजीमती का परित्याग करने वाले, श्रीउज्जयन्ताचल महातीर्थ के अलङ्कारभूत श्रीनेमिनाथ स्वामी को अपने नये बनाये हुए स्तुति–स्तोत्रों से नमस्कार किया। संघ के अध्यक्ष रयपति आदि प्रमुख श्रावकों ने शत्रुञ्जय तीर्थ की तरह यहां भी सुवर्ण की मुहरों और स्वर्ण–टंकों से नवांगी पूजा की और उसी दिन मंगलपुर का रहने वाला, उदार चरित्र, प्रभावी सेठ जगतसिंह का पुत्र जयता श्रावक भी अनेक अभिग्रह लेकर वन्दना करने को वहां आया। खंगारगढ़ निवासी, सम्पत्तिशाली रीहड़ झांझण, रीहड़ रत्नपुत्र मोखा आदि श्रावक–श्राविकाओं ने सम्यक्त्वधारण, सामायिका-रोपण, परिग्रह परिमाण आदि नंदि महोत्सव किया और सेठ रयपति आदि संघ के प्रमुख श्रावकों ने शत्रुञ्जय महातीर्थ की तरह यहां भी चार दिन तक बड़े भक्ति भाव से महापूजा, ध्वजारोपणादि महोत्सव किया। हमीरपुर के रहने वाले सेठ धीणाजी के पुत्र गोसल श्रावक ने २४७६ रुपये भेंट चढ़ाकर इन्द्रपद ग्रहण किया और काला श्रावक के पुत्र बीजा श्रावक ने आठ सौ मुद्रा अर्पण करके मन्त्री पद लिया। सारी संख्या मिलाकर श्रीनेमिनाथदेव के भंडार में चालीस हजार रुपये जमा हुए।

पहाड़ पर पूजा समाप्त करके संघ के साथ श्रीपूज्यजी तलहटी में आये। वहां पर नाना प्रकार के धार्मिक उत्सवों के करने से प्रबल प्रचंड कलिकाल की जड़ उखाड़ने में तत्पर अपने स्वामी श्रीपूज्यजी को देखकर, अपने दानातिशय से चिंतामणी–कामधेनु–कल्पवृक्ष को भी मात करने वाले, परमयशस्वी, समस्त श्रावक वृन्द शिरोमणिभूत रयपति सेठ ने महणसिंह आदि अपने पुत्रों के साथ श्रीपूज्यजी की कीर्ति फैलाने के लिये तीन दिन तक बराबर रात–दिन विविध प्रकार के स्वधर्मीपूर्वक,

बढ़िया से बढ़िया रेशमी वस्त्रादि उत्तमोत्तम वस्तुओं का दान देकर समग्र सौराष्ट्र देश में रहने वाले अगणित याचकों को सन्तुष्ट किया। राजसिंह, हरिपाल, तेजपाल आदि अन्य श्रावकों ने भी यथेच्छा मिष्टान्न-पानादि प्रदान कर याचक वर्ग को हर्षित किया।

९७. अपने संकल्पित कार्य का विधि पूर्वक संपादन करने वाले, युगप्रवरागम श्रीजिनचन्द्र-सूरिजी तथा अम्बिका आदि देवी-देवताओं की सहायता से युक्त, व्याकरण, न्याय, साहित्य, अलंकार, नाटक, ज्योतिष, मंत्र, तंत्र और छन्द शास्त्र के परम ज्ञाता, तुरगपद, कोष्ठक-पूरण आदि शब्दालंकार और जटिल समस्या-पूर्तियों से बड़े-बड़े विद्वानों का मनोरंजन करने वाले, निर्धन-असहाय-दीन-हीन गरीबों को धन प्राप्ति का उपाय बताने से चन्द्रज्योत्सना समान उज्ज्वल कीर्ति का उपार्जन करने वाले, गुरुओं में चक्रवर्ती के समान युगप्रधान श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज इस प्रकार तीर्थ-यात्रा से अपने जन्म को सफल बनाकर श्रावण शुक्ला त्रयोदशी के दिन निर्विघ्नता पूर्वक संघ के साथ गुजरात के प्रधान नगर पाटण नगर में आ पहुंचे। इस संघ में संघपति श्री रयपति आदि धनी-मानी श्रावकों ने अनेक प्रकार के अभिग्रह लिये। शासनदेव की कृपा से सभी के अभिग्रह पूर्ण हुए। वर्षा ऋतु आ जाने के कारण अति सुगमता से दुर्गम सौराष्ट्र देश को राजमार्ग की भांति तय करके संघ पाटण पहुंचा। मार्ग में स्थान स्थान पर संघ का बड़ा सम्मान हुआ। श्रीपूज्यजी सहित सारा संघ १५ दिन पाटण के बाहर बगीचे में ठहरा।

इसके बाद भादवा वदि एकादशी के दिन सोचे हुए काम को सिद्ध करने में समर्थ श्रे० रयपति, महणसिंह, तेजपाल और राजसिंह आदि श्रावकों के प्रयत्न से श्रीपूज्यजी का पाटण प्रवेश राम के अयोध्या प्रवेश की तरह अभूतपूर्व हुआ। इस प्रवेश महोत्सव में देश-देशान्तरों से आने वाला समस्त श्रावक वृन्द सम्मिलित था। इसी प्रकार स्वपक्षीय तथा परपक्षीय सभी स्थानीय महाजन लोगों ने इसमें योगदान दिया था। दान दिये गये; गान-वाद्य, खेल-तमाशे किये गये। घोड़ों की पीठ पर कसकर नगारे बजाये गये। यह उत्सव राजा-प्रजा सभी के चित्तों में चमत्कार पैदा करने वाला हुआ। इससे दुर्जनों के हृदय में उद्वेग हुआ और सज्जनों के हृदय में आमोद। अधिक क्या कहें, यह उत्सव सब तरह से वर्णनातीत हुआ।

९८. इसके बाद सेठ रयपतिजी ने दूसरी बार पाटण के याचकों को सन्तुष्ट करके श्रीपूज्यजी के चरण-रज को मस्तक पर धारण कर, उनकी आज्ञा से सकल संघ के साथ दिल्ली जाने के लिये प्रस्थान किया। स्थान-स्थान पर प्रभावना करता हुआ श्रीसंघ युगप्रवरागम श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज की निर्वाण भूमि 'श्रीकोशवाणा' नामक नगर में पहुंचा।

वहाँ पर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज के स्तूप पर ध्वजा चढ़ाई और महापूजा करके बड़ा उत्सव मनाया। मिष्ठान्न-वितरण और कनक-तुरगादि दान से जिनशासन को प्रभावित

किया। फिर वहां से चलकर फलोदी पहुंचे। वहाँ पर वस्त्रादि दान-सम्मान से सम्मानित कर देश-देशान्तरों से आकर संघ में सम्मिलित होने वाले श्रावकों को अपने-अपने घरों की ओर विदा किया। इसके बाद सेठ रयपतिजी जिस मार्ग से आये थे, उसी मार्ग से होकर कार्तिक वदि चतुर्थी के दिन यवनों की राजधानी दिल्ली पहुँचे। राजकीय प्रतिष्ठा पाये हुए सेठजी के सुपुत्र साधु राजसिंह ने निर्गमन महोत्सव से भी अधिक प्रवेश महोत्सव करवाया।

६६. इसके बाद विक्रम संवत् १३८१ वैशाख वदि पंचमी के दिन श्रीपूज्य जिनकुशलसूरिजी महाराज ने पाटण नगर में एक बड़ा भारी विराट् प्रतिष्ठा-महोत्सव करवाया। यह उत्सव शांतिनाथ भगवान् के विधिचैत्य में सम्पन्न किया गया था। इसमें सम्मिलित होने वाले अनेक प्रांतों से आये हुए मुख्य श्रावकों के नाम ये हैं—दिल्ली निवासी श्रीमालकुलोत्पन्न साह रुद्रपाल, सा० नींबा, जालौर के मंत्री भोजराज के पुत्र मन्त्री सलखणसिंह, रंगाचार्य, लखमा, सत्यपुर से समागत मन्त्री मलयसिंह, भीमपल्ली के सेठ वीरदेव, खंभात से आये हुये व्यवहारी छाड़ा, श्रीघोघा वेलाकुल से समागत सा० देपाल, मन्त्री कुमर, साह खीमड़; उत्सव के कार्यों में विशेष भाग लेकर पुण्य कमाने वाले सेठ जाल्हण के पुत्र तेजपाल और रुद्रपाल, श्री श्रीमाली सा० आना, साह राजसिंह, भणशाली लूणा, साह खेमसिंह, साह देवराज, भणशाली पद्मा, मम्मा आदि श्रावकों ने पन्द्रह दिन तक संघ का सत्कार किया। गरीबों को द्रव्य बांटा, खेल-तमाशे, नृत्य-गान करवाये। दुःखी व भूखों के लिये अन्नक्षेत्र खोले। साधर्मी वात्सल्य किया। दीक्षा के लिये वैराग्य धारण करने वाले क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं को नाना प्रकार की उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण सामग्री दी गई। चतुर्थी के दिन बड़ी धूम-धाम से जलयात्रोत्सव एवं प्रतिष्ठा महामहोत्सव किया गया। इस उत्सव से लोगों के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ।

प्रतिष्ठा कराने वाले श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज बड़े लब्धिधारी, श्रीगौतमस्वामी और श्रीवज्रस्वामी आदि अनेक पूर्वधर आचार्यों के समान थे। स्वर्गीय गुरु श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज अहर्निश उनकी सहायता करते थे। जिन-जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई उनके नाम ये हैं—

जावालिपुर योग्य श्रीमहावीर प्रतिमा, देवराजपुर योग्य श्रीयुगादिदेव प्रतिमा, श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ में स्थित बूल्हावसही मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने के लिये छज्जल के पुत्र राजसिंह और मोखदेव श्रावक द्वारा बनाई हुई श्रेयांसनाथ आदि अनेक तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ। इसी प्रकार लूणा श्रावक से बनवाई हुई अष्टापद योग्य चौबीस भगवानों की प्रतिमायें प्रतिष्ठित की गईं। इनमें ढाई सौ मूर्तियां पाषाण की थीं और पीतल की मूर्तियां अगणित थीं। इनके अतिरिक्त उच्चापुरी के योग्य श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज की प्रतिमा, जावालिपुर और श्रीपाटण के योग्य जिनप्रबोधसूरिजी की प्रतिमा, श्री देवराजपुर के योग्य जिनचन्द्रसूरिजी की मूर्ति और अम्बिका आदि अधिष्ठात्री देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित की गईं। इसी प्रकार अपने भण्डार के योग्य समवसरण की

प्रतिष्ठा की। इसके पश्चात् षष्ठी के दिन व्रत-ग्रहण, बड़ी दीक्षा, माला-धारण आदि नंदि-महोत्सव अति विस्तार से किया। उसी महोत्सव में देवभद्र, यशोभद्र नामक क्षुल्लकों को बड़ी दीक्षा दी गई। सुमतिसार, उदयसार, जयसार नामक क्षुल्लकों और धर्मसुन्दरी, चारित्रसुन्दरी नामक क्षुल्लिकाओं को दीक्षा धारण करवाई। जयधर्मगणि को उपाध्याय पद दिया गया और उनका नाम जयधर्मोपाध्याय ही रखा गया। अनेकों साध्वियों तथा श्राविकाओं ने माला ग्रहण की और श्रावक-श्राविकाओं ने सम्यक्त्व धारण, सामायिक ग्रहण तथा श्रावक के बारह व्रतों को धारण किया।

इसके बाद तीर्थयात्रा की इच्छा रखने वाले सेठ श्रीमान् वीरदेव आदि भीमपल्ली के श्रावकों की प्रार्थना से श्रीपूज्यजी ने भीमपल्ली नगरी में सेठ वीरदेव निर्मित बड़े भारी समारोह से वैशाख वदि त्रयोदशी के दिन प्रवेश करके श्रीमहावीर भगवान् को विधिपूर्वक वन्दन किया।

१०० सूरिमहाराज के भीमपल्ली में पधारे बाद उसी वर्ष सा. मालदेव एवं सा. कुलमसिंह से परिवृत सेठ वीरदेवजी ने दिल्लीपति गयासुद्दीन के यहां से तीर्थयात्रा का फरमान निकलवा कर अन्य श्रावकों के साथ समस्त अतिशयों के निधान और अपने उदार चरित्र से गणधर भगवान गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी, जंबूस्वामी, स्थूलभद्र, श्रीआर्यमहागिरि, श्रीवज्रस्वामी और जिनदत्तसूरिजी आदि युगप्रधानों की याद दिलाने वाले युगप्रवर श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज से यात्रा के लिये अत्याग्रह युक्त गाढ़ प्रार्थना की। श्रावक वीरदेव जिनशासन को दिपाने वाला था। अपने-पराये सभी लोगों के कार्यों में सहयोग देने वाला था। भीमपल्ली के श्रावकों में तो मुकुटमणि के समान था। अपने २ उज्ज्वल कर्त्तव्यों से सेठ खींवड़, सा. अभयचन्द्र, सा. साढल, सा. धणपाल, सा. सामल आदि निज पूर्वजों से भी वह खूब आगे बढ़ा हुआ था। इसके चरित्र बड़े उदार थे। कठिनातिकठिन अभिग्रहों के निभाने में प्रवीण था। पूज्यश्री के प्रार्थना स्वीकार करने पर सेठ तेजपाल ने गांवों और नगरों में निमन्त्रण-पत्र भेजकर स्वधर्मी समुदाय को एकत्रित किया।

तत्पश्चात् सूरिचक्रवर्ति श्रीजिनचंद्रसूरिजी महाराज के शिष्यों में चूड़ामणि के सदृश श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज अपने ज्ञान-ध्यान के बल से यात्राविषयक पूर्वापर निराबाधतादि को सोच-समझकर जेठ वदि पंचमी के दिन श्रीसंघ के साथ तीर्थ नमस्कार के लिये भीमपल्ली से चल पड़े। महाराज ने प्रस्थान करने से पूर्व सेठ वीरदेव को संघपति का पद दिया और जिनशासन के अनन्य प्रभावक पूर्णपाल तथा सूँढा नामक भ्राताओं के साथ, राजदेव सेठ के पुत्र झांझा श्रावक को संघ के पृष्ठरक्षक पद पर नियुक्त किया। पुण्यकीर्तिगणि, सुखकीर्तिगणि आदि बारह साधुओं और प्रवर्तिनी पुण्यसुन्दरी आदि साध्वियों को साथ लेकर वीरदेव श्रावक द्वारा बनवाये हुए कृतयुगावतार महारथ के समान मन्दिर में बड़ी प्रभावना के साथ जिनचौबीसी के पट्ट को स्थापित करके तीनसौ गाड़े, अनेक घोड़े, अनेक ऊंठ और विविध स्थानों से आये हुए श्रीसंघ के साथ निष्क्रमण

महोत्सव पूर्वक वहां से प्रस्थान किया। यद्यपि चातुर्मास समीप आरहा था, परन्तु श्रीपूज्यजी श्रीसंघ की प्रबल प्रार्थना को ठुकरा नहीं सके। क्योंकि श्रीसंघ तीर्थंकरों के भी आदरणीय है।

वहां से चलने के बाद मार्ग में जगह-जगह अनेक उत्सवों का मनाता हुआ श्रीसंघ वा य डा नगर में पहुंचा। वहां पर श्रीमहावीर भगवान् की पूजा-वन्दना करके बड़ी धूम-धाम से से रि सा नगर में प्रवेश किया। वहां दो दिन ठहर कर पार्श्वनाथ भगवान् की पूजा की और वहां अन्न-धन बाँटा गया तथा भगवान के मन्दिर पर ध्वजा चढाई गई। वहां से चलकर शिरखिज में संघसह पूज्यश्री पहुंचे, वहां पर जंगम (चलते हुए) मंदिर के समान जिनालय के साथ महोत्सव से प्रवेश किया। वहां से आ शा प ल्ली नगर नजदीक था, इसलिये वहां के श्रावक महणपाल, व्यव० मंडलिक, सा० वयजल आदि संघ की प्रार्थना मानकर श्रीपूज्यजी संघ सहित आ शा प ल्ली गये। स्थानीय श्रावकों के भगीरथ प्रयत्न से समारोह पूर्वक नगर प्रवेश कर श्रीऋषभदेव भगवान् के दर्शन-स्पर्शन-पूजन-वन्दन विधिपूर्वक किये। वहां पर बड़े विस्तार से मालारोपणादि महा उत्सव मनाया गया।

इसके बाद सम्पूर्ण संघ के साथ पूज्य श्री गुजरात देश के अलंकार समान श्रीस्तम्भन पार्श्वनाथस्वामी के दर्शन-यात्रा के लिये खम्भात की ओर चले। मार्ग में आने वाले अनेक ग्राम और नगरों में उत्तम मंदिर के समान देवालय के महोत्सवों को करता हुआ श्रीसंघ बड़े आनन्द के साथ खंभाततीर्थ पहुंचा।

१०१. वहां पर अतिशयशाली युगप्रवरागम आर्य सुहस्तिसूरि के समान श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के उपदेश से इतिहास प्रसिद्ध महाराजाधिराज श्री सम्प्रति के तुल्य, सेठ वीरदेव श्रावक ने खंभात नगर निवासी उत्तम मध्यम-जघन्य सभी लोकों के महा समुदायों के साथ, जंगम युगप्रधान, अनेक लब्धिप्रधान श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज का नगर प्रवेश हिन्दू-साम्राज्य में जैसा होता था, वैसा करवाया। विरोधी यवन लोगों के देखते हुए भी चँवर ढाले जा रहे थे मस्तक पर छत्र धारण किया गया था। प्रवेशोत्सव अवर्णनीय था। हिन्दु राज्य के अलंकार भूत मंत्रीश्वर श्रीवस्तुपालने युगप्रवरागम श्रीजिनेश्वरसूरिजी म० का जैसा प्रवेशोत्सव कराया था एवं यवन राज्यकाल में राजमंत्रीश्वर सेठ श्रीजेसलजी ने श्रीजिनचन्द्रसूरिजी म० का नगर प्रवेश करवाया था, उनसे भी अधिक श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज का यह नगर प्रवेश महोत्सव हुआ। वहां पर नवांगी टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी महाराज की स्तवना से प्रकट हुए, खं भा त नगर के अलंकार-भूत श्रीस्तंभन पार्श्वनाथजी महाराज और उसी चैत्य में विराजमान श्री अजितनाथ स्वामी की स्तवना आचार्यश्री ने अपने नूतन बनाये हुए स्तुति स्तोत्रों से की। सकल चतुर्विध संघ सहित

श्रीपूज्यजी ने अनेक भवों से संचित पाप-रूपी कीचड़ को धोने के लिए यह पवित्र यात्रा की थी।

इसके बाद लगातार आठ दिन तक सेठ वीरदेव तथा अन्य धनी श्रावकों ने खम्भात निवासी विधि समुदाय के साथ ध्वजारोपण, अनिवारित अन्न-वस्त्र दान, संघ वात्सल्य, संघ पूजा और इन्द्रमहोत्सव आदि धार्मिक कार्य प्रचुर धन-व्यय से किये। ये कार्य स्वपक्ष के लोगों के लिए आनन्द-दायक और विपक्षियों के लिए कष्टप्रद हुए। इस उत्सव में कडुआ श्रावक के पुत्र दो० खांमराज के छोटे भाई सामल श्रावक ने बारह सौ रुपये भेंट चढ़ाकर इन्द्रपद प्राप्त किया और मंत्री आदि पद अन्य श्रावकों ने ग्रहण किये।

१०२. आठ दिन तक खम्भात में रहकर संघ शत्रुञ्जय यात्रा के लिए चला। यद्यपि उस समय देश में जगह-जगह राजाओं में लड़ाइयां चल रही थीं, भय के मारे जहां-तहां नगर, ग्राम सूने हो रहे थे, तथापि गुरुदेव की कृपा से आनन्द से चलता हुआ श्रीसंघ धांधूका नामक नगर में पहुचा। वहां पर सारे नगर में प्रधान मंत्रीदलीयकुलभूषण ठाकुर उदयकरण श्रावक ने श्रीसंघ-वात्सल्य और श्रीसंघ-पूजा आदि कार्यों से बड़ी प्रभावना की। वहां से प्रस्थान करके संघ शत्रुञ्जय पहाड़ की तलहटी में पहुंचा। पूज्यश्री महाराज सारे संघ को साथ लेकर शत्रुञ्जय पर्वत के शिखर पर दूसरी बार गये। संसाररूपी बेलड़ी के काटने में तलवार के समान, शत्रुंजय तीर्थ के अलंकार-भूत श्रीऋषभदेवजी की स्तुति, अपने बनाये हुए भक्ति-रस पूर्ण सुन्दर रचना वाले स्तोत्रों से की। वहां पर सकल संघ में मुख्य वीरदेव, संघ पृष्ठपोषक सेठ तेजपाल, नेमिचन्द्र, दिल्ली निवासी रुद्रपाल, सा० नींबदेव, मंत्रीदलीय कुल-भूषण जवनपाल, लखमा, जालौर के निवासी पूर्णचन्द्र, सा० सहजा और गुहा के रहने वाले सेठ साधु आदि धनी श्रावकों ने दस दिन तक ध्वजारोपण, संघ-पूजा, अवारित सत्र, स्वधर्मी वात्सल्य, इन्द्रपद-महामहोत्सव आदि कार्य बड़े उत्साह से किये। इस अवसर पर वस्त्र, भूषण आदि खूब बांटे गये। जिनशासन की अत्यधिक प्रभावना की गई। जिन-शासन की प्रभावना करने में प्रवीण सेठ लोहट के पुत्र लखण ने सैंतीस सौ रुपयों में इन्द्रपद प्राप्त किया। दिल्ली निवासी सुरराज के पुत्र रुद्रपाल के छोटे भाई सेठ नींबदेव श्रावक ने बारह सौ रुपयों में मंत्रीपद ग्रहण किया। शेष पदों को अन्य धनी-मानी श्रावक, श्राविकाओं ने ग्रहण किया। भगवान् आदिनाथ के भंडार में विधिसंघ की ओर से चौदह हजार रुपये संचित हुये। श्रीआदिनाथ भगवान् के मन्दिर में नये बनाये हुये चौबीस जिनालय की देव-कुलिकाओं पर श्रीपूज्यजी ने विस्तारपूर्वक कलश और ध्वजा का आरोपण किया।

इस प्रकार पूजन-वंदन आदि कृत्यों से निवृत होकर श्रीपूज्यजी पहाड़ के नीचे अपने स्थान पर आ गये। इसके बाद सारा संघ जिस प्रकार गया था, उसी प्रकार ठाठ-बाट से

वापिस लौटता हुवा सिरसा (पाटण) नगर में पार्श्वनाथ भगवान् की पूजा करके चलता हुवा शंखेश्वर नामक तीर्थ स्थान में पहुँचा। वहां पर चार दिनों तक अवारित सत्र, स्वधर्मी वात्सल्य, श्रीमहापूजा और महाध्वजारोपण पूर्वक श्रीपार्श्वनाथ और पाटलालंकार श्रीनेमिनाथजी की, श्रीपूज्यजी ने नये-नये स्तोत्रों से स्तुति-पूजा की। इसके बाद सकलसंघ सहित श्रीपूज्यजी सावण सुदि एकादशी के दिन वीरदेव श्रावक द्वारा किये गये प्रवेश महोत्सव के साथ भीमपल्ली आये। श्रीमहावीरदेव की वंदना की। देश-देशान्तरों से आये हुए श्रावक लोगों को दान-सम्मान पूर्वक अपने घरों को विदा किया।

१०३. इसके बाद सं० १३८२ में वैशाख सुदि ५ के दिन सामल सेठ के कुल में दीपक के समान, कल्पवृक्ष और समुद्र के तुल्य, समस्त नागरिक लोगों में मुकुट, स्थिरता-उदारता, गम्भीरता में मेरु पहाड़ के समान, जिनशासन को प्रभावित करने में अग्रणी, शत्रुञ्जय आदि तीर्थों की यात्रा से पुण्य संचय करने वाले सेठ वीरदेव ने दीक्षा, मालारोपण आदि नन्दि महोत्सव करवाया। इसमें भीमपल्ली, पाटण, पालनपुर, बीजापुर, आशापल्ली आदि नाना स्थलों के लोग बहुत बड़ी संख्या में आये थे और बड़े विस्तृत महामहोत्सव से शासन की प्रभावना की थी। इस अवसर पर श्रीपूज्यजी ने चार क्षुल्लक और दो क्षुल्लिकाओं को दीक्षा प्रदान की। जिनमें क्षुल्लकों के नाम विनयप्रभ, मतिप्रभ, हरिप्रभ, सोमप्रभ एवं क्षुल्लिकाओं के नाम कमलश्री व ललितश्री स्थिर किये गये थे। अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने माला ग्रहण की। अनेकों ने सम्यक्त्व तथा सामायिक व्रत धारण किया, कईयों ने परिग्रह-परिमाण किया। उसी साल श्रीपूज्यजी महाराज श्रावक वृन्द के प्रबल अनुग्रह से साँचौर गये और वहां पर धूमधाम से नगर में प्रविष्ट होकर श्री महावीर देव तीर्थराज को नमस्कार किया। वहां पर एक मास तक ठहर कर श्रावकों को धर्मोपदेश किया। लाटहृद नामक गांव के श्रावकों के अनुरोध से महाराज वहां गये। वहां पर देवाधिदेव श्री महावीर को नमस्कार करते हुए पन्द्रह दिन ठहरे। वहां के श्रावकों को सन्तुष्ट करके बाड़मेर गये। वहां पर श्री ऋषभदेव भगवान के दर्शन-वन्दन से कृत-कृत्य होकर श्रावकों के अनुरोध से चातुर्मास वहीं किया।

१०४. बाहड़मेर में सं० १३८३ की पौषी पूर्णिमा के दिन जिनशासन प्रभावना, स्वधर्मी वात्सल्य आदि नाना प्रकार के धर्म कार्यों में उद्यत सेठ प्रतापसिंह आदि बाहड़मेर स्थित श्रावक समुदाय की अभ्यर्थना से महाराज ने अमारि घोषणा पूर्वक दीक्षा, मालारोपण, सम्यक्त्वारोपण, सामायिकारोपण, परिग्रह-परिमाण आदि नंदि महोत्सव किया। इसमें जैसलमेर, लाटहृद, सांचौर, पालनपुर आदि नाना स्थानों के रहने वाले सभी अच्छे-अच्छे श्रावक आये थे। आगन्तुक लोगों का स्वागत-सम्मान खूब किया गया था। नृत्य-गान और अन्न-दान आदि शुभ कार्य अधिक मात्रा में किये गये थे।

१०५, उसी वर्ष श्रावक महानुभावों के विशेष आग्रह से समस्त अतिशयों के निधान, समग्र सूरि समुदाय में प्रधान, श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने बाहड़मेर से जालौर की ओर विहार किया। मार्ग में लवणखेड़ा और शम्यानयन नामक दो गांव आये। इन दोनों ग्रामों में कुछ दिन ठहरकर श्रीपूज्यजी ने अपने पीयूषवर्षी सदुपदेशों से श्रावक समुदाय को सन्तुष्ट किया। लवणखेड़ा में राजकीय उच्च पदस्थ महाराज के पूर्वज, वाहित्रिक सेठ उद्धरण ने श्रीशान्तिनाथ भगवान् का मन्दिर करवाया था। इसी नगर में अपने गुरु श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज की जन्म तथा दीक्षा हुई थी। इस कारण इस स्थान का और भी महत्त्व अधिक बढ़ा हुआ है। यहां से चलकर विविध धर्मरूपी कमल के सरोवर जावालिपुर में बड़े समारोह के साथ प्रवेश किया। वहां पर अपने हाथ से प्रतिष्ठित श्रीमहावीरदेव भगवान् के चरण–कमलों में विधिपूर्वक वंदना की। श्रीकुलधर मंत्रीश्वर के कुल में उत्पन्न सेठ भोजराज के पुत्र मंत्री सलखणसिंह, चाहड़जी के पुत्र झांझल आदि जावालिपुरीय विधि समुदाय ने उच्चापुर, देवराजपुर, जैसलमेर, शम्यानयन, श्रीमाल, सत्यपुर, गुड़हा आदि स्थानों के हरिपाल के पुत्र गोपाल, धार्मिक उत्सवों में अधिक भाग लेने वाले सेठ जाल्हण के पुत्र तेजपाल, रुद्रपाल आदि श्रावक समुदाय को आमन्त्रित कर संवत् १३८३ फाल्गुन वदि नवमी के दिन से लगातार पन्द्रह दिनों तक श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के हाथ से प्रतिष्ठा, व्रतग्रहण, उद्यापन–मालारोपण, सम्यक्त्व धारण आदि नंदि–महोत्सव बड़े विस्तार से करवाया। विषम दुःषमाकाल में भी श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज का ऐसा प्रभाव था कि जिसके मस्तक पर हाथ रख देते थे, उस पुरुष के अमंगल निवारण और मंगल प्राप्ति होकर ही रहती थी। इसमें इनका ज्ञान–ध्यानातिशय ही हेतु था। ऐसे प्रभावी आचार्य के हाथ से प्रतिष्ठा आदि करवाने का सुअवसर भाग्यवश ही मिलता है। इस उत्सव में क्षुल्लकव्रत धारण करने वालों को नाना प्रकार की उत्तमोत्तम वस्तुएँ दान में दी गई थीं। महाऋद्धिशाली श्रावकों ने सोना, चाँदी, अन्न, वस्त्र आदि मुक्त हस्त होकर बाँटे। सधवा स्त्रियों ने स्थान–स्थान पर मांगलिक गीत गाये। संघपूजा–स्वधर्मी वात्सल्य, अवारितसत्र और अमारी घोषणा आदि प्रभावनाएँ प्रवर्तित हुई। इस वर्तमान विषम दुःषमकाल में भी शत्रु–मित्र सभी के शुभचिन्तक श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के प्रभाव से अपने–पराये सभी को आनन्द देने वाला यह उत्सव बिना किसी विघ्न के आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ। इस उत्सव के शुभ अवसर पर श्री राजगृह निवासी लोगों के क्रीड़ा-स्थल, श्रीवर्धमान स्वामी के चरण–कमलों से चिह्नित और श्रीगौतमगणधर आदि ग्यारह गणधरों के निर्वाण से पवित्रित, श्रीवैभवगिरि नामक पर्वत के शिखर पर संघ के प्रधान मंत्रीदलीय प्रतापसिंह के वंशधर ठाकुर अचलसिंह से बनाए हुए मूलनायक श्रीऋषभदेव भगवान् के मन्दिर में चतुर्विंशति जिनालय एवं महावीर आदि तीर्थंकरों की शिला–पीतल आदि धातुओं की बनी हुई अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। गुरुओं तथा अधिष्ठायक देवताओं की प्रतिमाएँ भी स्थापित की गईं।

न्यायकीर्ति, ललितकीर्ति, सोमकीर्ति, अमरकीर्ति, ज्ञानकीर्ति और देवकीर्ति ये छः क्षुल्लक बनाये गये। अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने माला ग्रहण करके सम्यक्त्व, सामायिक तथा द्वादश व्रतों को अंगीकार किया।

१०६. इसके बाद सिंधु-देशालङ्कार उच्चानगर तथा देवराजपुर वास्तव्य महर्द्धिक श्रावकों के गाढ़ अनुरोध से युगप्रवरागम श्री आर्य सुहस्तिसूरि के समान लोकोत्तर उज्ज्वल कार्यों को करने वाले, बिना अतिचार के कठिन चारित्र्य-पालन के तप विधान से आकर्षित व्यंतर देवताओं को वश में करने वाले, ध्यानातिशयरूपी निरुपम गम्भीर देवीकुंजरों, अठारह हजार शीलांगरूपी महारथों, कायिक-वाचिक-मानस भेदों में से प्रत्येक के कृत, कारित व अनुमोदित भेद से त्रिधाविभक्त होने के कारण नवधा विभक्त छत्तीस प्रकार के सूरियों के अच्छे घोड़ों तथा दूसरों से अजय्य, मुनि-मण्डल रूपी पदातियों से युक्त, युगप्रधान श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज चक्रवर्ती सम्राट की तरह म्लेच्छ-समुदाय से पूर्ण विशाल सिंध देश में जमे हुए उद्दंड मिथ्यात्व रूपी भूपति को उखाड़ कर उसके स्थान में विधि-धर्म रूपी राजा की स्थापना के लिए चैत्र मास के कृष्णपक्ष में विजय-यात्रा करके जैसलमेर में पहुंचे। मार्ग में महाराज को शकुन अच्छे हुए। रास्ते में शम्यानयन और खेड़ानगर फिर आये। वहां पर आपने अपने आदेश रूपी भूपति की स्थापना की। मरुस्थल के मुख्य किले जैसलमेर में जमे हुए अज्ञान रूपी दैत्य को भगाना महाराज का वहां आने में मुख्य उद्देश्य था। वहां पर श्रावक लोगों ने प्रवेश महोत्सव बड़े समारोह से किया। श्रीपूज्यजी ने सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओं को नष्ट करने वाले, पहले कभी अपने हाथों से प्रतिष्ठा किये हुए पार्श्वनाथ भगवान के चरणारविन्दों में विधिपूर्वक वंदना की। पूज्यश्री ने १५ दिन तक रहकर जैसलमेर में तलवार के समान तीक्ष्ण वाक्चातुरी से अज्ञान दैत्य को छिन्न-भिन्न करके सर्वजन सुखदायी ज्ञान-भूपाल की स्थापना की। इसके बाद उच्चापुर और देवराजपुर के श्रावकों के अनुरोध से मरुस्थल के भूत-प्रेत पिचाशों को अपना दास बनाने वाले श्रीपूज्य युगप्रवर ग्रीष्म ऋतु की असह्य धूप में भी मरुस्थली के रेतीले महासमुद्र को पाटण के राज-मार्ग की तरह पार करके बड़ी हँसी-खुशी के साथ ईर्या-समिति आदि नाना समितियों का पालन करते हुए प्रवेश-महोत्सव-पूर्वक देवराजपुर पहुंचे। वहां पर स्वहस्त प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेव भगवान की वन्दना की।

१०७. वहां पर एक मास ठहर कर धर्म-मर्मरूपी दण्ड को धारण करने वाले, व्याख्यान रूप सेनापति की सहायता से प्राणियों के हृदय रूपी किले में विराजमान मिथ्यात्व-भूपति को कुवासना आदि कुटुम्ब परिवार के साथ दूर भगाकर गुप्तशक्ति को धारण करने वाले श्रीपूज्यजी महाराज दुर्जय भूपति-मिथ्यात्व का उन्मूलन करने के लिए मिथ्यात्व की राजधानी रूप उच्चानगरी में पहुँचे। इसी उच्चानगरी में हिन्दू राजाओं के शासन काल में सुगुरु श्री जिनपतिसूरिजी महाराज भी

पहले एक दफा आये थे और यहां पर अनेक प्रतिवादी विद्वानों को शास्त्रार्थ से हराया था। महाराज के नगर-प्रवेश के समय चारों वर्णों के सरकारी-गैर सरकारी हजारों मनुष्य स्वागत में आये थे। शुभागमन के अवसर पर अनेक धनी श्रावकों ने गाजे-बाजे बजवाये और गरीबों को अन्न-धन बांटा। वहां पर प्रतिदिन चौबीसी पट के अलङ्कार-भूत श्री ऋषभदेव स्वामी को नमस्कार करते हुए, सब लोगों को दुःख देने वाले मिथ्यात्व-रूपी राजा को अपने गुणों के सामर्थ्य से हटाकर महाराज ने अपने आश्रित विधि-धर्मराज की जड़ जमाई। इस प्रकार एक मास का समय बिताकर शीतकाल के चातुर्मास की पूर्णिमा समीप आने से अनेक श्रावकों के वृन्द के साथ फिर से देवराजपुर आकर युगादिदेव को नमस्कार किया।

१०८. इसके बाद सम्वत् १३८६ माह सुदि पंचमी के दिन स्थैर्य, औदार्य, गाम्भीर्य आदि गुणों से अलंकृत, देव गुरुओं की आज्ञा को सुवर्ण मुकुट की तरह मस्तक पर धरने वाले, जिन-शासन की प्रभावना के निमित्त विविध मनोरंजक साधनों को जुटाने वाले, सेठ गोपाल के पुत्र सेठ नरपाल, सा० नंदण, सा० वयरसिंह, सा० मोखदेव, सा० लाखण, सा० आंबा, सा० कडुया, सा० हरिपाल, सा० वीकिल, सा० चाहड़ आदि उच्चापुरी के श्रावकों की प्रार्थना से तथा देवराजपुर, कियासपुर, बहिरामपुर, मलिकपुर आदि नाना नगरों एवं ग्रामों के प्रमुख श्रावक एवं राज्या-धिकारियों के अनुरोध से श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने प्रतिष्ठा, व्रतग्रहण, मालाग्रहण आदि नन्दि-महोत्सव बड़े विस्तार के साथ किया। इस महोत्सव के समय राणककोट और कियासपुर में स्थित विधि-चैत्य के लिये मूलनायक श्री युगादिदेव आदि की, शिला-पीतल की बनी हुई अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। यह उत्सव बहुत दिनों तक मनाया गया था। इसमें जगह-जगह नाटकों का आयोजन किया गया था। गन्धर्वों में प्रसिद्ध हा-हा हू-हू के समान गायनाचार्यों ने अपनी संगीतकला का परिचय दिया था। सोना, चाँदी, अन्न, वस्त्र, घोड़े आदि देकर याचक वर्ग को तृप्त किया गया था। होने वाले क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं को पुष्पांक दान बड़े विस्तार से किया गया था। सधर्मी-वात्सल्य, संघ-पूजा आदि धार्मिक कार्यों से, विषम दुःषमकाल में भी सुषमाकाल का सा भान होता था। यह उत्सव चक्रवर्ती के पट्टाभिषेक के समान था। महामिथ्यात्व रूपी दैत्य के विनाश करने में श्री कृष्ण का अनुकरण करने वाला था। स्वपक्ष के पुरुषों को आनन्द प्रद था। विपक्षियों के हृदय में कील की तरह चुभने वाला था। विधिधर्मसम्राट की जड़ जमाने वाला था। इस सुअवसर पर नौ क्षुल्लक और तीन क्षुल्लिकायें महाराज की अधीनता में आये। इनके नाम भावमूर्ति, मोदमूर्ति, उदयमूर्ति, विजयमूर्ति, हेममूर्ति, भद्रमूर्ति, मेघमूर्ति, पद्ममूर्ति, हर्षमूर्ति तथा कुलधर्मा, विनयधर्मा, शीलधर्मा, इस प्रकार थे। इस समय ७७ श्रावक-श्राविकाओं ने परिग्रह परिमाण, सामायिकारोपण, सम्यक्त्वारोपण आदि व्रत धारण किये। श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज बड़े प्रभावशाली आचार्य थे। इन्होंने आर्य-अनार्य सभी देशों में जिनधर्म की प्रवृत्ति बढ़ाई। अनेक भूपतियों को प्रतिबोध दिया था। इन्होंने सूरि-मंत्र को सिद्ध किया

था। नाना शास्त्रों की व्याख्या, सुरासुर–वशीकरण, प्रतिवादी निराकरण, सर्व ग्रामों और नगरों में जिनभवन–प्रतिमा–स्थापना आदि नाना प्रकार की लब्धि–शक्ति से गौतमस्वामी, सुधर्मा स्वामी, आर्य सुहस्तिसूरि, वज्रस्वामी, वर्द्धमानसूरि, नवांगी टीकाकर श्री अभयदेवसूरि, मरुस्थली कल्प-द्रुम श्रीजिनदत्तसूरि, प्रतिवादी पंचानन श्रीजिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि आदि अपने पूर्व पुरुषों की पद्धति का पूर्ण अनुकरण किया था। तपस्या, विद्या, व्याख्यान, ध्यान आदि के अतिशय से वशी-भूत देवता, म्लेच्छ व हिन्दू राजाओं के द्वारा वन्दनीय चरण कमल वाले, जिनचन्द्रसूरिजी महाराज के प्रधान शिष्य थे। इन्होंने युगप्रधान पद प्राप्ति के बाद प्रतिवर्ष किये जाने वाले प्रतिष्ठा, व्रतग्रहण, मालारोपण, महातीर्थ–यात्रा–विधान आदि कार्यों से विश्वभर में ख्याति प्राप्त कर ली थी।

१०६. इन्होंने न्याय, छन्द, अलङ्कार, नाटक, मीमांसा आदि सिद्धान्त और वेदादि ग्रन्थ रूपी महानगर के मार्गों में प्रवेश के लिए सारथी भूत अपनी कुशाग्र बुद्धि से देवगुरु–बृहस्पति को भी मात कर दिया था। इन्होंने सम्वत् १३८५ में उच्चानगर, बहिरामपुर, क्यासपुर आदि स्थानों से आने वाले, खरतरगच्छीय श्रावकों के मेले में फाल्गुन सुदि चतुर्थी के दिन पदस्थापना क्षुल्लक–क्षुल्लिकाओं की दीक्षा, मालाग्रहण आदि नन्दि महोत्सव बड़े विस्तार से किया। इस उत्सव में कमलाकर गणि को वाचनाचार्य पद दिया। बीस श्राविकाओं ने माला ग्रहण की, अनेक श्राविकाओं ने परिग्रह–परिमाण, सामायिकारोपण, सम्यक्त्व–धारण आदि कार्य किये।

११० इसके बाद सं० १३८६ में, गुरु भक्ति में अग्रतर, चिंतामणि के समान, देवगुरु की आज्ञा को भूषण की तरह मस्तक पर धारण करने वाले, वनपंक्ति के समान जिन शासन प्रभावना को मेघ वृन्द की तरह सींचने वाले, बहिरामपुरीय खरतर संघ के विशेष आग्रह से श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने बहिरामपुर जाकर, जिनकी सेवा से सब मनोरथ पूरे होते हैं ऐसे श्रीपार्श्वनाथ भगवान की विधि पूर्वक वन्दना की। श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज खरतरगच्छीय संघ के अनुरोध से सदैव विहार करने में तत्पर रहा करते थे। अपनी कीर्त्ति कौमुदी के प्रसार से घोर अंधकार के मिटाने में समर्थ थे। तरह–तरह के मांगलिक कार्यों के लिये श्रावक वृन्द को सजग करने वाले थे; जैसे सूरज कमलों को वैसे ही भाविक–जनों को प्रबोध देने में उद्यत थे। मोहांधकार को भगाने मे समर्थ थे। नगर प्रवेश के समय सेठ भीम, सा० देदा, सा० धीर, सा० रूपा आदि विधि–समुदाय ने स्वजन व परजन सभी के हृदयों में चमत्कार उत्पन्न करने वाला महान् उत्सव किया। उत्सव में अनेक लोग श्रीपूज्यजी के सम्मुख आये। महाराज के निर्मल यश का बखान किया जाता था। रमणीय आकृति, सौन्दर्य आदि गुणों से युक्त महाराज अपनी महिमा के अतिशय से तीक्ष्ण धार वाले फरसे की तरह विघ्न वेलड़ियों को काटने में दक्ष थे। वहां पर बहिरामपुरीय श्रावक समुदाय ने श्रीपूज्यों के चरणारविन्दों की स्थापना की। इस चरण–प्रतिमा स्थापना–महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए अनेक ग्रामों तथा नगरों से बहुत से श्रावक–समुदाय

आये थे। इस अवसर पर साधर्मी वात्सल्य, संघपूजा, अवारित सत्र आदि नाना प्रभावनाएँ की गईं थीं। नगर में एकटक देखने योग्य अनेक प्रकार के खेल तमाशों से जगह-जगह सुन्दर नृत्य के साथ श्रीपूज्यजी के गुणग्राम का वर्णन किया जा रहा था। बाहिरामपुर में कितने ही दिन ठहरकर और अपनी वाणी रूपी किरणों से मिथ्यान्धकार को भगाकर उसके स्थान पर महाप्रकाश का साम्राज्य फैलाया। इसके बाद कयामपुर के खरतरगच्छीय श्रावक-समुदाय के प्रबल अनुरोध से महाराज ने क्यासपुर की ओर विहार किया। मार्ग में श्रीलारवाहण नामक गांव के निवासी साह धीखिग, साह जेठा, साह चेला, साह महाधर आदि मुख्य-मुख्य श्रावक समुदाय ने जब सुना कि पूज्यश्री पधार रहे हैं, तब वे लोग अपने नगर के नवाब को साथ लेकर महाराज के सम्मुख आये और बड़े गाजे-बाजे के साथ महाराज का नगर में प्रवेश करवाया। यह प्रवेश महोत्सव भी बहिरामपुर की भांति ही हुआ। मन्दिरों के शिखर पर बजने वाले नक्कारों की आवाज सुनकर मयूरों को मेघ गर्जना का भ्रम होता था। यहां पर श्रीपूज्यजी छह दिन विराजे। इन छहों दिनों में लगातार साधर्मी वात्सल्य, अवारितसत्र, और संघ पूजा आदि कार्य बड़ी उत्तमता से होते रहे। इसके बाद सब को प्रबोध देने वाले जिनकुशलसूरिजी महाराज वहां से चलकर बीच में खोजावाहन नामक नगर में पहुंचे। वहां के श्रावकों ने बड़े समारोह के साथ नगर में प्रवेश करवाया।

१११. महाराज वहां से फिर कयासपुर की ओर चले। महाराज को लेने के लिए कयासपुर निवासी मुख्य-मुख्य श्रावकों का दल मार्ग में ही आ मिला; जिनमें सेठ मोहन, सा० कुमरसिंह, सा० खीमसिंह, सा० नाथू, साह अड्डू आदि श्रावकों के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। क्योंकि गुरु भक्ति के रस में इनकी आत्मा निमग्न थी। ये लोग विधि-मार्ग-रूपी सरोवर में कलहंस के समान थे। श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के शुभागमन की खुशी में इन सभी के रोम-रोम खिल रहे थे। ये लोग कयासपुर के नवाब से मांगकर पुलिस के आठ जवानों को साथ लेकर इसलिए आये थे कि नगर-प्रवेश महोत्सव के समय कोई दुष्ट मनुष्य किसी प्रकार का बखेड़ा उत्पन्न न कर सके। महाराज के स्वागत के लिये सरकारी, गैर सरकारी सभी लोगों ने उत्सव में भाग लिया था। उस समय नर-नारियों का खासा मेला लगा था। उस समय भादों मास के सजल जलधरों की ध्वनि के समान गाजे-बाजों की ध्वनि का तुमुल गुञ्जार हो रहा था। महामिथ्यात्व के मर्म का नाश करने में कतरनी रूप चर्चरियां गाई जा रही थीं। चारण-भाट आदि लोग महाराज के निर्मलयश सम्बन्धी नूतन सरस रचना वाली कवितायें सुना रहे थे। श्वेताम्बर मुनियों के दर्शन से अकंठित, कोकिल-कंठी सुन्दरियों के मधुर गीत कर्णधारी पशु-पक्षियों को भी लुभा रहे थे। नगर निवासी सभी औरतें अपना काम छोड़कर मकानों के छज्जों पर आ डटीं थी। पूज्यश्री के अभूतपूर्व दर्शनों से आश्चर्य चकित होकर नगर निवासी समस्त नर-नारी कहने लगे कि "इनका रूप-लावण्य विधाता की अनोखी रचना है। श्वेताम्बरों

के बादशाह इन महाराज की शांतिप्रियता वर्णनातीत है। इन्द्रियरूपी दुर्दमनीय घोड़ों को वश करने में इनकी चातुरी अपूर्व है। इनका शांत वेश सब मनुष्यों को आनन्द देने वाला है। अनुयायी हजारों सामान्य साधु इनके गुण-ग्राम का वर्णन कर रहे हैं।" इस प्रकार हजारों अँगुलियाँ महाराज का परिचय दे रही थीं। "ये महाराज चिरकाल तक जीते रहें" चारों ओर से ऐसी आशीर्वाद परम्परा सुनाई दे रही थी। पूज्यश्री के पुण्य के प्रभाव से बड़े-बड़े घरों की स्वयं आई हुई, मदमाती सुन्दरी स्त्रियां मंगल-कलश मस्तक पर धारण किये हुए उत्सव के आगे शोभा बढा रहीं थीं। महाराज ने अपने प्रभाव के अतिशय से फरसे की तरह सभी विघ्न बेलड़ियों को छिन्न-भिन्न कर आनन्द उमंग के साथ नगर में प्रवेश किया। महाराज प्रतिवादी-रूप हाथियों के लिये सिंह के समान थे। इसीलिये दुष्ट भी शिष्ट बन गये और म्लेच्छों ने भी श्रावक-वृन्द की भांति पूज्यश्री के चरणारविन्दों में विधिपूर्वक वन्दना की। महाराज का यह नगर-प्रवेशोत्सव वैसा ही हुआ; जैसा इतिहास प्रसिद्ध चौहान राजा पृथ्वीराज के समय अजमेर में जिनपतिसूरिजी महाराज का हुआ था। इस महोत्सव की सफलता को देखकर कई एक विघ्न से सन्तुष्ट होने वाले दुष्टों की मुखाकृति फीकी पड़ गई थी। वहां पर महाराज ने अपने हाथ से प्रतिष्ठित श्रीयुगादिदेव भगवान के पादारविन्दों में वन्दना की। क्यासपुर निवासी खरतर-समुदाय के विधिमार्गोपासक, कोमल-हृदय सभी श्रावक ज्ञान, ध्यान, पवित्र-चरित्र आदि सभी गुणों से सम्पन्न पूज्यश्री के अनन्य भक्त हो गये और इस खुशी के उपलक्ष में नाना प्रकार के पकवानों, व्यंजनों व फलों से साधर्मी बन्धुओं का उनने अत्यधिक सत्कार किया। महाराज ने भी कुतूहल वश आये हुए बड़े-बड़े यवन नेताओं को अपनी वचन चातुरी से आह्लादित कर उनके हृदय-रूपी कन्दराओं में सम्यक्त्व-बोध रूपी प्रकाश को पहुंचा कर मिथ्यात्व अंधकार को भगाया। सुश्रावक भविक-कमलों को सूर्य की किरणावली की तरह वचनावली से विकसित करने वाले, तथा अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान करने वाले महाराज चौमासी पूर्णिमा के शुभ अवसर पर 'देवराजपुर' पधारे। सभी समुदायों ने मिलकर प्रवेश महोत्सव करवाया। वहां पर महाराज ने युगादिदेव के मन्दिर में दर्शनार्थ पधार कर विधि से उनकी वन्दना की।

११२. इसके बाद सम्वत् १३८७ में सेठ नरपाल, साह हरिपाल, साह आंबा, साह लखण, साह बीकल आदि उच्चानगरी के श्रावक समुदाय के प्रबल आग्रह से १२ साधुओं को साथ लेकर महाराज उच्चानगरी पधारे। वहां पर एक मास तक ठहर कर पहले की तरह उनके तीर्थ प्रभावना आदि कार्य किये और गुजरात के प्रधान नगर पाटण की तरह यहां भी 'अर्हत् धर्म' का खूब विस्तार किया। इसके पश्चात् परशुरोरकोट के निवासी सेठ हरिपाल, साह रूपा, साह आशा, सा० सामल आदि मुख्य श्रावकों के अनुरोध से श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज वहां से चले। मार्ग में ग्रामानुग्राम अनेक श्रावकों के झुण्ड को लिये हुए, महाराज के शुभागमन से प्रफुल्लित श्रावक

समुदाय की वन्दना स्वीकार करते हुए, ढोल ढमाके के साथ महाराज ने प र शु रो र को ट नगर में प्रवेश किया। प्रवेश के समय सुन्दर वस्त्र-आभरणों से सुसज्जित अनेक नर-नारी महाराज के संमुख आये थे। वहां पर कुछ दिन तक अपने सदुपदेशों से श्रावक समुदाय का हित साधन कर महाराजश्री व हि रा म-पु र आये। भगवान पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में भक्ति-गद्गद् होकर वन्दना की। कुछ दिन निवास कर पहले की तरह जिनशासन को प्रभावित किया और वहां से विहार कर क्या स पु र आदि नगरों तथा ग्रामों में; ग्राम में एक तथा नगर में पांच; इस रीति से रात्रियां बिताकर भव्यजनों के उपकार के लिये शीतकाल के प्रारम्भ की चौमासी तिथि पर श्रेष्ठ नगर दे व रा ज पु र आये। श्री ऋषभदेव भगवान के चरणों में आदर श्रद्धा-भक्ति परिपूर्ण हृदय से वन्दन किया।

११३. इसके बाद सम्वत् १३८८ में श्रीविमलाचल शिखर के अलङ्कारहाररूपी श्रीमानतुङ्ग विहार के शृङ्गार श्री प्रथम तीर्थङ्कर आदि जिनवरों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा, स्थापना, व्रतग्रहण, मालारोपण आदि धार्मिक कार्य सूरिजी ने करवाये। महाराज ने देश-विदेशों में भ्रमण कर ऐसे-ऐसे अनेक कार्य करवाये थे जिनके कारण सूरीश्वर का गोक्षीर-काच-कपूर के समान धवल यश त्रिलोकी में फैल गया था। बढ़े हुए श्रेष्ठ ज्ञान-ध्यान के बल से समय की अनुकूलता-प्रतिकूलता को पहिचान कर महाराज कार्य करते थे। अपने भुजबल से अर्जित ज्ञान-बल से भक्तवृन्द के मनोरथ पूरने में देवद्रुम कल्पवृक्ष को भी पराजित कर दिया था। सब समुदायों ने सुवर्णतिलक के समान उ च्चा-पु री य, ब हि रा म पु री य, क्यासपुरीय, सि ला र वा ह णी य नाना नगर-ग्राम निवासी विधि समुदाय तथा समस्त सिन्धुदेश के श्रावक समुदायों के मेल में मिगसिर सुदि दशमी के दिन पदस्थापन, व्रतग्रहण, मालारोपण, सामायिक ग्रहण, सम्यक्त्व धारण आदि नन्दि महोत्सव बड़ी धूमधाम से किया गया। इसमें नाच-गान, खेल-कूद, तमाशे खूब ही करवाये गये। और श्रीसंघ की पूजा, साधर्मी भाइयों को मनोवांछित भोजन तथा गरीबों को दान आदि कार्य धनी-मानी भाइयों की ओर से मुक्त हस्त हो किये गये। क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं को मन चाही वस्तुएँ देकर उनको सम्मानित किया गया। उस महोत्सव में गांभीर्य, औदार्य, धैर्य, स्थैर्य, आर्जव, विद्वत्ता, कवित्व, वाग्मित्व, साहित्य-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आदि छत्तीस सूरिगुणों की खान पं० तरुणकीर्ति गणिजी को आचार्य पद प्रदान किया गया और 'तरुणप्रभाचार्य' यह नया नाम रखा गया और पं० लब्धिनिधानगणिजी को 'अभिषेक पद' दिया गया तथा लब्धिनिधानोपाध्याय इस प्रकार नाम परिवर्तन किया गया। इसी अवसर पर दो क्षुल्लक और दो क्षुल्लिकाएँ भी हुईं; जिनके नाम जयप्रिय मुनि, पुण्यप्रियमुनि, तथा जयश्री व धर्मश्री रखे गये। दस श्राविकाओं ने माला ग्रहण की। अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने परिग्रह-परिमाण, सामायिक ग्रहण एवं सम्यक्त्व-धारण की सफलता के लिये नंदि महोत्सव भी किया। इस प्रकार पूज्य आचार्य श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने अपने जीवन काल में अनेक ग्राम-नगरों में विचरते हुए अपने पुरुषार्थ से समुपार्जित निर्निमित्त दान देने से श्वेत हस्तिदन्त के समान तथा

मुक्तोद, क्षीरोद, क्षीर-समूह के झाग, शिव के अट्टहास एवं काश के समान निर्मल यश को चारों दिशाओं में फैलाया।

११४. देवराजपुर में श्रीतरुणप्रभाचार्य और श्रीलब्धिनिधान महोपाध्याय को श्रीपूज्यजी महाराज ने जैनदर्शन के आधार भूत स्याद्वादरत्नाकर व महातर्करत्नाकर सिद्धान्तों का परिशीलन करवाया। अन्यान्य शिष्य मण्डली अपने-अपने शास्त्राभ्यास में संलग्न थी। इसी समय महाराज को ऐसा भान हुआ कि अब मेरा शरीर अधिक दिन नहीं रहेगा। माघ शुक्ला...(? त्रयोदशी) को शरीर में प्रबल ज्वर व श्वास की व्याधि ने बाधा खड़ी कर दी है। महाराज ने स्वर्ग सिधारने के लिये उस क्षेत्र को शुद्धक्षेत्र जानकर और अपने निर्वाण का समय निकट आया समझकर तरुणप्रभाचार्य और लब्धिनिधान महोपाध्याय को श्रीमुख से आज्ञा दी कि "मेरे बाद मेरे पाट पर मेरे शिष्यों में प्रधान, पन्द्रह वर्ष की आयु वाले, सेठ लक्ष्मीधर के पुत्र, सेठों में प्रधान सेठ 'आंबाजी' की पुत्री साध्वी 'नीकीका' के नन्दन, युगप्रधान के लक्षणों से चिह्नित, फूल-सी सुकुमार आकृति वाले 'पद्ममूर्ति' नामक क्षुल्लक को अभिषिक्त कर पट्टधर बनाना।" ऐसा कहकर सं० १३८९ में फाल्गुन मास की कृष्ण पंचमी के दिन तीसरे पहर सारे संघ को इकट्ठा कर, सब से क्षमायाचना कर चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान किया। नाना प्रकार से आराधना का अमृत पान करते हुए, पंचपरमेष्ठी के श्रेष्ठ ध्यान रूपी पांच सौगन्धिक पदार्थों से मिश्रित ताम्बूलास्वादन से सुरभित मुख वाले श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज ने दो पहर रात्रि बीतने पर इस असार संसार को त्याग कर स्वर्गरूपी लक्ष्मी से विवाह किया अर्थात् स्वर्गीय देवों की पंक्ति में अपना आसन जा जमाया।

इसके बाद प्रातःकाल विद्युद्गति से यह समाचार फैलते ही; विषम-कालरूपी कालरात्रि के अज्ञानांधकार को हटाने में चतुर भास्कर, विधिसंघ के परम आधार युगप्रधान श्री जिनकुशलसूरिजी के अस्त होने से दुःखित अन्तःकरण वाले, समस्त सिन्धदेशीय नगर-ग्राम निवासी श्रावकों का वृन्द एकत्रित हुआ। पचहत्तर मंडपिकाओं से मण्डित सुन्दर चमकीले सुनहले दण्ड से सुशोभित इन्द्र के विमान के समान बनवाये गये निर्याण विमान से निर्याण महोत्सव मनाया गया और कपूर, अगर, तगर, कस्तूरी, मलयचन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से दाह-संस्कार किया गया। उनकी दाह-भूमि पर सेठ रीहड़ (गोत्रीय) पूर्णचन्द्र के कुलदीपक सेठ हरिपाल श्रावक ने अपने पुत्र झांझण, यशोधवल आदि सर्व परिवार के साथ एक सुन्दर स्तूप बनवाया। यह स्तूप संघ के समस्त मनुष्यों की दृष्टि को सुधारस की तरह आनन्द देने वाला था। श्री भरत महाराज से बनवाये गये अष्टापद पर्वत के शिखर के शिरोभूषण-इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न मुनिश्रेष्ठों के यज्ञभूमि के प्रधान स्तूप के सदृश था। मुस्लिम-प्रधान सिंध देश के मध्य में बसने वाले श्रावकों के चित्त का आधार था।

आचार्य जिनपद्मसूरि

११५. इसके बाद सं० १३६० ज्येष्ठ सुदि छठ सोमवार को मिथुन लग्न में देवराजपुर में युगादिदेव भगवान के विधिचैत्य में तरुणप्रभाचार्य ने श्री जयधर्म महोपाध्याय, श्री लब्धिनिधान महोपाध्याय आदि तीस मुनि, अनेक साध्वियां, नाना देश नगर-ग्राम-निवासी स्वपक्षीय-परपक्षीय अगणित श्रावक, ब्राह्मण, ब्रह्मक्षत्रिय, राजपूत, यवन, नवाब आदि हजारों मनुष्यों की अगणित उपस्थिति में श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज की आज्ञा के अनुसार पद्ममूर्ति नामक क्षुल्लक को उनके पाट-सिंहासन पर स्थापित किया गया और उनका नाम परिवर्तन कर श्रीजिनपद्मसूरि घोषित किया गया।

इस पाट-महोत्सव के शुभ अवसर पर अमारी घोषणा, नाना विध प्रभावना, अवारित सत्र, तालपूर्वक रासगान, सौभाग्यवती कुलीन-ललनाओं का मंगलमय प्रमोद नृत्य, धन-धान्य,वस्त्र, सुवर्ण, तुरङ्ग आदि अनेक बहुमूल्य वस्तुओं का दान आदि विविध कार्य किये गये। धनिकों ने चतुर्विध सघ-पूजा में धन व्यय कर सुयश सञ्चित किया। यह महोत्सव रीहड़ कुल में दीपक के समान, जिनशासन को प्रभावित करने में प्रवीण धनदेव के पोते हेमल के पुत्र सेठ पूर्णचन्द्र के सुपुत्र हरिपाल श्रावक ने सर्वदेशों-नगरों-ग्रामों में कुंकुम पत्रिकाएँ भेज कर चारों ओर से, सब स्थानों से विधि-संघों को आमन्त्रित कर एक मास तक स्वागत कर, इस उत्सव को अपने विपुल धन व्यय से सफल बनाया। इसी हरिपाल श्रावक ने शत्रुञ्जय, गिरनार आदि महातीर्थों की यात्रा की थी। इसी ने श्रीजिनचन्द्रसूरि और युग प्रवर श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज को सिन्ध देश में विहार करवाया था। अनेक मुनियों को आचार्य पद, उपाध्याय पद दिलाने में सहायक हुआ था। इसने सुयश पैदा करने वाले अनेक कार्यों से अपने कुटुम्बियों की दिग्दिगन्तरों तक ख्याति की थी। इन कार्यों में अपने चाचा कडुक, भतीजे कुलधर और अपने पुत्र झांझण, यशोधवल आदि कुटुम्बियों को सदैव साथ रखकर अग्रसर होता था। इसने संघ-पूजा साधर्मी वात्सल्य आदि कार्यों में हजारों रुपये अपने जेब से लगाये थे। यह महानुभाव सदैव याचक वर्ग का मानसिक सन्तोष करने में तत्पर रहता था।

उस महोत्सव में सेठ आंबा, झांझा, मंत्री, चाहड़, धुस्सुर, मोहण, नागदेव, गोसल, कर्मसिंह खेतसिंह, बोहिथ आदि नाना स्थानों के निवासी धनी श्रावकों ने अपने-अपने धन का सदुपयोग किया। उक्त अवसर पर श्रीजिनपद्मसूरिजी महाराज ने जयचन्द्र, शुभचन्द्र, हर्षचन्द्र इन तीन मुनियों को तथा महाश्री, कनकश्री इन दो क्षुल्लिकाओं को दीक्षा दी। पं० अमृतचन्द्रगणि को वाचनाचार्य का पद प्रदान किया। अनेक श्राविकाओं ने माला-ग्रहण की। बहुत से श्रावक-श्राविकाओं ने सम्यक्त्व धारण, सामायिक ग्रहण तथा परिग्रह-परिमाण का व्रत लिया। तदनन्तर जेठ सुदि नवमी के दिन सेठ हरिपाल ने युगादिदेव श्रीऋषभदेव आदि अर्हत् प्रतिमाओं का प्रतिष्ठा-महोत्सव करवाया तथा

स्तूप और जेसलमेर, क्यासपुर, स्थानों के लिए बनाई गई श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज की तीन प्रतिमाओं का प्रतिष्ठापन–महोत्सव पद स्थापन–महोत्सव की तरह बड़े विस्तार से किया। तत्पश्चात पट्टाभिषेक में आये हुए जेसलमेर के विधि समुदाय की गाढ़तर अभ्यर्थना से श्रीपूज्यजी उपाध्याय युगल आदि बारह साधुओं को साथ लेकर जेसलमेर के श्रावक समुदाय द्वारा किये गये, स्वपक्ष–परपक्ष, हिन्दू, म्लेच्छ आदि सब के लिये आनन्दकारी प्रवेश महोत्सव पूर्वक नगर में प्रवेश किया और देवाधिदेव पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार किया और महाराज का पहला चातुर्मास यहीं हुआ।

११६. अनन्तर सं० १३६१ पौष वदि दशमी के दिन मालारोपण आदि महोत्सव को विस्तार पूर्वक समाप्त कर लक्ष्मीमालागणिनी को प्रवर्तिनी पद दिया। वहां से महाराज ने बाडमेर की ओर विहार किया। वहां पर साह प्रतापसिंह, साह सातसिंह आदि श्रावकों ने और श्रीचाहमान कुलदीपक राणा श्रीशिखरसिंह आदि राजपुरुष एवं अन्य नागरिक लोगों ने सम्मुख आकर बड़ी प्रतिष्ठा के साथ महाराज का नगर प्रवेश करवाया। वहां पर सर्वप्रथम महाराज ने मन्दिर जाकर युगादिदेव को विधिभाव से वन्दना की। बा ह ड़ मे र में दस दिन तक श्रावक समुदायों को सदुप-देश देकर श्रीपूज्यजी ने सत्यपुर की ओर विहार किया। वहां पर राजमान्य, समस्त संघ के कार्य संचालन में समर्थ सेठ नींब आदि श्रावकों और राणा श्री हरिपालदेव आदि राजकीय प्रधान पुरुषों ने सम्मुख आकर नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। वहां पर श्रीपूज्यजी ने श्रीमहावीर भगवान् की सादर सविनय वन्दना की। सां चो र के समस्त समुदाय ने एकराय होकर माह सुदि छठ के दिन सब मनुष्यों के मनको हरने वाला व्रतग्रहण–मालारोपणादि महोत्सव किया। इस अवसर पर श्रीपूज्यजी ने नयसागर, अभयसागर नाम वाले दो क्षुल्लकों को दीक्षा दी। अनेक श्राविकाओं ने माला-ग्रहण और सम्यक्त्व धारण किया। यहाँ पर लगभग एक मास ठहर कर श्रीपूज्यजी ने श्रावक समुदाय का समाधान किया। फिर वहां से चलकर संघ के प्रधान पुरुष सेठ वीरदेव आदि के अनुरोध से धूमधाम से आ दि त्य पा ट नगर में प्रवेश किया। श्रीशान्तिनाथ भगवान को नमस्कार किया। वहां पर माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन श्री जाल्हणकुलोत्पन्न सेठ तेजपाल आदि श्रावकों ने मिलकर बड़े समारोह के साथ प्रतिष्ठा महामहोत्सव करवाया। इस उत्सव में श्रीऋषभदेव आदि पांच सौ जिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठा श्रीपूज्यजी के हाथ से करवाई गई। तत्पश्चात् फागुन वदि षष्ठी के दिन मालारोपण, सम्यक्त्वधारण आदि उत्सव हुआ।

इसके बाद सम्वत् १३६२ मार्गशीर्ष वदि षष्ठी के दिन दो क्षुल्लकों को बड़ी दीक्षा प्रदान की और श्राविकाओं की मालाग्रहण के निमित्त एक उत्तम उत्सव किया गया।

११७. इसके बाद सं० १३६३ में कार्तिक के महीने में अवस्था में छोटे होते हुए भी श्रीपूज्यजी ने अपना आवश्यक कर्तव्य समझकर सेठ तेजपाल द्वारा विस्तारपूर्वक करवाये गये

धनसारनन्दि-महोत्सव की सफलता के निमित्त अति कठिन 'प्रथमोपधान तप' बड़ी उपमता से निभाया। इसके बाद मोखदेव श्रावक के अत्यधिक आग्रह से और उसके द्वारा लिये गये अभिग्रह की पूर्ति के लिये महाराज ने फागुन सुदि दशमी के दिन पाटण से चलकर जीरापल्ली के अलंकार भूत श्रीपार्श्वनाथदेव भगवान् को वन्दना की। वहां से नारउद्र (नाड़ोद) स्थान में मंत्रीश्वर गोहाक के अनुरोध से आये। दो दिन ठहरे और फिर वहां से श्री आशोटा नामक स्थान को विहार कर गये। आशोटा में श्यामल-कुल-भूषण, शत्रुञ्जय आदि महातीर्थों की यात्रा करने से विश्वविख्यात, सदाचारी, श्रीसंघ के प्रधान पुरुष सेठ वीरदेव श्रावक ने श्रावक-समुदाय एवं श्रीरुद्र के पुत्र राजा, गोधा, सामंतसिंह आदि बड़े-बड़े नागरिक लोगों को सम्मुख लाकर बड़े ठाट-बाट से महाराज का नगर में प्रवेश करवाया। यह प्रवेश महोत्सव श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के भीमपल्ली प्रवेशोत्सव से भी विशेष महत्वशाली हुआ। वहां से चलकर महाराज बूजद्री नामक स्थान में आये। यद्यपि मार्ग बड़ा विकट था और डाकुत था, हिंसक जन्तुओं की भरमार थी, नदी नाले, पहाड़ आदि के कारण जमीन भी बड़ी ऊबड़-खाबड़ थी। परन्तु मार्ग में मोखदेव श्रावक की ओर से सुप्रबन्ध होने के कारण श्रीपूज्यजी राजमार्ग की भांति निःशङ्क हो अपने प्राप्य स्थान को सकुशल पहुँच गये। मोखदेव श्रावक सेठ छज्जलजी के विशालकुल गगन का अलंकारभूत चमकीला सूर्य था। चाहमानवंश मानस-सरोवर का राजहंस था। अपनी प्रतिज्ञा के निभाने में अद्वितीय था। मोखदेव श्रावक ने बूजद्री के राजा उदयसिंह को तथा समस्त नागरिक लोगों को साथ लाकर बड़े प्रभाव से श्रीपूज्यजी को नगर में प्रविष्ट करवाया।

११८. उसी वर्ष श्रेष्ठिवर्य मोखदेव ने सेठ राजसिंह के पुत्र पूर्णसिंह, धर्णसिंह आदि सकल कुटुम्बियों से परामर्श कर श्री राजा उदयसिंह की तरफ से राजकीय सहायता पाकर अर्बुदाचल (आबू पर्वत) आदि तीर्थों की यात्रा करने के लिये श्रीपूज्यजी से प्रार्थना की। ज्ञान-ध्यान में अपने पूर्वाचार्यों का अनुकरण करने वाले श्रीपूज्य जिनपद्मसूरिजी महाराज ने अपने दैवी-ज्ञान-बल से यात्रा की निर्विघ्नता को जानकर और तीर्थयात्रा धर्मप्रभावना का सबसे बड़ा अंग है, सम्यक्त्व की निर्मलता का निदान है, यह सुश्रावकों के अवश्य करने योग्य है, ऐसा समझकर मोखदेव श्रावक को अपनी ओर से अनुमति दी। पूज्यजी का आदेश पाने पर सोलख और श्रीमाल आदि प्रान्तीय संघ के प्रधानपुरुष श्रेष्ठिवर्य साह बीजा, साह देपाल, साह जिनदेव, साह सांगा आदि ने स्वपक्षीय-परपक्षीय महानुभावों को तथा अन्य संघों को तीर्थयात्रा निमन्त्रण के लिए कुंकुम-पत्रिकायें भेजी गईं। मार्ग में समस्त संघ की देखभाल, निगाह-निगरानी का भार साह मूलराज और साह पद्मसिंह को सौंपा गया। सेठ मोखदेव ने तीर्थयात्रा में साथ चलने योग्य देवालय के आकार का एक रथ बनवाया, जिसमें चैत्र शुक्ला षष्ठी आदित्यवार के दिन श्रीशान्तिनाथ भगवान् के बिम्ब की स्थापना करके महाराज से वासक्षेप करवाया। इसके बाद बड़े ठाट-बाट से अठाई महोत्सव

किया गया। बूजद्री निवासी सेठ काला, साह कीरतसिंह, साह होवो, साह मोजा आदि विधिसंघ तथा मंत्री ऊदो आदि अन्य श्रावक संघों को साथ लेकर चैत्र सुदि पूर्णिमा के दिन शुभ मुहूर्त में देवालय सहित संघ ने प्रस्थान किया। श्रीपूज्यजी भी श्रीलब्धिनिधान महोपाध्याय, अमृतचन्द्रगणि आदि पन्द्रह मुनियों और जयर्द्धि महत्तरा आदि आठ साध्वियों को साथ लेकर संघ के साथ तीर्थयात्रा को चले।

११६. मार्ग में श्री बूजद्री संघ और सोलख प्रान्तोयसंघ भी श्री ना णा तीर्थ में आ मिले। वहां पर सेठ खरा आदि मुख्य २ श्रावकों ने तथा सेठ मोखदेव ने इन्द्र पद आदि पदों को ग्रहण कर बड़ी प्रभावना की और श्री महावीर भगवान के खजाने में दो सौ रुपये नगद देकर अपने द्रव्य का सदुपयोग किया। इसके बाद समस्त श्रीसंघ द्वारा पूजित-सेवित श्रीपूज्यजी महाराज तीर्थराज आबू पहुँचे। वहां पर अर्बुदाचल के अलङ्कार, सकलजन मनोहार, भारतीय प्राचीन शिल्पकला के सार, प्रसिद्ध मन्दिर बिमल विहार, श्रीलूणिगविहार, श्रीतेजसिंह विहार के मूल अलङ्कार श्रीऋषभदेव एवं नेमिनाथ प्रमुख तीर्थङ्करों की भक्ति-भाव से वन्दना की। वहां श्रेष्ठी मोखदेव आदि समस्त श्रीसंघ ने इन्द्र पद, अमात्यपद आदि पद ग्रहण, महाध्वजारोपण, अवारित सत्र आदि अनेक महोत्सव किये और पाँच सौ रुपये भगवान के भण्डार में प्रदान कर अपने धन को सफल किया। वहां से चलकर प्रह्लादनपुर के स्तूप में अलङ्कार समान युगप्रधान श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज की प्रतिमा को मु द्र स्थ ला ग्राम में आकर नमस्कार किया। इसके बाद जी रा प ल्ली में आकर श्रीसंघ सहित श्रीपूज्यजी ने महाप्रभावी लक्ष्मीनाथ-श्रीपार्श्वनाथ भगवान की वन्दना की। वहां पर श्रीसंघ ने इन्द्रपद आदि महोत्सव का विधान किया और भगवान के भण्डार में डेढ़ सौ-रुपये प्रदान कर धन का सदुपयोग किया। वहां से चल कर श्रीसंघ च न्द्रा व ती नगरी आया। वहाँ पर सेठ झांझण, रूपा आदि नगर निवासी श्रावकवृन्द ने साधर्मी वात्सल्य, श्रीसंघ पूजा आदि के विधान से संघ का बड़ा सम्मान किया। संघ ने इन्द्र आदि पद के ग्रहण से श्रीयुगादिदेव के मन्दिर-कोश में दो सौ रुपये प्रदान किये। वहां से विदा होकर श्रीपूज्यजी ने समस्त संघ के साथ आ रा स न नामक स्थान में श्रीनेमीश्वर आदि पांच तीर्थों को नमस्कार किया और श्रीसंघ ने इन्द्रपद आदि ग्रहण कर डेढ़ सौ रुपये वितरण किये। तदनन्तर श्री ता रं गा जी तीर्थ में आकर समस्त यात्रीदल ने श्रीकुमारपाल भूपाल के कीर्तिस्तम्भ रूप अजितनाथ भगवान् को प्रणाम किया। इन्द्रपद आदि के निमित्त डेढ़सौ रुपये देकर धन को सफल किया। वहाँ से लौट कर श्रीसंघ त्रि शृ ङ्ग म् आया। वहां पर मंत्रिवर सांगणजी के पुत्र रत्न मंत्री मंडलिक, मंत्री वयरसिंह, साह नेमा, साह कुमारपाल, महीपाल आदि स्थानीय श्रीसंघ ने महाराज महीपाल के पुत्र श्रीरामदेवजी की आज्ञा से श्रीसंघ का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। वहां पर श्रीपूज्यजीने

चतुर्विध संघ को साथ लेकर बड़े समारोह से चैत्य परिपाटी की और श्रीसंघ ने अन्य स्थानों की तरह इन्द्र आदि पदों को स्वीकार कर डेढ़ सौ रुपये श्रीपार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर में भेंट चढ़ाये।

चारों ओर दिशाओं से फैलने वाले महाराज के गुणगण और कीर्त्ति—सम्वाद को सुनकर राजसभा के सदस्यों सहित महाराज रामदेव के हृदय में श्रीपूज्यजी के दर्शन की उत्कण्ठा जागृत हुई और सेठ मोखदेव और मन्त्री मंडलिक को कहा कि "छोटी सी उम्र वाले आपके गुरुओं का बहुत बुद्धिप्रकर्ष सुनने में आया है। इसलिये उनके दर्शनों के लिये मैं वहां चलूँगा, नहीं तो उन्हें यहां मेरी सभा में लाओ।" मोखदेव और मन्त्री मंडलिक का विशेष आग्रह देखकर श्रीपूज्यजी महाराज श्रीलब्धिनिधान महोपाध्याय आदि साधुओं के साथ महाराजा रामदेव की सभा में पधारे। राजा रामदेव ने श्रीपूज्यजी को दूर ही से आता देखकर अपने राजसिंहासन से उठकर चरण—वन्दना की और पूज्यजी के बैठने के लिये अपने हाथ से चौकी बिछाई। श्रीपूज्यजी ने हृदय से आशीर्वाद दिया। मुनिराजों के विराजने के बाद श्रीसारंगदेव नामक महाराज के व्यास ने अपनी रचना की हुई संस्कृत कविता सुनाई। उनकी रचना में श्री लब्धिनिधान महोपाध्यायजी ने क्रिया सम्बन्धी त्रुटि बताई। इस बात से राजा रामदेव के हृदय में आश्चर्य हुआ और बारंबार सभा में कहने लगे कि—"इन उपाध्यायजी महाराज की वाक्पटुता और समस्त शास्त्रों का रहस्य ज्ञान अलौकिक शक्ति का परिचायक है। इन्होंने हमारी सभा के प्रौढ विद्वान् व्यासजी की रचना में भी अशुद्धि दर्शादी है।" इसी प्रकार अन्य सभासद भी आश्चर्य से अपना मस्तक धुनते हुए श्रीपूज्यजी और उपाध्यायजी के गुणों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे। श्रीपूज्यजी ने तात्कालिक कविता से श्रीरामदेव महाराज का वर्णन इस प्रकार किया :—

विहितं सुवर्णसारङ्गलोभिनाऽपि त्वयाऽद्भुतं राम ! ।
यत्ते लङ्कापुरुषेण ननु ददे श्रीर्वरा सीता ॥

[हे राजन् ! राम ! (रामदेव) उस इतिहास-प्रसिद्ध राम की तरह आप सुवर्णरूपी मृग के लोभी हैं, परन्तु लंका के कापुरुष रावण ने उनकी सीता नामक श्रेष्ठ भार्या को हर लिया। किन्तु आपकी लक्ष्मीरूपी सीता को छीनने वाला कोई नहीं है। आप में और उस ऐतिहासिक राम में यही आश्चर्यजनक भेद है।]

इस भावगर्भित श्लोक को सुनकर सारी सभा आश्चर्य निमग्न हो गई। इसके बाद राजा साहब रामदेव ने श्रीसिद्धसेन आदि आचार्यों को बुलाकर उनके समक्ष श्रीपूज्यजी से उक्त कंठस्थ कविता को विकट अक्षरों में लिखवाई। इस नूतन राजसभा में भी स्वभाव सिद्ध प्रगल्भता को धारण करने वाले श्रीपूज्यजी ने उस उल्लिखित कविता को एकबार सरल रीति

से बांचकर नानार्थक नाममाला (कोष) के बल से मनोवाञ्छित विविध अर्थ करके बतलाये और उन श्लोकों को इसी दूसरी तरह वक्रता से लिखे। सभी सभासद लोग श्रीपूज्यजी की ओर एकटक निगाह से निहारने लगे। इसके बाद श्रीपूज्यजी ने आये हुए आचार्यों और व्यासजी के कायस्थ लेखकों से प्रत्येक श्लोक के एक-एक अक्षर को भिन्न-भिन्न लिखवाकर और मिटाकर तीसरी बार तीन श्लोकों को एक पट्टी पर लिखवाये और उनके द्वारा राजा के मनोविनोद के लिये चित्रकाव्य सम्बन्धी अद्भुत चातुरी का प्रदर्शन करने के हेतु एक चित्रकाव्य मय राजहंस की रचना की।

इस प्रतिभा के चमत्कार को देखकर राजसभा के समस्त लोग कहने लगे कि "यद्यपि इस विषम कलिकाल में सब लोगों की कलायें लुप्तप्राय हो गई हैं। परन्तु जिनशासन में अतिशय कला-कलाप को धारण करने वाले श्रीपूज्यजी जैसे अब भी भूमण्डल पर वर्तमान हैं।" इस प्रकार महाराज का गुण वर्णन किया जाने लगा। इस भांति श्रीपूज्यजी ने राजा राम की सभा में चमत्कार दिखला कर वहां से लौटकर श्रीसंघ के आवास स्थान पर पदार्पण किया।

समस्त श्रीसंघ वहां से चलकर चन्द्रावती नगरी होता हुआ बूजड़ी स्थान में वापिस आया। वहां पर तीर्थयात्रा में चतुर्विध संघ के सारे भार को निभाने वाले, बिना किसी कामना के सोना-चांदी, वस्त्र, घोड़ा आदि मुख्य-मुख्य वस्तुओं के सुपात्र-दान से अपने धन को सफल बनाने संघपति मोखदेव श्रावक ने राजा उदयसिंह आदि नागरिक लोगों को सम्मुख लाकर गाजे-बाजे के साथ चतुर्विध संघ सहित रथस्थ देवालय का प्रवेश महोत्सव किया। श्रीपूज्यजी ने अपने मुनि परिवार के साथ इसी स्थान पर चातुर्मास किया।

* * * *

आचार्य श्रीजिनपद्मसूरिजी के विषय में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि एक बार, जबकि वे यात्रार्थी श्रीविवेकसमुद्रोपाध्याय आदि मुनियों के साथ बाडमेर गये हुए थे। वहां लघुद्वार वाले मन्दिर में विशालकाय भगवान श्रीमहावीर की मूर्ति देखकर बाल्यस्वभाव से प्रेरित होकर ये शब्द कहे कि—

"बूहा यांढा वसही वड्डी अन्दरि किउं करि माणी।"

अर्थात् इतने छोटे द्वार वाले मन्दिर के अन्दर इतनी विशाल मूर्ति कैसे लाई गई। इससे कितने ही श्रावकों को असन्तोष व अरुचि भी पैदा हुई, किन्तु शीघ्र ही श्रीविवेकसमुद्रोपाध्यायजी ने उसका समाधान कर दिया।

इसके बाद आप जब गुजरात के लिए विहार कर रहे थे, उस समय मार्ग में सरस्वती नदी के किनारे ठहरे। तब एकान्त में यह चिन्ता हुई कि "कल गुजरात पहुंच कर पत्तनीय संघ के सम्मुख धर्मदेशना देनी है और मैं बालक हूं, कैसे धर्मदेशना दे सकूँगा?" तो सरस्वती नदी के किनारे ठहरने के कारण सरस्वती ने सन्तुष्ट होकर वरदान दिया और आपने प्रातःकाल पाटण पहुँचकर 'अर्हन्तो भगवन्त इन्दमहिता' इत्यादि शार्दूलविक्रीडितछन्दोबद्ध नवीन काव्य का निर्माण कर उसका ऐसा सुन्दर प्रवचन पत्तनीय संघ के संमुख किया कि सब आश्चर्य चकित हो गए और आपको 'बालधवलकूर्चाल सरस्वती' इस उपाधि से सुशोभित किया गया।

संवत् १४०४ में वैशाख शुक्ला चतुर्दशी के दिन किसी ने कपट से आपको अमरपुर का अतिथि बना दिया।

खरतरगच्छ का इतिहास
[उत्तरार्द्ध]
आचार्य जिनलब्धिसूरि से

श्री जिनलब्धिसूरि

आचार्य श्री जिनपद्मसूरि के पट्ट पर श्री जिनलब्धिसूरि अभिषिक्त हुये। आपका जन्म सं० १३७८ में मालू गोत्र में हुआ था। सं० १३८८ पाटण में आपने दीक्षा ग्रहण की थी। उपाध्याय पद आपको श्री जिनकुशलसूरिजी ने ही दिया था। आप जिनपद्मसूरि के विद्या गुरु थे और उपाध्याय विनयप्रभ के सहपाठी थे। विनयप्रभ को उपाध्याय पद भी आपने ही दिया था। आपका पट्टाभिषेक पाटण निवासी नवलखा गोत्रीय साह अमरसी ईश्वर कृत नन्दि महोत्सव द्वारा सं० १४०० आषाढ़ सुदि* प्रतिपदा को सम्पन्न हुआ था। आपको सूरि मंत्र श्री तरुणप्रभाचार्य ने दिया था। तदनन्तर क्रम से आप सब सिद्धान्तज्ञों के शिरोमणि और अष्ट विधान पूरक हुये। सं० १४०६ में नागपुर में आपका स्वर्गवास हुआ था।

श्री जिनचन्द्रसूरि

आपका जन्म छाजहड़ गोत्र में सं० १३८५ में हुआ था और सं० १३९० में आपने केवल ५ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण करली ली। सं० १४०६ माघ सुदि दशमी को जेसलमेर में नागपुर निवासी श्रीमाल वंशीय राखेचा गोत्रीय साह हाथी कृत नंदिमहोत्सव पूर्वक आप की पद स्थापना हुई थी। श्री तरुणप्रभाचार्य से आपने भी सूरि मंत्र ग्रहण किया था। सं० १४१४ आषाढ़ वदि त्रयोदशी के दिन स्तम्भ तीर्थ में आपका स्वर्गवास हुआ। कृपाराम रमणीय प्रदेश में आपका स्तूप निवेश किया गया था।

मुनि सहजज्ञान रचित विवाहलो से आपके संबंध में निम्न ज्ञातव्य बातें प्राप्त हैं:—

(मरु) देश के कुसुमाण गांव में मंत्री केल्हा निवास करते थे। उसकी पत्नी सरस्वती की कुक्षि से पातालकुमार का जन्म हुआ था, कुमार बड़े होने लगे। इधर दिल्ली नगर से रयपति संघपति ने शत्रुञ्जयतीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाला। कुसुमाणे में आने पर मंत्री केल्हा भी उसमें सम्मिलित हुये। क्रमशः प्रयाण करता हुआ संघ शत्रुञ्जय पहुंचा। तीर्थपति ऋषभदेव प्रभु के दर्शन कर सबने अपना जन्म सफल माना। वहां गच्छनायक श्री जिनकुशलसूरि का वैराग्यमय उपदेश श्रवण कर पातालकुमार को दीक्षा लेने का उत्साह प्रकट हुआ। पर माता से अनुमति प्राप्त करना कठिन था। अन्त में किसी तरह माता ने प्रबोध पाकर आज्ञा देदी और पातालकुमार को सूरिजी ने वासक्षेप देकर उन्हें शिष्यरूप से स्वीकार किया। यथा समय दीक्षा की तैयारियां होने लगीं। मन्त्री केल्हा ने चतुर्विध विधि संघ की पूजा की। याचकजनों को

* P N. J. वदि १

मनोवांछित दान दिया। पातालकुमार का वरघोड़ा निकला और वे व्रतश्री से हथलेवा जोड़ने (दीक्षा लेने) गुरुश्री के पास आगये। गुरु महाराज ने उसका दीक्षा-कुमारी से विवाह करवा दिया (दीक्षा देदी)। इस समय दिल्ली आदि नगरों की स्त्रियाँ मंगलगान गाने लगीं। गुरुवर जिनकुशलसूरि ने आपका दीक्षा नाम जशोभद्र (यशोभद्र) रखा। श्री अमीचंदगणि के पास आपने विद्याध्ययन किया। यथा समय पढ़ लिखकर योग्यता प्राप्त होने पर श्री जिनलब्धिसूरि अपने अंतिम समय यशोभद्र मुनि को अपने पद पर प्रतिष्ठित करने की शिक्षा दे गये। तदनुसार तरुणप्रभसूरि ने सं० १४०६ माघ सुदि १० को जैसलमेर में आपको गच्छनायक पद पर प्रतिष्ठित किया। पाट महोत्सव हाजीशाह ने किया।

श्री जिनोदयसूरि

आपका जन्म सं० १३७५ में पाल्हणपुर निवासी माल्हू गोत्रीय साह रुद्रपाल की धर्मपत्नी धारल देवी की रत्नकुक्षि से हुआ था। आपका जन्मनाम समर था। सं० १३८९ भीमपल्ली में महावीर चैत्य में पिता रुद्रपाल द्वारा कृत उत्सव से बहिन कील्हू के साथ आचार्य प्रवर श्री जिनकुशलसूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षावस्था का नाम सोमप्रभ रखा गया था। सं० १४०६ में जेसलमेर में श्री जिनचन्द्रसूरि ने स्वहस्त से इनको वाचनाचार्य पद प्रदान किया था। सं० १४१५ ज्येष्ठ* कृष्णा १३ को स्तम्भतीर्थ में अजितनाथ विधि चैत्य में लूणिया गोत्रीय साह जेसल× कृत नंदिमहोत्सव द्वारा तरुणप्रभाचार्य ने आपकी पद स्थापना की। तदनन्तर आपने स्तम्भतीर्थ में अजित जिन चैत्य की प्रतिष्ठा की तथा शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की। पांच स्थानों पर पांच बड़ी प्रतिष्ठायें कीं। आपने २४ शिष्य और १४ शिष्याओं को दीक्षित किया एवं अनेकों को संघवी, आचार्य, उपाध्याय, वाचनाचार्य, महत्तरा आदि पदों से अलंकृत किया। इस प्रकार पञ्चपर्व दिन (पांचों तिथि) के उपवास करने वाले, बारह ग्रामों में अमारिघोषणा कराने वाले तथा अट्ठाईस साधुओं के परिवार के साथ अनेक देशों में विहार करने वाले आचार्यश्री का सं० १४३२ भाद्रपद वदि एकादशी को पाटण नगर में स्वर्गवास हुआ।

इनके विषय में विज्ञप्ति पत्र के आधार पर कुछ विशेष वृत्त ज्ञात हुआ है, यह विज्ञप्ति श्री जिनोदयसूरि के शिष्य मेरुनन्दनगणि ने लिखकर सं० १४३१ में अयोध्या में विराजमान

---

* राजलाभ प० सुदि १३, वृ० प० आषाढ़ सुद २, समयसुन्दरीय आषाढ़ वदि १३

× जयसोमीय गुरुपर्वक्रम तथा ज्ञानकलश कृत रास आदि के अनुसार पट्टाभिषेक महोत्सव दिल्ली निवासी श्रीमाल रुद्रपाल, नींबा सधरा के पुत्र संघवी रतना पूनिग और शाह वस्तुपाल ने किया था।

श्री लोकहिताचार्य* को भेजी थी। इसमें उन्होंने अपने और गुरु जिनोदयसूरिजी की यात्रा का विस्तृत वर्णन दिया है। वे लिखते हैं :—

हम प्रातःकाल परिषदा में व्याख्यान देते हैं, दोपहर को ज्ञानकलशमुनि को जैनागम की वाचना देते हैं, एवं उन्हें और मेरुनन्दन मुनि, ज्ञाननन्दन मुनि तथा सागरचन्द्र मुनि को साहित्य लक्षणादि शास्त्र पढ़ाते हैं। नागपुर (नागोर) से हमने दो छोटे लेख आपके पास भेजे। उसके बाद फलवर्धिका (फलौदी) में श्री पार्श्वनाथ को नमस्कार किया। उसके बाद फिर नागोर में मोहण श्रावक द्वारा मालारोपण करवाया।

इसके बाद राजा खेत के परम प्रसाद पात्र साधुराज रामदेव श्रावक ने मेदपाट (मेवाड) में हमें आमन्त्रित किया। हम भीमुड नाह० गज्जण श्रावकों सहित कुशमानपुर पहुंचे और जिनचन्द्रसूरि के चरणों से पवित्रित स्तूप को नमस्कार किया। शुद्धदन्तीपुरी में पांच रोज ठहरे आषाढ़ की प्रथम द्वादशी के दिन नदकूलवती में श्री महावीर को नमस्कार किया। प्रातःकाल श्रीमाल कुल के सा० भादा के पुत्र तोल्हा श्रावक ने महोत्सव से अपने स्थान पर बुलाया और

* श्री लोकहिताचार्य के सम्बन्ध में कोई इतिवृत्त प्राप्त नहीं होता; किन्तु सं० १४३१ में आचार्य जिनोदयसूरि के शिष्य मेरुनन्दन गणि ने अयोध्या में विराजमान आपको जो विज्ञप्ति-पत्र भेजा था, उससे कुछ ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश पड़ता है; जो निम्न है : —

इसके बाद अणहिल्लपुर का वर्णन है। वहां से तेजः कीर्तिगणि, हर्षचन्द्रगणि, भद्रशीलमुनि, पण्डित ज्ञानकलशमुनि, धर्मचन्द्रमुनि, मेरुनन्दन मुनि, मुनि तिलकमुनि, ज्ञाननन्दनमुनि, सागरचन्द्र मुनि आदि शिष्य-मण्डल सहित श्री जिनोदयसूरि ने अपनी पर्युपास्ति निवेदन की है।

विज्ञप्ति अयोध्या भेजी गई थी। उसका आठ श्लोकों में अच्छा वर्णन है। उस अनेक विशेषणयुता नगरी में रत्नसमुद्रगणि, राजमेरुमुनि, स्वर्णमेरुमुनि, पुण्यप्रधानगणि आदि यतिवरों सहित श्री लोकहितसूरि विराजमान थे।

इससे पूर्व श्री रत्नसमुद्रमुनि द्वारा श्रावण (नभस्) मास में लिखित विज्ञप्ति को प्राप्त कर श्री जिनोदयसूरि आदि अत्यन्त आनन्द प्राप्त कर चुके थे। उन्हें मालूम हो चुका था कि श्री लोकहिताचार्य ने उपदेशमाला का व्याख्यान करते हुए चतुर्मास व्यतीत किया है, और पण्डित रत्नसमुद्रगणि; पण्डित सुवर्णमेरुमुनि, पण्डित राजमेरुमुनि आदि ने कर्मग्रन्थ पर किसी टीका का निर्माण किया है। उससे यह भी ज्ञात हुआ कि ठक्कुर चन्द के पुत्र मन्त्रिदलीयवंशोद्भव राजदेव श्रावक द्वारा सूचित तीर्थयात्रा में श्री लोकहिताचार्य मगध देश में विहार के समुदाय को प्रसन्न करते हुए राजगृह पहुंचे और मुनिसुव्रत जिनेश्वर की वन्दना की। तदनन्तर वैभारगिरि एवं विपुलाचल पर जिन-समाज को नमस्कार किया। श्रावकों ने नवीन जिन प्रासादों का निर्माण कर श्री ब्राह्मण कुण्ड और क्षत्रिय कुण्ड को विशेष रूप से भूषित किया वहां से लौटकर विहारादि स्थानों में पहुंचे। पुनः वापिस जाकर वैभार और विपुलाचल में जिन प्रतिमाओं को नमस्कार किया और अनेक की सविस्तार प्रतिष्ठा की। वहां से होते हुए वे अयोध्या पहुँचे और पंचतीर्थी को नमस्कार किया। साधार श्रावक के आग्रह से उन्होंने वहीं चातुर्मास किया।

इसके विधिपूर्वक वर्षग्रन्थिपर्व मनाया। वहां पंद्रह दिन ठहरे। फिर सैंकड़ों पैदल सिपाहियों सहित साधुराज रामदेव हमें लेने आया। दो प्रहर में सब मार्ग को पार कर हमने मेवाड़ के कविल-पाटक नाम के सुसज्जित नगर में श्रीविधिबोधिद विहार के श्रीकरहेटक पार्श्वनाथ की सादर वंदना की और वहीं चातुर्मास किया। मार्गशीर्ष के प्रथम षष्ठ के दिन श्री भागवत दीक्षा महोत्सव हुआ। दीक्षाएं ये थीं—

पूर्व नाम	दीक्षा नाम
१—चौरासी गाँवों में अमारि घोषणा कराने के लिये प्रसिद्ध मंत्रीश्वर अरसिंह की संतान बोथरा गोत्रीय लाखा का पुत्र धीणाक मंत्री	कल्याणविलास मुनि
२—काखोडा-गोत्रीय राणा का पुत्र जेहड	कीर्तिविलास मुनि
३—आहड वंशी खेता का पुत्र मीमड श्रावक	कुशलविलास मुनि
४—भूतपूर्व देश सचिव माल्हू शाखीय डूंगरसिंह की पुत्री उमा	मतिसुन्दरी साध्वी
५—व्यावहरिकवंशी महिपति की पुत्री हांसू	हर्षसुन्दरी साध्वी

इसके बाद साधुराज रामदेव ने पांच दिन अमारी की घोषणा करवाई और सात-आठ दिन गरीब श्रावकों की सहायता की। इसके बाद जब सब लोग अपने अपने स्थानों पर चले गए तो हम सेल्लहस्त खेमू श्रावक द्वारा आमन्त्रित होकर उसके शतपत्रिका आदि स्थानों में घूमे। इसके बाद यद्यपि हम गुजरात जाना चाहते थे तो भी साधुराज रामदेव के आग्रह से राजधानी पहुंचे। फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को सोमवार के दिन अमृतसिद्धियोग में जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव किया। वहां अनेक जिन प्रतिमाएं और श्री जिनरत्नसूरि की मूर्ति की स्थापना की। यह करहेटक पार्श्वनाथ की ही कृपा थी कि म्लेच्छ संकुल संनिवेशों में भी यह सब कार्य निराबाध सम्पन्न हुआ।

इसके बाद नरसागरपुर के निवासी मन्त्रीश्वर मुञ्जा के वंशज मंत्रीश्वर वीरा ने हमें लेने के लिये अपने भाई मन्त्रीश्वर मण्डलिक के पुत्र मन्त्री सारंग को भेजा। हम मंत्री सारंग के साथ सहित श्री करहेटक पार्श्वनाथ को नमस्कार कर फाल्गुन शुक्ला दशमी को रवाना हुये।

नागह्रद (नागदा) में हमने नवखण्ड पार्श्वनाथ के दर्शन किये। ईडर के किले में चौलुक्यराज द्वारा निर्मापित सुन्दर तोरण युक्त विहार वाले ऋषभदेव की, वडनगर में आदिनाथ और वर्द्धमान की, सिद्धपुर के चक्रवर्ती सिद्धराज जयसिंह द्वारा कारित देवालय में परमेष्ठी की

चार मूर्तियों की वंदना करते हुये हम चैत्र के प्रथम पक्ष में षष्ठी के दिन (?) पत्तनपुर पहुंचे।

मंत्रीश्वर वीरा बहुतसी भेंट लेकर खान से मिला। खान प्रसन्न हुआ और यात्रा के लिये फरमान प्रदान किया। उसके बाद प्रवेशक महोत्सव पूर्वक नगर में प्रवेश कर उसने श्री शान्तिनाथ की वंदना की और पुण्यशाला में गुरु को नमस्कार कर अपने स्थान पर गया।

उसने लकड़ी का सुन्दर एवं सुसज्जित देवालय तैयार किया। उसमें चैत्र की द्वितीय पक्ष की षष्ठी को श्री ऋषभदेव का निवेश किया। मंत्रीश्वर वीरा और मंत्री सारंग संघ के अधीश्वर बने। उन्होंने नरसमुद्र को सर्वथा तृप्त किया। चारों दिशाओं से लोग संघ में सम्मिलित हुए और श्री देवालय का निष्क्रमण महोत्सव अत्यन्त विस्तार से हुआ।

नरसमुद्र से निकल कर कुमरगिरि पर पहला प्रयाण हुआ। इसके बाद कुंकुमपत्रिकाओं द्वारा समाहूत मरु-मेदपाट-सपादलक्ष-माड-सिन्धु-बागड़-कौशल आदि देशों के लोगों सहित हम भी बैसाख की पहली तृतीया के दिन वहां पहुंचे। वहां से सलक्षणपुर पहुँचे। गेटा के पुत्र डूंगर ने प्रवेशक महोत्सव किया। सा० कोचर द्वारा उद्धारित विधिविहार में सैन्धव-पार्श्व को नमस्कार किया। दो दिन ठहर कर शंखेश्वरपुर पहुंचे और वहाँ चार दिन ठहरे। फिर पाटल पञ्चासर में नेमिजिन और वर्द्धमान को नमस्कार कर मण्डलग्राम पहुंचे। वहां शाहडमेर के परीक्षि विक्रम, राजापत्तन के काहड, स्तम्भतीर्थ के गोवल को महाधर पद दिया। वीरा ने उनका सम्मान किया और उनके संघपति पद सूचक तिलक कर संघपति स्थापनाचार्य विरुद प्राप्त किया। इसके बाद साधु तेजपाल के पुत्र कडुक सुश्रावक का सर्व श्री संघ में सब कार्य में प्राधान्य हुआ। इसके बाद म्यान द्राप देश से पं० हर्षचंद्रगणि हमसे मिले फिर सौराष्ट्र मंडल से भडियाउद्र स्थान में मिले हुए सौराष्ट्रपति के प्रसाद पात्र, अजाशहपुर पार्श्वनाथादि के समुद्धारक मुंजालदेव के नंदन वीरा के बड़े भाई पूर्ण सुश्रावक ने अक्षय तृतीया के दिन सम्पूर्ण संघनायकत्व धारण किया और हम प्रवेश महोत्सव सहित घोघावेलकुल स्थान में पहुँचे और नवखण्ड पार्श्वनाथ की वंदना की। वहीं श्री विनयप्रभ से साक्षात्कार हुआ। आगे बढ़ कर विमलाचल के निकट संघ ने तम्बू लगाए, यहां से शत्रुञ्जय दिखाई देने लगा। अनेक दानों द्वारा संघ ने सिद्धाचल के दर्शन को सफल किया। उसके बाद संघ पादलिप्तपुर होता हुआ शत्रुञ्जय पर्वत पर चढ़ा। प्राकार के अन्दर घुसकर खरतरविहार, नन्दीश्वरेन्द्र मण्डप, उज्जयन्तावतार, श्रीस्वर्गारोहण, त्रिलक्षतोरणादि स्थानों का सौन्दर्य देखता हुआ संघ विहार मण्डल में पहुंचा। वहां उसने युगादिदेव के दर्शन कर अपने आपको कृतकृत्य किया। संघपति मंत्री पूर्ण और मंत्री वीरा ने अनेक प्रकार से इस महातीर्थ की महिमा को स्फारित किया एवं ज्येष्ठ कृष्ण तृतीया को प्रतिष्ठा महोत्सव किया। हमने ६८ मूर्तियां

प्रतिष्ठित की। विस्तार पूर्वक मालारोपण महोत्सव हुआ। फिर युगप्रधान जिनकुशलसूरि की कीर्ति के विस्तारक मानतुंग नाम के खरतरविहार में संघपतियों ने पूजादि की। श्रीजिनरत्नसूरि को पूजनादि द्वारा प्रसन्न किया। फिर विमलाचल के विहारों में महाध्वजारोपण पूजा की। इस प्रकार वहां आठ दिन तक रहे।

इसके बाद संघ गिरिनार तीर्थ के लिये चला। विनयप्रभ महोपाध्याय शरीर से सशक्त न थे। अतः स्तम्भतीर्थ चले गए। अजागृहपुर में तीन दिन श्री पार्श्वनाथ की उपासना की। फिर अर्णापुर होते कोटिनारपुर पहुंचे और वहां अम्बिका का पूजन किया। देवपत्तनपुर में श्री चन्द्रप्रभ स्वामी आदि जिनवरों को नमस्कार किया। मांगल्यपुर में नवपल्लव पार्श्वनाथ की बन्दना की। हमने मन्त्रि पूर्ण द्वारा कारित दारुमयी पौषधशाला में तीन दिन तक विश्राम किया। श्रीजीर्णदुर्ग में श्री पार्श्वप्रभु को पूज कर खेताचल पर चढ़े। वहां नेमि जिनवर के दर्शन किये। वहां भी वीरा और पूर्ण ने शत्रुञ्जय की तरह कृत्य किये। पांच दिन वहां ठहर कर उज्जयन्त से उतरे। मांगल्यपुर पहुंचे। वहां लोगों के आग्रह के कारण ललितकीर्ति उपाध्याय, देवकीर्तिगणि, और साधुतिलक मुनि को रखा।

देवपत्तनपुर में दीक्षा महोत्सव हुआ। वहां मीहाकुल वाले मन्त्रीश्वर दांदू के पुत्र खेतसिंह का दीक्षा नाम क्षेममूर्तिमुनि और मान्हू शाखीय चाम्पा के पुत्र पद्मसिंह का नाम पुण्यमूर्तिमुनि रखा। फिर नवलखद्वीप होते हुए शेरीषक पत्तन पहुँचे और लोडणपार्श्वनाथ जिन को नमस्कार किया। वहां वीराने सुवर्णकलश चढ़ाया। श्रावण मास की पहली एकादशी को संघ ने नरसमुद्रपत्तन में प्रवेश किया।

आपके लिये मेवाड़ के देवनमस्कार के सफेद अक्षत, शत्रुञ्जय के पान और उज्जयन्त पूजन की सुपारी भेजते हैं। आप स्वीकार करें। यहां श्रीपत्तन में चातुर्मास सानन्द हुआ है।

संवत १४३१ जिनपञ्चक पंच कल्याणक द्वारा पवित्रित एकादशी के दिन श्रीपत्तनपुर में स्थित श्रीखरतरगच्छाचार्य श्री जिनोदयसूरि-गुरु के आदेश से उनके शिष्य मेरुनन्दन गणि ने अयोध्यापुरी स्थित श्री लोकहिताचार्य के लिये यह महा लेख समर्पित किया।

आचार्य जिनराजसूरि

सं० १४३३ फाल्गुन कृष्णा षष्ठी के दिवस अणहिलपुर (पाटण) में श्रीलोकहिताचार्य † ने इन्हें आचार्य पद प्रदान कर जिनोदयसूरि का पट्टधर घोषित किया। पट्टाभिषेक पद महोत्सव सा० कडुआ धरणा ने किया था। आप सवालाख श्लोक प्रमाण न्यायग्रन्थों के अध्येता थे। आपने अपने करकमलों से सुवर्णप्रभ, भुवनरत्न और सागरचन्द्र ¶ इन तीन मनीषियों को आचार्यपद प्रदान किया था। आपने सं० १४४४ में चित्तौड़गढ़ पर आदिनाथमूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। सं० १४६१ में देवकुलपाटक (देलवाड़ा) में आपका स्वर्गवास हुआ था। भक्तिवश आराधनार्थ देलवाड़ा के सा० नान्हक श्रावक ने आपकी मूर्ति बनाकर उनके पट्टधर श्रीजिनवर्धनसूरि से प्रतिष्ठा करवाई थी, जो आज भी देलवाड़ा में विद्यमान है। इस मूर्ति पर निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है:—

"सं० १४६९ वर्षे माघ सुदि ६ दिने ऊकेशवंशे सा० सोषा सन्ताने सा० सुहडापुत्रेण सा० नान्हकेन पुत्र वीरमादिपरिवारयुतेन श्रीजिनराजसूरिमूर्तिः कारिता प्रतिष्ठिता श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनवर्धनसूरिभिः।"

आपके कर कमलों से प्रतिष्ठित मूर्तियां आज भी अनेक नगरों में बड़ी संख्या में प्राप्त हैं।

---

† आपको जिनोदयसूरि ने आचार्य पद प्रदान किया था।

¶ सागरचन्द्राचार्य ने जेसलमेर के चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मन्दिर में श्रीजिनराजसूरि के आदेश से सं० १४५९ में जिन बिम्ब की स्थापना की थी—

नवेषुवार्धीन्दुमितेथ वत्सरे निदेशतः श्रीजिनराजसूरेः।
अस्थापयन् गर्भगृहेत्र बिम्बं, मुनीश्वराः सागरचन्द्रसाराः॥

जेसलमेर का तत्कालीन राजा लक्ष्मणदेव राउल सागरचन्द्राचार्य का बहुत कुछ प्रशंसक और भक्त था, जैसा कि निम्नलिखित पद्य से जाना जाता है:—

गांभीर्यवत्त्वात्परमोदकत्वाद्धार यः सागरचन्द्रलक्ष्मीम्।
युक्तं स भेजे तदिदं कृतज्ञः सूरीश्वरान् सागरचन्द्रपादान्॥

(वि० त्रि० प०)

आचार्य जिनभद्रसूरि

आचार्य जिनराजसूरि के पट्ट पर आचार्य श्रीजिनवर्धन को सागरचन्द्राचार्य ने स्थापित किया था, किन्तु उन पर देवी प्रकोप होगया था। अतः गच्छ की उन्नति के निमित्त उनको (जिनवर्धन को) पट्ट से उतार कर सं० १४७५ में श्रीजिनभद्रसूरि को स्थापित किया गया।

आप श्रीजिनराजसूरिजी के शिष्य थे। श्रीगुरुदेव ने ही आपको वाचक शीलचन्द्रगणि के निकट विद्याध्ययन के लिये रख छोड़ा था। आपने सम्पूर्ण सिद्धान्त-शास्त्रों का अध्ययन किया था। आप भणशाली† गोत्रीय थे। सं० १४४९ में चैत्र शुक्ला* षष्ठी को आर्द्रा नक्षत्र में आपका जन्म हुआ था। भादो आपका जन्म नाम था। सं० १४६१ में आपने दीक्षा ग्रहण की थी। जब आपकी पच्चीस¶ वर्ष की आयु हुई, तब आपको सर्व प्रकार से योग्य समझकर श्रीसागरचन्द्राचार्यजी ने सं० १४७५ माघ सुदि पूर्णिमा बुधवार को सात भकार अक्षरों को मिलाकर, भणसालिक नाल्हा शाह कारित नंदि महोत्सव पूर्वक आचार्यपद पर स्थापित किया था। इस महोत्सव में सवालाख रुपये व्यय हुये थे। वे सात भकार ये हैं—१ भाणसोलनगर, २ भाणसालिक गोत्र, ३ भादो नाम, ४ भरणी नक्षत्र, ५ भद्रा करण, ६ भट्टारक पद और ७ जिनभद्रसूरि नाम।

आपने जेसलमेर, जालोर, देवगिरि, नागोर, पाटण, माण्डवगढ़, आशापल्ली, कर्णावती, खम्भात आदि स्थानों पर हजारों प्राचीन और नवीन ग्रन्थ लिखवाकर भण्डारों में सुरक्षित किये; जिनके लिये केवल जैन समाज ही नहीं, किन्तु सारा साहित्य संसार भी चिरकृतज्ञ है। आपने आबू, गिरनार और जैसलमेर के मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी की थी। आपने जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा प्रचुर-परिमाण में की थी, उनमें से सैंकड़ों अब भी विद्यमान हैं।

श्री भावप्रभाचार्य और कीर्तिरत्नाचार्य को आपने ही आचार्य पद से अलंकृत किया था। सं० १५१४ मिगसिर वदि नवमी के दिन कुम्भलमेर में आपका स्वर्गवास हुआ।

जिनभद्रसूरि पट्टाभिषेक रास से निम्न बातें जानी जाती हैं :—

भरतखंड के मेवाड़देश में देउलपुर नामका नगर है। वहां लखपति राजा के राज्य में समृद्धिशाली छाजहड गोत्रिय श्रेष्ठि धीणिग नामक व्यवहारी निवास करता था। उसकी शीलादि विभूषिता सती स्त्री का नाम खेतलदेवी था। इनकी रत्नगर्भा कुक्षि से रामणकुमार ने जन्म लिया, वे असाधारण रूप गुण सम्पन्न थे।

---

† उ० जयसोमीय गुरुपर्वक्रम में छाजहडगोत्रीय सा० धीणिक भार्या खेतलदे का पुत्र लिखा है।
* N. P. कृष्णा। ¶ वही, १२ वर्ष। N. P. धीणिग

आचार्य श्री जिनभद्रसूरि जी की हस्तलिपि (पृष्ठ १८८)

अकबर प्रतिबोधक युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि जी (पृष्ठ २१८)
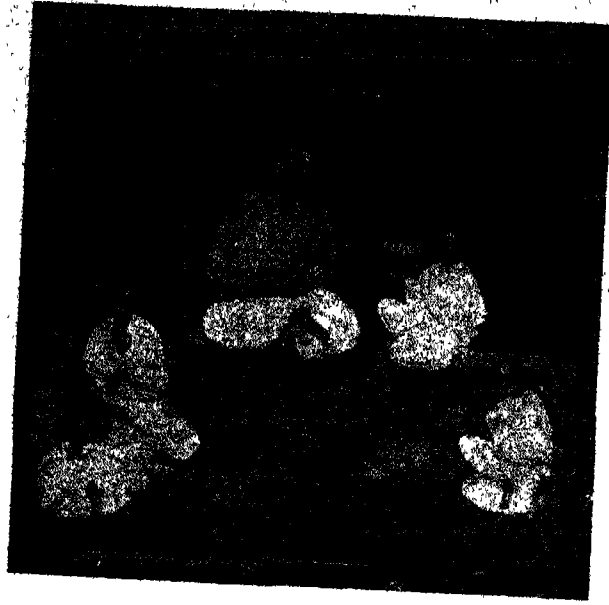
आचार्य जिनराजसूरि जी (द्वितीय) (पृष्ठ १६६)
(आचार्य विद्यमानता में ही सं० १६८१ में शालिवाहन चित्रित धन्ना शालिभद्र चौपाई से)
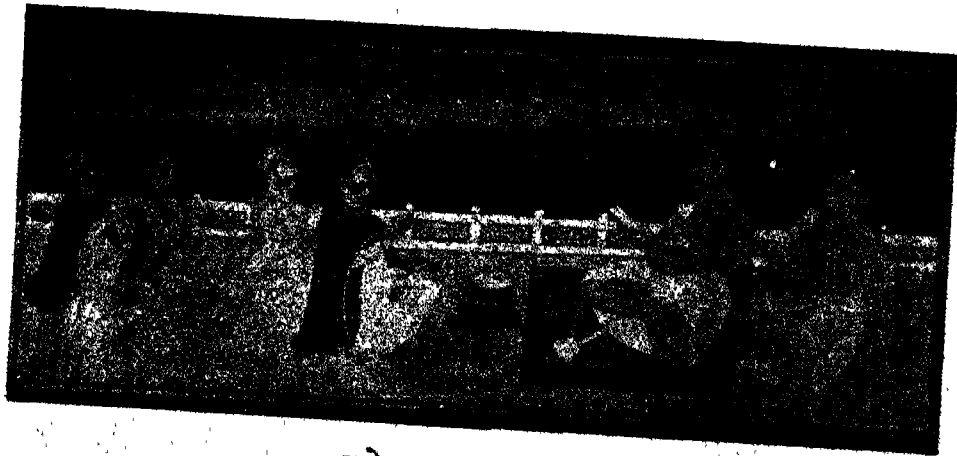
महोपाध्याय क्षमाकल्याण जी

एक बार जिनराजसूरिजी उस नगर में पधारे। रामणकुमार के हृदय में आचार्यजी के उपदेशों से वैराग्य परिपूर्ण रूप से जागृत हो गया। कुमार ने अपनी मातुश्री से दीक्षा के लिये आज्ञा मांगी। माता ने अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये-मिन्नत की, पर वह व्यर्थ हुई। अन्त में स्वेच्छानुसार आज्ञा प्राप्त कर ही ली। समारोहपूर्वक दीक्षा की तैयारियाँ हुईं। शुभ मुहूर्त में जिनराजसूरि ने रामणकुमार को दीक्षा देकर कीर्तिसागर नाम रखा। सूरिजी ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन करने के लिये उन्हें शीलचन्द्र गुरु को सौंपा। उनके पास इन्होंने विद्याध्ययन किया।

चन्द्रगच्छ शृङ्गार आचार्य सागरचंद्रसूरि ने गच्छाधिपति श्रीजिनराजसूरिजी के पट्ट पर कीर्तिसागरजी को बैठाना ठीक किया। भाणसउलीपुर में साहुकार नाल्हिग रहते थे, जिनके पिता का नाम सहुडा और माता का नाम आंबणि था। लीलादेवी के भरतार नाल्हिगशाह ने सर्वत्र कुंकुम पत्रिका भेजी। बाहर से संघ विशाल रूप में आने लगा। सं० १४७५ में शुभ मुहूर्त के समय सागरचंद्रसूरि ने कीर्तिसागर मुनि को सूरिपद पर प्रतिष्ठित किया। नाल्हिगशाह ने बड़े समारोह से पट्टाभिषेक उत्सव मनाया। नाना प्रकार के वाजिन्त्र बजाये गये और याचकों को मनोवांछित-दान देकर संतुष्ट किया गया।

आचार्य जिनचन्द्रसूरि

सं० १४८७ में जेसलमेर निवासी चम्मगोत्रीय साह वच्छराज के घर इनका जन्म हुआ। वाल्हादेवी इनकी माता थी। सं० १४९२ में ये दीक्षित हुये। आपका जन्म नाम करणा और दीक्षा नाम कनकध्वज था। सं० १५१५ ज्येष्ठ वदि¶ द्वितीया के दिन कुम्भलमेरु निवासी कूकड चौपड़ा गोत्रीय साह समरसिंह कृत नंदि महोत्सव में श्रीकीर्तिरत्नाचार्य ने पदस्थापना की। तदनन्तर अर्बुदाचल पर नवफणा पार्श्वनाथ के प्रतिष्ठापक तथा श्री धर्मरत्नसूरि आदि अनेक मुनियों को को आचार्यपद प्रदान करने वाले और सिन्ध, सौराष्ट्र, मालव आदि देशों में विहार करने वाले श्रीजिनचन्द्रसूरिजी सं० १५३०† में जेसलमेर में स्वर्गवासी हुये।

¶ N. P. K. S. वैशाख वदि, R. वैशाख सुदि। † N. P. S. १५३७।

आचार्य जिनसमुद्रसूरि

ये बाहडमेर निवासी पारखगोत्रीय देकोसाह के पुत्र थे। देवलदेवी इनकी माता का नाम था। सं० १५०६ में इनका जन्म हुआ और सं० १५२१ में दीक्षा इनने ग्रहण की। दीक्षा नन्दि महोत्सव पुञ्जपुर में मण्डप दुर्ग के निवासी श्रीमाल वंशीय सोनपाल ने किया था। दीक्षा नाम कुलवर्धन था। सं० १५३३ माघ शुदि त्रयोदशी के दिवस जेसलमेर में, संघपति श्रीमाल वंशीय सोनपाल कृत नंदिमहोत्सव में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने अपने हाथ से पद स्थापना की थी। ये पंच–नदी के सोमयक्ष आदि के साधक थे। सं० १५३६ में जेसलमेर के अष्टापद प्रसाद में आपने प्रतिष्ठा की थी। परम पवित्र चारित्र के पालक आचार्यश्री का सं० १५५५ † मिगसर वदि १४ को अहमदावाद में देवलोक हुआ।

आचार्य जिनहंससूरि

इनके पश्चात् गच्छनायक श्रीजिनहंससूरिजी हुये। सेत्रावा नामक ग्राम में चोपड़ा गोत्रीय साह मेघराज इनके पिता और श्रीजिनसमुद्रसूरिजी की बहिन कमलादेवी माता थी। सं० १५२४ में इनका जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम धनराज और धर्मरंग दीक्षा का नाम था तथा सं० १५३५ में बिक्रमपुर में दीक्षा ली थी। सं० १५५५ में अहमदाबाद नगर में आचार्य पद स्थापना हुई। तदनन्तर सं० १५५६ ज्येष्ठ सुदि नवमी के दिन रोहिणी नक्षत्र में श्रीबीकानेर नगर में बोहिथरा गोत्रीय करमसी मंत्री ने पीरोजी लाख रुपया व्यय करके पुनः आपका पद महोत्सव किया और उसी समय शान्तिसागराचार्य ने आपको सूरिमंत्र प्रदान किया। वहीं नमिनाथ चैत्य में बिम्बों की प्रतिष्ठा करवाई। तदनन्तर एक बार आगरा निवासी संघवी डूँगरसी, मेघराज, पोमदत्त प्रमुख संघ के आग्रह पूर्वक बुलाने पर आप आगरा नगर गये, उस समय बादशाह के भेजे हुये हाथी, घोड़े, पालकी, बाजे, छत्र, चँवर आदि के आडम्बर से आपका प्रवेशोत्सव कराया गया; जिसमें गुरुभक्ति, संघभक्ति आदि कार्य में दो लाख रुपये खर्च हुये थे। चुगलखोरों की सूचना के अनुसार बादशाह ने आपको बुलाकर धवलपुर में रक्षित कर चमत्कार दिखाने को कहा। तब आचार्य ने दैविक-शक्ति से बादशाह का मनोरंजन करके पांच सौ बंदीजनों (कैदियों) को छुड़वाया और अभय घोषणा कराकर उपाश्रय में पधार आये। तब सारे संघ को बड़ा हर्ष हुआ। तदनन्तर अतिशय सौभाग्यधारी, तीनों नगरों में तीन प्रतिष्ठाकारी तथा अनेक संघपति–प्रमुखपद स्थापक श्रीगुरुदेव पाटन नगर में तीन दिन अनशन करके सं० १५८२ में स्वर्गवासी हुये।

---

† N. P. १५५४ माघ।

आचार्य जिनमाणिक्यसूरि

आपने पट्ट पर उन्होंने श्री जिनमाणिक्यसूरिजी को स्थापित किया। इनका जन्म सं. १५४९ में कूकड़ चोपड़ा गोत्रीय साह राउलदेव की धर्म पत्नी रयणा देवी * की कुक्षी से हुआ। जन्म नाम सारंग था। सं. १५६० में बीकानेर में ग्यारह वर्ष की अल्पायु में आपने आचार्य जिनहंस के पास दीक्षा ग्रहण की। इनकी विद्वत्ता और योग्यता देखकर गच्छनायक श्री जिनहंससूरि ने स्वयं सं. १५८२ (माघ शुक्ल ५) भाद्रपद वदि ¶ त्रयोदशी को पाटण में शाह देवराजकृत नंदि महोत्सव पूर्वक आचार्य पद प्रदान कर के पट्ट पर स्थापन किया। आपने गुर्जर, पूर्व देश, सिन्ध और मारवाड़ आदि देशों में पर्यटन किया। पंच नदी ‡ का साधन किया। सं. १५९३ माघ शुक्ला प्रतिपदा गुरुवार को बीकानेर निवासी मंत्री कर्मसिंह के बनवाये हुये श्री नमिनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा की। कुछ वर्ष तक आप जेसलमेर विराजे। उस समय गच्छ के साधुओं में शिथिलाचार बढ़ गया था। प्रतिमोत्थापक मत का बहुत प्रसार हो रहा था। परिग्रह त्याग कर क्रियोद्धार करने की तीव्र उत्कण्ठा आपके हृदय में जागृत हुई। बीकानेर निवासी बच्छावत संग्रामसिंह ने गच्छ की रक्षा के लिये आपको बुलवाया। आपने भाव से क्रियोद्धार करके वहां से पहिले देराउर नगर को जाकर दादा श्री जिनकुशलसूरिजी की यात्रा के पश्चात् क्रियोद्धार करने का संकल्प किया। अपने इस निश्चय के अनुसार आप पहिले देराउर गुरु—यात्रार्थ पधारे। वहां गुरु—दर्शन करके जेसलमेर की ओर जाते समय मार्ग में जल के अभाव के कारण पिपासा परीसह उत्पन्न हुआ। रात्रि में थोड़ा सा जल मिला। भक्तों की आपसे उस थोड़े से जल को पीकर पिपासा शान्त कर लेने की प्रार्थना पर आपने दृढ़ता से उत्तर दिया कि इतने वर्षों तक पालन किये हुये चतुर्विधाहार व्रत को क्या आज एक दिन में भंग कर दूं? यह कभी नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार शुभ निश्चयों द्वारा व्रत भङ्ग न करके स्वयं अनशन द्वारा सं. १६१२ आषाढ़ शुक्ला पंचमी को देह त्याग कर स्वर्ग पधारे।

---

* उ. क्षमाकल्याणजी की पट्टावली में माता-पिता का नाम शाह जीवराज और पद्मादेवी लिखा है।

¶ समय. भाद्वा सुदी ६

‡ महोपाध्याय पुण्यसागर रचित पंच नदी साधना गीत के अनुसार सं. १५९५ आषाढ़ सुदी दशमी को पंच नदी साधन की।

आचार्य जिनचन्द्रसूरि

युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि के पिता रीहडगोत्रीय साह श्रीवंत थे, जो तिमरीनगर के निकटस्थ वडलीगांव में रहते थे। माता श्रीसिरियादेवी की कुक्षि से सं० १५९८ में आपका जन्म हुआ और सं० १६०४ में केवल ९ वर्ष की अवस्था में ही, पूर्व-पवित्र संस्कारों के द्वारा तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने के कारण दीक्षा ग्रहण करली। आपके दीक्षा गुरु श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी थे। आपका पूर्व नाम सुलतान कुमार था और दीक्षा नाम था सुमतिधीर। आचार्य जिनमाणिक्यसूरि का देराउर से जेसलमेर आते हुये मार्ग में ही स्वर्गवास हो गया था। अतः सं० १६१२ भाद्रपद शुक्ला ९ गुरुवार को जेसलमेर नगर में राउल मालदेव द्वारा कारित नंदिमहोत्सव पूर्वक आपको आचार्य पद प्रदान कर, जिनचन्द्रसूरि नाम प्रख्यात कर श्रीजिनमाणिक्यसूरि का पट्टधर (गच्छनायक) घोषित किया गया। यह काम बेगड़गच्छ (गच्छनायक की ही एक शाखा) के आचार्य श्रीपूज्य गुणप्रभसूरिजी के हाथों से हुआ। उसी दिन रात्रि में श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी ने प्रकट होकर समवसरण पुस्तक और जिनआम्नाय सहित सूरिमंत्र पत्र श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को दिखाया। आपका चित्त संवेग वासना से वासित था। गच्छ में शिथिलाचार देखकर आप सब परिग्रह का त्याग करने मंत्री संग्रामसिंह तथा मंत्रिपुत्र कर्मचन्द्र के आग्रह से बीकानेर पधारे। वहां का प्राचीन उपाश्रय शिथिलाचारी यतियों द्वारा रोका हुआ देखकर मंत्री ने अपनी अश्वशाला में ही आपका चातुर्मास कराया और बड़ी भक्ति प्रदर्शित की। वह स्थान आजकल रांगड़ी चौक में बड़ा उपाश्रय के नाम से प्रसिद्ध हैं।

गच्छ में फैले हुये शिथिलाचार को देखकर आप सहम गये। जिस आत्म-सिद्धि के उद्देश्य से चारित्र-धर्म का वेश ग्रहण किया गया; उस आदर्श का यथावत् पालन न करना लोकवञ्चना ही ही नहीं, अपितु आत्मवञ्चना भी है। गच्छ का उद्धार करने के लिये गच्छनायक को क्रिया उद्धार करना अनिवार्य है-इत्यादि विचारों के साथ ही आपके हृदय में क्रियोद्धार की प्रबल भावना उत्पन्न हुई। तदनुकूल सं० १६१४ चैत्र कृष्णा सप्तमी को आपने क्रियोद्धार किया। उसी दिवस प्रथम शिष्य रीहडगोत्रीय पं० सकलचंद्रगणि की दीक्षा हुई। तदनन्तर स्वसमान सदाचारी स्वधर्मपरायण साधुओं के साथ वहां से विहार करके मार्ग में स्थान-स्थान पर प्रतिमोत्थापक मत का उच्छेदपूर्वक स्वसमाचारी की दृढ़ता से स्थापना करते हुये क्रम से गुर्जरदेश में आये। वहां अहमदाबाद में ककड़ी के व्यापारी, मिथ्यात्वकुल में उत्पन्न हुये प्राग्वाट ज्ञाति के शिवा सोमजी नामक दो भाइयों को प्रतिबोध देकर सकुटुम्ब श्रावक बनाया। सं० १६१७ में पाटण में जिस समय तपगच्छीय प्रखर विद्वान किन्तु कदाग्रही उपाध्याय धर्मसागरजी ने गच्छ विद्वेषों का सूत्रपात किया, उस समय आचार्यश्री ने उसको शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया, किन्तु उसके न आने पर तत्कालीन अन्य समस्त गच्छों के आचार्यों के समक्ष धर्मसागरजी को उत्सूत्रवादी घोषित किया। इतने पर भी वह

कुचेष्टा से विरत नहीं हुआ। फिर उसके भ्रम को—नवाङ्गी-वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी खरतर-गच्छ में नहीं हुये—दूर करने के लिये आपने चौरासी गच्छ के आचार्यों के सामने सिद्ध कर दिया कि श्रीअभयदेवसूरि खरतरगच्छीय ही थे; जो सब ने एकमत होकर, पत्र पर हस्ताक्षर कर स्वीकार किया।

एक समय तत्कालीन सम्राट अकबर के आमन्त्रण से आप खम्भात से विहार कर सं० १६४८ फाल्गुन शुक्ला द्वादशी के दिवस महोपाध्याय जयसोम, वाचनाचार्य कनकसोम, वाचक रत्ननिधान और पं. गुणविनय प्रभृति ३१ साधुओं के परिवार सहित लाहोर में सम्राट से मिले। स्वकीय उपदेशों से सम्राट को प्रभावित कर आपने तीर्थों की रक्षा एवं अहिंसा प्रचार के लिये आषाढ़ी अष्टाह्निका एवं स्तम्भतीर्थीय जलचर रक्षक आदि कई फरमान प्राप्त किये थे। सम्राट ने पंच नदी के पीरों के साधन प्रसंग से विशेष चमत्कृत हो सूरिजी को भी साधन करने के लिये प्रार्थना की थी। सम्राट के कथन एवं संघ की उन्नति के हेतु सूरिजी ने पंच नदी साधन करने का विचार किया। उस प्रसंग की अनुकूलता प्राप्त कर आपने वहां से विहार किया। ग्रामानुग्राम में धर्म प्रचार करते हुये संघ के साथ मुलतान पधारे। आपका आगमन सुनकर नगर के सारे लोगों ने जिनमें खान, मल्लिक और शेख आदि भी थे- आपके दर्शन से हर्षित होकर बड़ी धूम-धाम से नगर प्रवेशोत्सव किया। इस प्रवास में आपको सम्राट् की आज्ञा से सर्वत्र अनुकूलता रही। अभय-दान आदि धर्मतत्त्वों का अच्छा प्रचार हुआ। सं. १६५२ में पंच नदी साधन की। सिन्ध देश और पञ्जाब प्रान्त में आपकी प्रशस्त कीर्ति फैली तथा जैन धर्म की उन्नति और महती वृद्धि हुई।

आपके सामयिक अनन्त चमत्कारों से प्रभावित होकर स्वयं सम्राट् ने सं. १६४९ फाल्गुन वदि दशमी के दिवस आपको युगप्रधान पद से अलंकृत किया। इस विशाल महोत्सव में महामंत्री श्री कर्मचन्द्र वच्छावत ने एक करोड़ रुपये व्यय किये थे। एक समय सम्राट् जहांगीर ने जब सिद्धिचन्द्र नामक व्यक्ति को अन्तपुर में दूषित कार्य करते देखकर, कुपित होकर समग्र जैन साधुओं को कैद करने तथा राज्य सीमा से बाहिर करने का हुक्म निकाल दिया था, तब जैन शासन की रक्षा के निमित्त आचार्य श्री ने वृद्धावस्था में भी आगरा पधार कर सम्राट् जहांगीर (जो उनको अपना गुरु मानता था) को समझाकर इस हुक्म को रद्द करवाया।

आप जैसे प्रकाण्ड विद्वान् थे, वैसे ही दुर्द्धर्ष चारित्र का पालन करने में भी अग्रगण्य थे। आचार्य पद प्राप्त करने के बाद ही क्रियोद्धार करके दृढ़ता के साथ उत्कृष्ट संयम पालने में आप सर्वदा कटिबद्ध रहे। उत्कृष्ट चारित्र का प्रभाव उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होता रहा। फलतः आपके उपदेशों से असंख्य भव्यात्माओं ने सर्वविरति चारित्रधर्म और सैंकड़ों ने देशविरति व्रत ग्रहण किये और हजारों ग्रन्थ लिखवा कर श्रुतज्ञान को चिरस्थायी किया। सैंकड़ों नवीन जिनप्रासाद और जिनबिम्बों की

प्रतिष्ठाएँ कीं। आप के उपदेशों से धार्मिक सप्त क्षेत्रों में करोड़ों रुपये वितरण किये गये। आपके चारित्रव्रत के तेजोमय प्रताप से ही सम्राट अकबर और जहांगीर आदि मुग्ध हो गए थे। यही कारण था कि कठिन से कठिन कार्य भी अनायास सफल हो सके थे। इस प्रकार दीक्षा के बाद से ही ६६ वर्षों के अविरत परिश्रम से जैनशासन का सुदृढ़ प्रचार करके सं० १६७० आश्विन कृष्णा द्वितीया को बिलाड़ा गाँव में आपका स्वर्गवास हुआ था। महामंत्री कर्मचंद्र बच्छावत और अहमदाबाद के प्रसिद्ध श्रेष्ठी संघपति श्री सोमजी शिवा आदि आपके प्रमुख उपासक थे।

आचार्य जिनसिंहसूरि

आचार्य जिनसिंहसूरि युगप्रधान जिनचंद्रसूरि के पट्टधर थे और साथ ही थे एक असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान्। इनका जन्म वि० सं० १६१५ के मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा को खेतासर† ग्राम निवासी चोपड़ा गोत्रीय शाह चांपसी की धर्मपत्नी श्रीचाम्पलदेवी की रत्नकुक्षि से हुआ था। आपका जन्म नाम मानसिंह था। सं० १६२३ में आचार्य जिनचंद्रसूरि खेतासर पधारे थे, तब आचार्यश्री के उपदेशों से प्रभावित होकर एवं वैराग्य वासित होकर आठ वर्ष की अल्पायु में ही आपने आचार्यश्री के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षावस्था का नाम महिमराज रखा गया था। आचार्यश्री ने सं० १६४० माघ शुक्ला ५ को जेसलमेर में आपको वाचक पद प्रदान किया था। 'जिनचन्द्रसूरि अकबर प्रतिबोध रास' के अनुसार सम्राट अकबर के आमंत्रण को स्वीकार कर सूरिजी ने वाचक महिमराज को गणि समयसुन्दर आदि ६ साधुओं के साथ अपने से पूर्व ही लाहोर भेजा था। वहां सम्राट् आपसे मिलकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ था। सम्राट के पुत्र शाहजादा सलीम (जहांगीर) सुरत्राण के एक पुत्री मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न हुई थी; जो अत्यन्त अनिष्टकारी थी। इस अनिष्ट का परिहार करने के लिये सम्राट की इच्छानुसार सम्वत् १६४८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को महिमराजजी ने अष्टोत्तरी शान्तिस्नात्र करवाया, जिसमें लगभग एक लक्ष रुपया व्यय हुआ था और जिसकी पूजा की पूर्णाहुति (आरती) के समय शाहजादा ने १००००) रुपये चढ़ाये थे।

काश्मीर विजय यात्रा के समय सम्राट की इच्छा को मान देते हुये आचार्यश्री ने वाचक महिमराज को हर्षविशाल आदि मुनियों के साथ काश्मीर भेजा था। उस प्रवास में वाचक महिमराज की अवर्णनीय उत्कृष्ट साधुता और प्रासंगिक एवं मार्मिक चर्चाओं से अकबर अत्यधिक

† सूरचन्द्र कृत रासानुसार, बीठावास।

प्रभावित हुआ। उसी का फल था कि वाचक जी की अभिलाषानुसार गजनी, गोलकुण्डा और काबुल पर्यन्त अमारि (अभयदान) उद्घोषणा करवाई और मार्ग में आगत अनेक स्थानों (सरोवर) के जलचर जीवों की रक्षा कराई। काश्मीर विजय के पश्चात् श्री न ग र में सम्राट को उपदेश देकर आठ दिन की अमारी उद्घोषणा कराई थी।

वाचक जी के चारित्रिक गुणों से प्रभावित होकर सम्राट् अकबर ने आचार्यश्री को निवेदन कर बड़े ही उत्सव के साथ आपको सं. १६४९ फाल्गुन कृष्णा दशमी के दिन आचार्य श्री के ही कर-कमलों से आचार्य पद प्रदान करवा कर जिनसिंहसूरि नाम रखवाया।

सम्राट् जहांगीर भी आपकी प्रतिभा से काफी प्रभावित था। यही कारण है कि अपने पिता का अनुकरण कर सम्राट् जहांगीर ने आपको युगप्रधान पद प्रदान किया था।

गच्छनायक बनने के पश्चात् आपकी अध्यक्षता में मेड़ता निवासी चोपड़ा गोत्रीय शाह आशकरण द्वारा शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला गया था।

सं. १६७४ में आपके गुणों से आकर्षित होकर आपका सहवास एवं धर्मबोध-प्राप्त करने के लिये सम्राट् जहांगीर ने शाही स्वागत के साथ अपने पास बुलाया था। आचार्य श्री भी बी का ने र से विहार कर मेड़ता आये थे। दुर्भाग्य वश वहीं सं. १६७४ पौष शुक्ला त्रयोदशी को आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य जिनराजसूरि

बीकानेर निवासी बोहिथरा गोत्रीय श्रेष्ठी धर्मसी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धारलदे था। सं० १६४७ वैशाख सुदि ७ बुधवार, छत्रयोग, श्रवण नक्षत्र में इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम खेतसी था। सं० १६५६ मिगसर सुदि † ३ को इनने आचार्य जिनसिंहसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम राजसिंह रखा गया, किन्तु बृहद् दीक्षा के पश्चात् इनका राजसमुद्र नाम रखा गया था। बृहद् दीक्षा यु० श्रीजिनचन्द्रसूरि ने दी थी। आसाउल में उपाध्याय पद स्वयं युगप्रधानजी ने सं० १६६८ में दिया था। जेसलमेर में राउल भीमसिंहजी के सन्मुख आपने तपागच्छीय सोमविजयजी को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। आचार्य जिनसिंहसूरि के स्वर्गवास होने पर ये सं० १६७४ फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को मेड़ता में गणनायक आचार्य बने। इसका पट्ट-महोत्सव मेड़ता निवासी चौपड़ा गोत्रीय संघवी आसकरण ने किया था। पूर्णिमापक्षीय श्रीहेमाचार्य ने सूरिमंत्र प्रदान किया था। अहमदाबाद निवासी संघपति सोमजी कारित शत्रुञ्जय की खरतरवसही में सं० १६७५ वैशाख शुक्ला १३ शुक्रवार को ७०० मूर्तियों की इन्हीं ने प्रतिष्ठा की थी। जेसलमेर निवासी भणशाली गोत्रीय संघपति थाहरु कारित, जैनों के प्रसिद्ध तीर्थ लौद्रवाजी की प्रतिष्ठा भी सं० १६७५ मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को इन्हीं ने की थी और इनकी की ही निश्रा में सं० थाहरू ने शत्रुञ्जय का संघ निकाला था। भाणवड पार्श्वनाथ तीर्थ के स्थापक भी ये ही थे। आपने सं० १६७७ ज्येष्ठ वदि ५ को चोपड़ा आसकरण कारापित शान्तिनाथ आदि मन्दिरों की प्रतिष्ठा की थी; ‡ और बीकानेर, अहमदाबाद आदि नगरों में ऋषभदेव आदि मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी की थी। कहा जाता है कि अम्बिकादेवी आपको प्रत्यक्ष थी और देवी की सहायता से ही घङ्घाणी तीर्थ में प्रकटित मूर्तियों के लेख आपने बाँचे थे। आपकी प्रतिष्ठापित सैंकड़ों मूर्तियां आज भी उपलब्ध हैं। सं० १६९९ आषाढ शुक्ला ९ को पाटण में इनका स्वर्गवास हुआ था*। आप न्याय, सिद्धान्त और साहित्य के उद्भट विद्वान् थे। आपने स्थानाङ्ग सूत्र विषम पदार्थ व्याख्या और नैषध काव्य पर 'जैनराजी' नाम की टीका (३६०० श्लोक परिमाण) आदि अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया था।

---

† समय. १६५७ मि० सु० १। ‡ देखें, मेरी सम्पादित प्रतिष्ठा लेख संग्रह प्रथम भाग।

* सं० १६८६ मार्गशीर्ष कृष्णा ४ रविवार को आगरे में सम्राट शाहजहां से आप मिले थे और वहां वाद-विवाद में ब्राह्मण विद्वानों को पराजित किये थे एवं स्वदर्शनी लोगों के विहार का जहां कहीं प्रतिषेध था वह खुलवाकर शासन की उन्नति की थी। राजा गजसिंहजी, सूरसिंहजी, असरफखान, आलम दीवान आदि आपके प्रशंसक थे।

जिनराजसूरि प्रबन्ध के अनुसार निम्न उल्लेखनीय विशेष बातें हैं :— आपने ६ मुनियों को उपाध्याय पद, ४१ को वाचक पद और एक साध्वी को प्रवर्तिनी पद दिया था। ८ बार शत्रुंजय की यात्रा

आचार्य जिनरत्नसूरि

आचार्य श्रीजिनराजसूरि के पट्ट पर आचार्य श्रीजिनरत्नसूरि विराजे। आप सेरूणा ग्राम निवासी लूणीयागोत्रीय साह तिलोकसी के पुत्र थे। आपकी माता का नाम तारादेवी था। आपका जन्म सं० १६७० में हुआ था। आपका जन्म नाम रूपचन्द था। निर्मल वैराग्य के कारण आपने अपनी माता और भाई रतनसी के साथ सं० १६८४ में दीक्षा ग्रहण की थी। आपको जोधपुर में आचार्यश्री से वासक्षेप की पुड़िया मँगाकर उपाध्याय साधुसुन्दर ने दीक्षा प्रदान की थी†। आपके गुणों से योग्यता का निर्णय कर जिनराजसूरिजी ने अहमदाबाद बुलाकर आपको उपाध्याय पद प्रदान किया। इस समय जयमाल, तेजसी ने बहुतसा द्रव्य व्यय कर उत्सव किया था। सं० १७०० आषाढ़ शुक्ला नवमी को पाटण में आचार्य श्रीजिनराजसूरि ने स्वहस्त से ही सूरिमंत्र प्रदान कर अपना पट्टधर घोषित किया था। पाटण से विहार कर जिनरत्नसूरिजी पाल्हणपुर पधारे। वहां संघ ने हर्षित हो उत्सव किया। वहां से स्वर्णगिरि के संघ के आग्रह से वहां पधारे। श्रेष्ठि पीथे ने प्रवेशोत्सव किया। वहां से मरुधर में विहार करते हुये संघ के आग्रह से बीकानेर पधारे, नथमल बेणे ने बहुत-सा द्रव्य व्यय करके प्रवेश उत्सव किया। वहाँ से उग्र विहार करते हुये सं० १७०१ का वीरमपुर में संघाग्रह से चातुर्मास किया।

† आपकी दीक्षा–आचार्य पद के सम्बन्ध में सं० १७७२ लि० पत्र में लिखा है :—

"श्री सेरूणा नगर निवासी लूणिया सा० पिता तिलोकसी माता सावकी तारादे अनइ सगी तेजलदेना पुत्र बे। बड़ा नउ नाम रतनसी अने लहुडा नउ नाम रूपचन्द। सुखे समाधै रहतां भ० श्रीजिनराजसूरि बीकानेर आव्या। तिहां पिता परोक्ष थया पछे माता तेजलदे नइ वइराग उपनउ। बे बेटा साथे लई श्री बीकानेर आवी। श्रीपूज्यजी ने वीनव्या–मुझनइ बेटा सहित दीक्षा द्यो। तिवारइ श्रीपूज्यजी लाभ जाणी माता तेजलदे अनइ रतनसी वरस १६ ना था–बेऊँ ने दीक्षा दीधी। लघुबंधव भाई रूपचन्द ८ वरस ना था, ते गृहस्थ पणे भाव चारित्रीयउ करि राख्या। गृहस्थानें घरै जीमैं अनइ भणै गुणै। तिवारई ××× विमलकीर्ति गणिए ×××महाव्याकरण काव्य××× आदि भणाव्या। ××जालोर में विजयदेवसूरि के सम्मुख १२ वर्ष की अवस्था में ५ घन्टा तक धारा प्रवाह संस्कृत बोलते देख उनने कहा था कि 'आपके पाट के अत्यधिक योग्य होगा। ×××सं० १६८४ वै० शु० ३ को १४ वर्ष की अवस्था में जोधपुर में आपको दीक्षा दी गई। दीक्षोत्सव भणशाली गोत्रीय मंत्रि सा० सहसकरण सुत मंत्रि जसवन्त ने किया था। ××दीक्षा पश्चात् यावज्जीवन के लिये कढाई विगय का त्याग कर दिया था। ××बृहद्दीक्षा जिनराजसूरि जी ने देकर रत्नसोम नाम रखा।

की। पाटण के संघ के साथ गौड़ी पार्श्वनाथ, गिरनार, आबू, राणकपुर की यात्रा की। पाली के देरासर के ध्वज-दण्ड की प्रतिष्ठा की। नवानगर के चातुर्मास के समय में दोसी माधव आदि ने ३६०० जम-शाह व्यय की। आगरे में १६ वर्ष की अवस्था में 'चिन्तामणि' शास्त्र का पूर्ण अध्ययन किया। पाली में प्रतिष्ठा की। राउल कल्याणदास और रावकुँवर मनोहरदास के आमन्त्रण से आप जैसलमेर पधारे, संघवी आहक ने प्रवेशोत्सव किया। आपके शिष्य-प्रशिष्यों की संख्या ४१ थी।

चातुर्मास समाप्त होते ही सं० १७०२ में बाड़मेर आये। संघ के आग्रह से चातुर्मास वहीं किया। वहां से विहार कर सं० १७०३ का चातुर्मास कोटड़ में किया। चातुर्मास समाप्त होने पर वहां से जेसलमेर के श्रावकों के आग्रह से जेसलमेर आये। साह गोपा ने प्रवेशोत्सव किया। संघ के आग्रह से सं० १७०४ से १७०७ तक के चार चातुर्मास आपने जेसलमेर ही किये। वहां से आगरा आये। मानसिंह ने बेगम की आज्ञा प्राप्त कर सूरिजी का प्रवेशोत्सव बड़े समारोह से किया। सं० १७०८ से १७११ चार चातुर्मास आगरा में ही किये। आप शुद्ध क्रिया-चारित्र के अभ्यासी थे। आपने अनेक नगरों में विहार करके जैन सिद्धान्तों का प्रचार, प्रसार किया और सं० १७११ श्रावण कृष्णा सप्तमी के दिन आगरा में आप देवलोक पधारे। अन्त्येष्ठि क्रिया के स्थान पर श्रीसंघ ने स्तूप-निर्माण करवाया था।

आचार्य जिनचन्द्रसूरि

उनके बाद आचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरि उनके पट्ट पर आसीन हुये। आपके पिता का नाम बीकानेर निवासी गणधर चोपड़ा गोत्रीय साह सहसकिरण और माता का नाम सुपियार देवी था। आपका जन्म नाम हेमराज तथा दीक्षा नाम हर्षलाभ था। १२ वर्ष की अवस्था में आपने जेसलमेर में दीक्षा ग्रहण की थी। सं० १७११ भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को राजनगर में नाहटा गोत्रीय साह जयमल्ल तेजसी की माता कस्तूरबाई कृत महोत्सव द्वारा आपकी पद स्थापना हुई। गच्छ में क्रिया शैथिल्य देखकर सं० १७१८ आसोज सुदि १० सोमवार को बीकानेर में व्यवस्था-पत्र द्वारा शैथिल्य का त्याग करवाया था। तदनन्तर आपने जोधपुर निवासी साह मनोहरदास द्वारा कारित श्रीसंघ के साथ श्री शत्रुञ्जय यात्रा की और मंडोवर नामक नगर में संघपति मनोहरदास द्वारा कारित चैत्यमुद्धार में श्रीऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिष्ठा की थी। इस प्रकार अनेक देशों में विचरण करने वाले, सब सिद्धान्तों के पारदर्शी श्रीजिनचन्द्रसूरि सं० १७६३ में सूरत-बन्दर में देवलोक हुये।

आचार्य जिनसुखसूरि

आचार्य जिनचन्द्र के बाद श्रीजिनसुखसूरि पट्ट पर विराजे। ये फोगपत्तन निवासी साह-लेचा बोहरा गोत्रीय साह रूपसी* के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सुरूपा था। इनका जन्म सं० १७३९ मार्गशीर्ष शुक्ल १५ को हुआ था। सं० १७५१ की माघ सुदि पंचमी को आपने

* पिता रूपचन्द माता रतनादे।

पुण्यपालसर ग्राम में दीक्षा ग्रहण की। आपका दीक्षा नाम सुखकीर्ति था। सूरत निवासी चोपड़ा गोत्रीय पारख सामीदास ने ग्यारह हजार रुपये व्यय करके सं० १७६३ आषाढ सुदि एकादशी के दिन आपका पट्ट महोत्सव किया था।

फिर एक समय घोघाबिंदर में नवखण्डा पार्श्वनाथ की यात्रा करके आचार्य श्रीजिनसुखसूरि संघ के साथ स्तंभतीर्थ जाने के लिये नाव में बैठे। दैवगति से ज्यों ही नाव समुद्र के बीच में पहुँची कि उसके नीचे की लकड़ी टूट गई। ऐसी अवस्था में नाव को जल से भरती हुई देखकर आचार्यश्री ने अपने इष्ट देव की आराधना की। तब श्रीजिनकुशलसूरि की सहायता से एकाएक उसी समय एक नवीन नौका दिखाई दी। उसके द्वारा वे समुद्र के पार जा सके। फिर वह वहीं अदृश्य हो गई। इस प्रकार श्री शत्रुञ्जय आदि तीर्थों को यात्रा करने वाले, सब शास्त्रों के पारगामी तथा शास्त्रार्थ में अनेक वादियों को परास्त करने वाले आचार्य श्रीजिनसुखसूरि तीन दिन का अनशन पूर्ण कर सं० १७८० ज्येष्ठ कृष्णा दशमी को श्री रिणी नगर में स्वर्ग सिधारे। उस समय देवों ने अदृश्य रूप में बाजे बजाये; जिनके घोष को सुनकर उस नगर के राजा तथा सारी प्रजा चकित हो गई थी। अन्त्येष्टि क्रिया के स्थान पर श्रीसंघ ने एक स्तूप बनाया था; जिसकी प्रतिष्ठा माघ शुक्ला षष्ठी को जिनभक्तसूरि ने की थी।

आचार्य जिनभक्तिसूरि

उनके पट्ट पर श्रीजिनभक्तिसूरि आसीन हुये। इनके पिता श्रेष्ठि गोत्रीय साह हरिचन्द्र थे, जो इन्द्रपालसर नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी माता थी हरसुखदेवी। सं० १७७० ज्येष्ठ सुदि तृतीया को आपका जन्म हुआ था। जन्म नाम आपका भीमराज था और सं० १७७६ माघ शुक्ल सप्तमी को दीक्षा ग्रहण के बाद दीक्षा नाम भक्तिक्षेम डाला गया। सं० १७८०[¶] ज्येष्ठ वदि तृतीया के दिन रिणीपुर में श्रीसंघकृत महोत्सव करके गुरुदेव ने अपने हाथ से इन्हें पट्ट पर बैठाया था। तदनन्तर आपने अनेक देशों में विचरण किया। सादड़ी आदि नगरों में विरोधियों को हस्तिचालनादि प्रकार से (?) परास्त करके विजयलक्ष्मी को प्राप्त करने वाले, सब शास्त्रों में पारङ्गत, श्रीसिद्धाचल आदि सब महातीर्थों की यात्रा करने वाले और श्री गूढा नगर में अजितजिन चैत्य के प्रतिष्ठापक, महातेजस्वी, सकलविद्वज्जनशिरोमणि आचार्य श्रीजिनभक्तिसूरि के श्रीराजसोमोपाध्याय, श्रीरामविजयोपाध्याय और श्रीप्रीतिसागरोपाध्याय[†] आदि कई शिष्य हुये। आप कच्छदेश मण्डन श्री मांडवी बिंदर में सं० १८०४ में ज्येष्ठ सुदि चतुर्थी को दिवङ्गत हुये। उस रात्रि को आपके अग्नि-संस्कार की भूमि (श्मशान) में देवों ने दीपमाला की।

[¶] १७७६ ऐ० जै० का० सं० पृ० २५२। [†] इन्हीं की परम्परा में सम्पादक है।

आचार्य जिनलाभसूरि

आचार्य श्रीजिनभक्तिसूरि के बाद श्रीजिनलाभसूरि बीकानेर निवासी बोहित्थरा गोत्रीय साह पंचायणदास के पुत्र थे। पद्मादेवी इनकी माता थी। आपका जन्म सं० १७८४ श्रावण शुक्ला पंचमी को बापेऊ ग्राम में हुआ था। जन्म नाम लालचन्द्र था। इनने सं० १७९६ ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी को जेसलमेर नगर में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम लक्ष्मीलाभ रक्खा गया। सं० १८०४ ज्येष्ठ सुदि पंचमी को मांडवीबंदर में आपकी पद स्थापना हुई, जिसका पाट महोत्सव छाजहड़ गोत्रीय साह भोजराज ने किया था। तदनन्तर† जेसलमेर बीकानेर आदि कई देशों में विचरण करके आपने सं० १८१९ ज्येष्ठ वदि पंचमी को पचहत्तर साधुओं के साथ श्रीगौडी-पार्श्वनाथ की यात्रा की। फिर सं० १८२१ फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा को पच्यासी मुनियों के साथ

† ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के काव्यों का ऐतिहासिक सार पृष्ठ ३१ पर सं० १८०४ से १८३४ का वृत्त इस प्रकार दिया है :—

सं० १८०४ भुज, वहां से गुढ़ा होकर १८०५ में जेसलमेर पधारे, वहां १८०८ से १० तक रहे। इसके पीछे बीकानेर में (१८१० से १८१४ तक) ५ वर्ष रहकर स० १८१५ को वहां से विहार कर गारबदेसर शहर में (१८१५) चौमासा किया। वहां ८ महीने विराजने के पश्चात मि० व० ३ विहार कर थलीप्रदेश को बंदाते हुये जेसलमेर में प्रवेश किया। वहां (१८१६-१७-१८-१९) ४ वर्ष अवस्थिति कर लोद्रवे तीर्थ में सहस्रफणा पार्श्वनाथजी की यात्रा की। वहां से पश्चिम की ओर विहार कर गोडीपार्श्वनाथ की यात्रा कर गुढे (स० १८२०) में चौमासा किया। चतुर्मास के अनन्तर शीघ्र विहार कर महेवा प्रदेश को बँदाकर महेवे में नाकोड़े पार्श्वनाथ की यात्रा की, वहां से विहार कर जलोल में (सं० १८२१) चतुर्मास किया। वहां से खेजड़ले, खरिया रहकर रोहीठ, मन्डोवर, जोधपुर, तिमरी होकर मेड़ते (१८२३) पधारे। वहां ४ महीने रहकर जयपुर शहर पधारे, वह शहर क्या था मानो स्वर्ग ही पृथ्वी पर उतर आया हो। वहां वर्ष दिन की भांति और दिन घड़ी की भांति व्यतीत होते थे। जयपुर के संघ का आग्रह होने पर भी पूज्यश्री वहां नहीं ठहरे और मेवाड़ की ओर विहार कर यश प्राप्त किया। उदयपुर से १८ कोस पर स्थित धूलेवा में ऋषभेश की यात्रा कर उदयपुर (१८२४) पधारे और विशेष विनती से पाली-बाले (१८२५) पाट विराजे। नागौर (का संघ) बीच में अवश्य आ गया, यह जानते हुए भी साचौर (अपने मन की तीव्र इच्छा से सं० १८२६) पधारे। इस समय सूरत के धनाढ्यों ने योग्य अवसर जानकर विनती पत्र भेजा और पूज्यश्री भी उस ओर विहार करने से अधिक लाभ जान (१८२७) सूरत पधारे।

वहां के श्रावकों को प्रसन्न कर आप पैदल विचरते हुये (१८२९) राजनगर पधारे। वहां तालेवर ने बहुत उत्सव किये और २ वर्ष तक रात दिन सेवा की। वहां से श्रावक संघ के साथ शत्रुञ्जय, गिरनार की यात्रा कर (१८३०) वेलाउल के संघ को बँदाया। वहां से मांडवी (१८३१) पधारे। वहां अनेक कोट्यधीश और कराधिपति व्यापारी निवास करते थे। समुद्र से उनका व्यापार चलता था। उन्होंने एक वर्ष तक खूब द्रव्य व्यय किया। वहां से अच्छे मुहूर्त में विहार कर भुज (१८३२) आये। वहां के संघ ने भी श्रेष्ठ भक्ति की। इस प्रकार १८ वर्ष तक नवीन-नवीन देशों में विचरे। कवि कहता है कि अब तो बीकानेर शीघ्र पधारिये। अन्य साधनोंसे ज्ञात होता है कि भुज से विहार कर १८३३ का चौमासा मनरा-बन्दर कर सं० १८३४ का चौमासा गुढ़ा किया और वहीं स्वर्ग सिधारे (गीत नं० ४)।

श्रीआबूतीर्थ की यात्रा की। तदनन्तर आप घाणेराव, सादड़ी नाम के दो नगरों में चोपड़ा-बखतसाह आदि द्वारा किये गये महोत्सव में पधारे। वहाँ विघ्न करने के लिये आये हुये विरोधियों का बुद्धि बल से पराजय करके जय के बाजे बजवाये। उस देश में राणपुरादि पांच तीर्थों की यात्रा करके बेनातट, मेदिनीतट, रूपनगर, जयपुर, उदयपुर आदि नगरों में भ्रमण करके सं० १८२५ वैसाख शुक्ला पूर्णिमा को अठ्यासी मुनियों के साथ श्रीधूलेवा गढाधिष्टायक (केशरियाजी) ऋषभदेव की यात्रा की। वहां से पल्लिका, सत्यपुर, राधनपुर आदि नगरों में विचरण करते हुये श्रीसंखेश्वर पार्श्वनाथ की यात्रा करके सेठ गुलालचन्द, सेठ भाईदास आदि श्रीसंघ के आग्रह से सूरतबिंदर में गये। वहां सं० १८२७ वैशाख सुदि द्वादशी को आदि गोत्रीय साह नेमीदास के पुत्र शाह भाईदास द्वारा कारित तीन खंड वाले उत्तम प्रासाद-चैत्य में श्रीशीतल-नाथ, सहस्रफणा श्रीगौडीपार्श्वनाथ आदि १८१ प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की और सं० १८२८ वैशाख सुदि द्वादशी को वहीं पर देवघर में श्रीमहावीर आदि बियासी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। इस मंदिर के प्रतिमानिर्माण और प्रतिष्ठाविधान दोनों कार्यों में तथा संघ के सत्कार आदिक में छत्तीस हजार रुपये व्यय हुये थे। वहां से मुनिसुव्रतस्वामी की यात्रा के लिये भृगुकच्छ (भड़ौंच) गये। वहां पर रात में रेवानदी के किनारे किसी योगिनी के द्वारा किये हुये घोर वृष्टि के उपद्रव से व्याकुल संघ की चिन्ता को आपने अपने इष्टदेव का ध्यान करके दूर की। वहां से राजनगर, भावनगर आदि स्थानों में विहार करके घोघाबिंदर में नवखण्ड पार्श्वनाथ की यात्रा करके पादलिप्तपुर (पालनपुर) गये। वहां से सं० १८३० माघ वदि पंचमी को पचहत्तर मुनियों के साथ श्रीशत्रुञ्जय यात्रा की। फिर सं० १८३० में जुनागढ आकर फाल्गुन शुक्ला नवमी को १०५ मुनियों के साथ श्रीगिरिनार मण्डन नेमि-जिन की यात्रा की। तदनन्तर वेलाकूलपत्तन, नवा-नगर आदि में विचरण करके, कच्छ देश के माँडवी बिंदर में श्रीगुरुचरणकमलस्थापना को प्रणाम करके, क्रम से उस देश में भ्रमण करके राउपुर नामक नगर में अचिन्तामणि पार्श्वनाथ की वदना की और सं. १८३३ चैत्र वदि द्वितीया को श्री गौड़ी पार्श्वनाथ की यात्रा की। इस प्रकार परम सौजन्य, सौभाग्य आदि अनेक सद्गुणों से सुशोभित तथा महोपकारी आचार्य श्रीजिनलाभसूरि ने सं. १८३४ आश्विन वदि दशमी को श्री गूढ़ा नगर में देवगति प्राप्त की।

आचार्य जिनचन्द्रसूरि

आचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरि बीकानेर निवासी वच्छावत मुंहता रूपचन्द के पुत्र थे। इन की माता का नाम केसरदेवी था। इनका जन्म सं. १८०६ में कल्याणसर नामक गांव में हुआ था। इनका मूल नाम अनूपचन्द्र था। सं. १८२२ में मण्डोवर में दीक्षा हुई। उदयसार यह दीक्षा नाम था। सं. १८३४ के आश्विन वदि १३ सोमवार को शुभ लग्न में गूढ़ा नगर में कूकड़ा चौपड़ा गोत्रीय दोसी लखा साह कृत उत्सव में आपका सूरि पदाभिषेक हुआ। तदनन्तर आचार्य महेवा आदि पुरों में चैत्यों की वन्दना करके, श्री गौड़ी पार्श्वनाथ को प्रणाम करके, क्रम से जेसलमेर, बीकानेर आदि नगरों में चिन्तामणि पार्श्वनाथादि देव-यात्रा की। जेसलमेर में आवश्यक आदि श्री योग क्रियायें कीं। तदनन्तर आपने अयोध्या, काशी, चन्द्रावती, चम्पापुरी, मकसुदाबाद, सम्मेतशिखर, पावापुरी, राजगृह, मिथिला, द्रुताग पार्श्वनाथ, क्षत्रियकुण्ड ग्राम, काकन्दी, हस्तिनागपुर आदि की यात्रा की। उस समय पूर्वीय लखणउ नगर में नाहटा गोत्रीय सुश्रावक बच्छराज नामक राजा ने चातुर्मास बड़े महोत्सव से कराये। वहां बहुत फैला हुआ प्रतिमोत्थापक (स्थानकवासी) निह्नवमार्ग का आचार्य ने बड़ी युक्ति से निराकरण किया। अनेक श्रद्धालुजनों को पुनः सन्मार्ग में लाये। आपकी बहुत ख्याति हुई। उस नगर के समीपस्थ बगीचे में राजा ने श्री जिनकुशलसूरि का स्तूप–निर्माण कराया। वहां से विहार करके आपने श्री गिरिनार, शत्रुञ्जय आदि तीर्थों की यात्रा की। पादलिप्तपुर में विरोधियों के साथ बड़ा विवाद हुआ; उस में श्रीगुरुदेव की कृपा से आपकी विजय हुई और विपक्षी लोग परास्त होकर भाग निगले। तब तो वहां के राजा एवं प्रजावर्ग ने आपका बहुत अधिक सम्मान किया। आचार्यश्री की महिमा चारों ओर खूब फैल गई। एक वर्ष बाद मोरवाड़ा गांव में एक लक्ष मनुष्यों से अधिक संख्या वाला श्रीसंघ भी जब श्री गौड़ी पार्श्वनाथ की यात्रा करने आया तब वहां के मन्त्री आदि महापुरुषों के कहने पर संघ स्थित आचार्य और आपका परस्पर मेल हो गया।

इस प्रकार परम सौभाग्यशाली, सकलविश्व के मनोहर्ता, सब सिद्धान्तों के पाठी, जंगमयुगश्रेष्ठ, वाणी से बृहस्पति को जीतने वाले, बृहत्खरतरगच्छेश्वर श्रीजिनचन्द्रसूरि दक्षिण में अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की यात्रा करके श्री सूरतबिंदर में सं. १८५६ ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को देवलोक हुये।

आवश्यकीय निवेदनः—

इस ग्रन्थ का लेखन, संशोधन और मुद्रण एक मास के अत्यल्प काल में हुआ था—अतः मुद्रण दोष और कतिपय अशुद्धियाँ तथा त्वरा में कई पंक्तियों का छूट जाना स्वाभाविक था, जिसका परिमार्जन अनुयोगाचार्य श्री बुद्धिमुनि जी गणि ने किया है जिसके लिये संपादक गणिजी का आभारी है। संशोधन निम्न है:—

पृ० सं०	पंक्ति सं०	
१६	१०	ऐसा निश्चय करके वाचनाचार्य बनाकर और
२२	६	आचार्य अभयदेव सूरि नवांग वृति रचना द्वारा भव्य जीवों पर महान् उपकार करके सिद्धान्तोक्त विधि-पूर्वक अनशन स्वीकार चतुर्थ देवलोक में गये।
२६	८	इस पर महाराज ने उस पत्र को फाड़ डाला और एक आर्या छंद रच कर कहा।
३०	१	नेमिनाथ स्वामी के मंदिर व मूर्ति की यथाविधि प्रतिष्ठा की।
३१	१४	जिनवल्लभ गणि जी के पास नागोर पत्र भेजा।
३१	१८, २२	सं० ११६७=११६७
३८	१७	दीक्षाग्रहण = चारित्रोपसम्पदा।
३६	१०	” ”
४१	१६	मुनिचन्द्र को उपाध्याय पदवी दी = मुनिचन्द्र जो उपाध्याय पद धारक थे।
४३	१२	त्रिभुवनगिरि के नरेश कुमारपाल को न केवल सदुपदेश ही दिया अपितु सदुपदेश दे प्रतिबोध दिया।
४५	२	मानचन्द्र = वर्धमानचन्द्र
४५	६	श्रे० देवनाग निर्मापित अजितनाथ
५२	२	अजित श्री शीलसागर की बहिन थी
५३	२३	जय मति, आसमति।
५५	६	दो मन्दिरों, बड़ी दो जिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की।
५६	८	दशमी = सप्तमी।
७१	२०	आनुपूर्विक = अनानुपूर्विक।
७६	१४	जिनपाल गणि = यतिपाल।
८८	३	अभयड़ दंड = दंडनायक।
८६	१७	धरणेश्वर = धर्मेश्वर।
६८	६	बड़ी धूम धाम से मनाया = स्वीकार की।
६६	१	मानचन्द्र = मानभद्र।
१०३	४	पृथ्वीराज = पृथ्वीचन्द्र।
१०८	१८	जेठ सुदी नवमी = सं० १२८६ फाल्गुन वदि पंचमी।
१०८	२५	कल्याणकलश = शरच्चन्द्र, कुशलचन्द्र, कल्याणकलश।
११२	२३	माह सुदी ६ को = माह सुदी ३ को।
११३	२०	पीतल की प्रतिमा = अजितनाथ स्वामी की प्रतिमा।
११४	८	जीवित = जीविग।
	१२	चित्रसमाधि = शान्तिनिधि = चित्रसमाधि, शान्तिनिधि।

	१३	तीन मंदिरों— मंदिर के एक गोखे में तीन प्रतिमाओं।
	१७	पूर्णिमा के दिन = पूर्णिमा के दिन विक्रमपुर में।
११५	१६	निंबदेव = नींबदेव सुत।
	२३	बिहार किया = चै० कृ० १३ को बिहार किया।
	२५	पांच हजार = पन्द्रह सौ।
	२८	नौ रुपयों = नब्बे रुपयों।
११७	५	एक सौ आठ = एक सौ साठ।
१२५	१५	सेठ हेम = सेठ मोहन।
१२६	१३	फागुन महीने = फागुन चौमासी के दिन।
१२८	२२	पं० स्थिरकीर्ति गणि सेठ कुमारपाल के पुत्र थे।
१३७	१४	चाहदत्त मुनि = चारुदत्त मुनि।
१३८	३	१३७६ = १३७३।
१३६	१६	मं० भूधराज = मं० कुमरा एवं भूधराज।
१४०	६	हजारों = जैथल सिक्के ३० हजार।
	१७	पत्रिकायें भेजकर = पत्रिकायें भेजी, प्राप्त कर समस्त स्थानों का श्रीसंघ।
१४४	२७	विधि = शिबि का।
१४७	१६	सौ = शैकड़ों।
	२१	झँका = झांका।
१४८	१६	हेमव्याकरण बृहद्वृत्ति १८००० श्लोक प्रमाण तथा न्यायमहातर्क ३६००० श्लोक प्रमाण
	३०	इसी दिन = देवगुरु की आज्ञा का पालक सेठ नरसिंह के पुत्र सेठ खींवड़ के प्रयत्न से सेठ तेजपाल।
१४६	४	आदि नाना = आदि गुरुओं की तथा नाना।
१५३	१-२	तीर्थकर देव तीर्थ (संघ) को प्रणाम करके एक योजन प्रमाण भूमि में स्पष्टतया सुनाई दे सके एवं सभी प्राणिमात्र अपनी अपनी भाषा में समझ सके, वैसे साधारण शब्दों में धर्मदेशना देते हैं।
	५-६-७	अरिहंत उसी तीर्थ स्वरूप संघ में से होते हैं। अतः संघ को नमस्कार करना, पूजित पूजा यानि इन्द्रादिकों से पूजित तीर्थंकर देवों द्वारा संघ का पूजा एवं विनय कर्म है। यदि ऐसा न हो तो वे तीर्थंकर देव कृतकृत्य होकर भी धर्मोपदेश क्यों देते हैं और तीर्थ को नमस्कार क्यों करते हैं।
१५५	५	इस अवसर पर = आचार्य श्री के निजभंडार में रखने योग्य समवसरण (सूरिमन्त्र पट्ट) एवं आचार्य श्री
१५६	१६	मंगलपुर = मांगलपुर (मांगरोल)
	१८	मोखा = मोखदेव।
१५७	८	निर्धन, असहाय, दीन–हीन गरीबों को धनप्राप्ति का उपाय बताने से = समग्र जनता पर अखंड आशीर्वाद के आरोपण से
१५८	४	साधु राजसिंह = साधुराज धर्मसिंह
	१८	एवं प्रतिष्ठा = एवं पंचमी को प्रतिष्ठा

	२४	इसी प्रकार लूणा = इसी प्रकार शत्रुंजय पर सेठ तेजपालादि पत्तनीय विधिसंघ निर्मापित चैत्य में सा० लूणा
१६३	६	इसी नगर में = और शम्यानयन में अपने दीक्षा गुरु युगप्रवरागमाचार्य श्रीजिन चन्द्रसूरि जी म० का जन्म महोत्सव एवं स्वयं आ० श्रीजिनकुशलसूरि जी का जन्म तथा दीक्षा महोत्सव हुआ था।
	१०	झांझल = झांझण
	१२	गुहड = गुडहा
	१७	वैभवगिरी = वैभारगिरि
१६५	६	सं० १३८६ = सं० १३८४
१६६	१३	वाचनाचार्य पद दिया तथा नवदीक्षित क्षुल्लक व क्षुल्लिकाओं की उपस्थापना की।
	२८	बहिरामपुरीय श्रावक समुदाय ने किसी चैत्य या प्रतिमा आदि की प्रतिष्ठा पूज्य जी के करकमलों से करवाई।
१६७	१	आये थे यावत् कमलागच्छ के श्रावक भी सम्मिलित थे।
	६	श्री लारवाहण = श्रीसिलारवाहण
	२२	महाराज के स्वागत केलिये सेठ चाचिग आदि कमलागच्छ के श्रावक एवं अन्य सरकारी
१७०	३	देवराजपुर में = देवराजपुर के चातुर्मास में
१७१	१३	धनदेव के पोते = धनदेव के पुत्ररत्न
१७३	२४	श्रीमाल = श्रीमालपुर
१७७	८	सं० १४०४ = सं० १४००
१८७	२	सं० १४३३ = सं० १४३२
२०१	१७	(पालनपुर) = (पालीताना)

स्पष्टी करण—

प्रस्तुत इतिहास में गच्छनायक आचार्य श्री के लिये आचार्य के नाम के साथ विशेषण के तौर पर प्रत्येक स्थल पर श्रीपूज्य शब्द का प्रयोग हुआ है। यह 'श्रीपूज्य' प्रयोग उपाध्याय जिनपाल गणि आदि समर्थ विद्वानों ने किया है। वस्तुतः गच्छनायक के लिये 'श्रीपूज्य' विशेषण युक्त ही है और साथ ही परंपरा मान्य भी हैं। अतः वर्त्तमान में इसका जिस रूप में प्रयोग होता है उस पर ध्यान न देकर भूतकालीन 'श्रीपूज्य' शब्द का गौरव समझ कर आदृत करना चाहिये।